गांधी
के मैनेजमेंट सूत्र

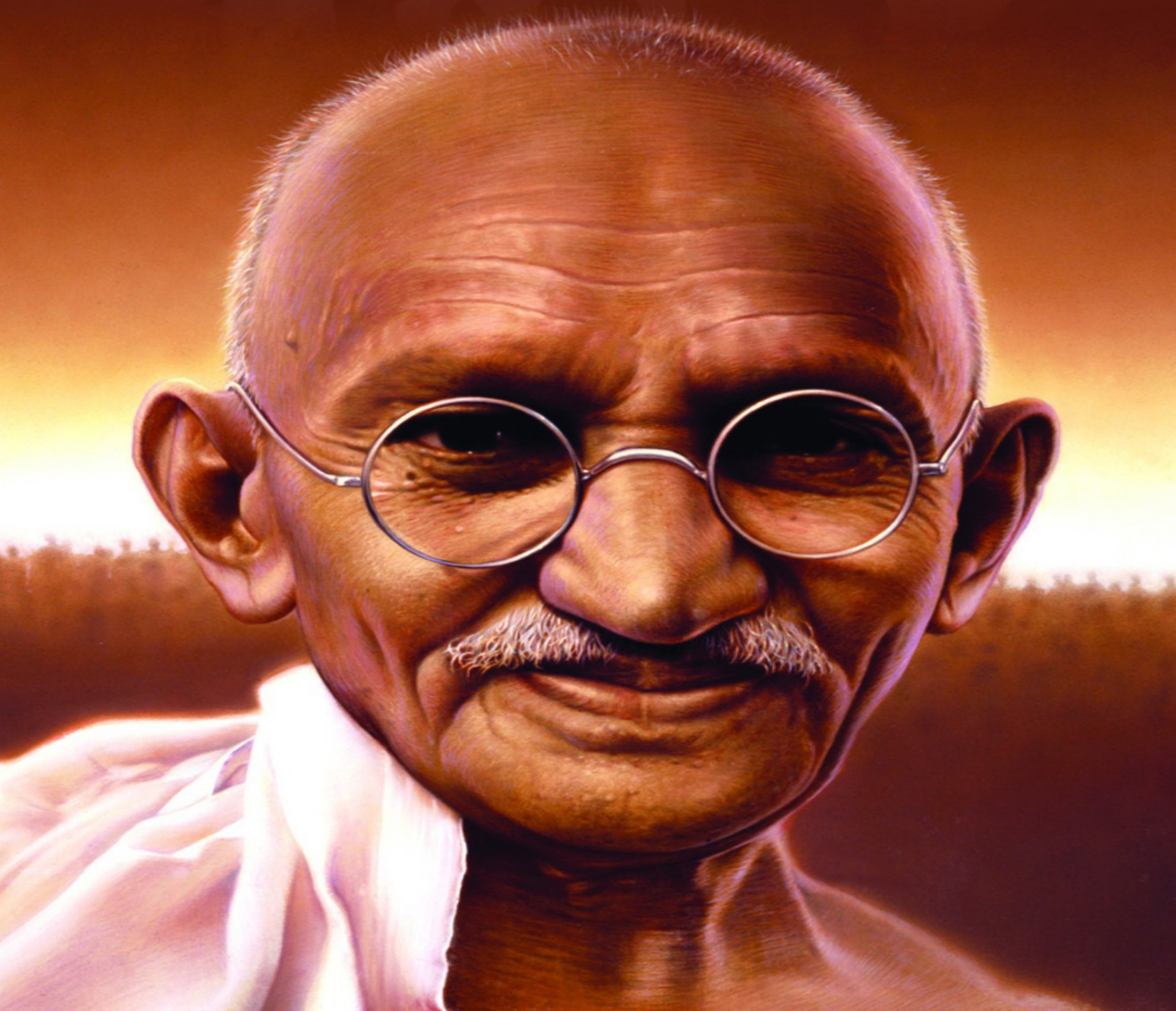

गांधी
के
मैनेजमेंट सूत्र

ममता झा

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

भूमिका

महात्मा गांधी के बारे में ऐसा क्या है कि बात जब मैनेजमेंट की आती है और खासतौर पर मार्केटिंग की, तब भी वह उन्हें महान् शख्सियत बनाती है? इसके लिए मुमकिन है कि हमें उनके अतीत के बारे में थोड़ा अध्ययन करना पड़े और समग्र रूप से विश्व इतिहास पर दृष्टि डालनी पड़े। दुनिया भर में, हमेशा से, दासता से मुक्ति का मतलब हिंसक संघर्ष रहा है। स्वतंत्रता सदा से हिंसक क्रांति का पर्याय रही है। आप हिंसक शक्ति को फतह कर सकते हैं और हिंसा के जरिए हिंसा से लड़कर आजादी हासिल कर सकते हैं; लेकिन भारत एक खास समस्या से ग्रस्त था। समस्या थी हमारा प्रचलित धर्म।

गांधी खुद ही हिंदुओं को डरपोक कहते थे, ऐसा कहना सही नहीं होगा; मगर भारत के लोग आत्म-संतुष्ट, सहनशील और तुलनात्मक दृष्टि से दुनिया की सबसे शांतिप्रिय नस्ल हैं। हमने अपने अंदर युद्ध और हिंसा के जज्बे को विकसित नहीं किया है। और इसलिए, बात जब भारतीयों को प्रेरित करने और उन्हें हिंसक क्रांति के लिए तैयार करने की हुई तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष के चुनाव में गांधी के उम्मीदवार को परास्त कर अध्यक्ष निर्वाचित होनेवाले सुभाषचंद्र बोस भी बुरी तरह नाकाम रहे। उनका दिया युद्धघोष 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा' संभव है, दुनिया के हरेक हिस्से में कारगर साबित हो, लेकिन भारत में कारगर साबित नहीं हुआ। और आखिरकार बोस को बाहर से सेनानी जुटाकर सेना गठित करने और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई लड़ने के लिए भारत छोड़ने का निर्णय लेना पड़ा।

जाहिर है, गांधीजी चीजों को उत्सुकता से देखते थे और तेजी से सीखने की क्षमता भी उनमें थी। मार्केटिंग की महान् शख्सियत बनने के लिए यह सबसे जरूरी गुण है। इस शख्स ने भारत को आजाद कराने की बलवती भावना के साथ-साथ महसूस करते हुए कि हिंसक रास्ता अख्तियार करने की अपील भारत के आम आदमी पर ज्यादा असरकारी नहीं होगी—खुद को बदला और वह काम किया, जो दुनिया में पहले कभी नहीं हुआ था। और एक बार फिर मार्केटिंग की कामयाब कहानी के महान् गुण सामने आए।

महात्मा गांधी निश्चित तौर पर ऐसे पहले व्यक्ति होंगे, जिन्होंने दुनिया को अहिंसा की अवधारणा से परिचित करवाया। इस अवधारणा की वजह से सन् 1930 में 'टाइम' मैगजीन ने उन्हें 'मैन ऑफ द ईयर' घोषित किया और आनेवाले समय में मार्टिन लूथर किंग जूनियर, दलाई लामा, नेल्सन मंडेला, आंग सान सू की और कई दूसरे लोगों ने अहिंसा की उनकी राह का अनुसरण किया। पहले अहिंसा को क्रांति का सबसे वाहियात तरीका माना जाता था; लेकिन गांधी को पता था कि वह क्या कर रहे हैं। वह जानते थे कि अपनी इस विचारधारा की कैसे मार्केटिंग करनी है और किस तरह यह मौजूदा जरूरतों की पूर्ति करेगा। और वह जरूरत थी स्वतंत्रता संग्राम में भागीदारी एवं अंग्रेजों को यहाँ से निकाल बाहर करना। इसके साथ यह इच्छा भी जुड़ी हुई थी कि हथियार उठाने के लिए बाध्य नहीं होना है और किसी की जिंदगी को जोखिम में नहीं डालना है। उन्हें इस बारे में पता था कि उनकी अवधारणा इस जरूरत का सबसे बेहतरीन समाधान है। अगला काम जो उन्हें करना था, वह यह कि इससे आम लोगों का जुड़ाव हो और यह जुड़ाव दुनिया भर में फैले।

उन दिनों जबकि समाचार-पत्र को विलासिता की वस्तु माना जाता था, दूरसंचार के साधन उपलब्ध नहीं थे और यहाँ तक कि परिवहन एवं संपर्क भी दुर्लभ था। इस भारतभूमि की विशाल सीमा के अंदर एक सिरे से दूसरे सिरे तक संदेश पहुँचाना सबसे बड़ी चुनौती थी। तब गांधी ने लोगों से व्यक्तिगत संपर्क करने की ठानी। आम लोगों के प्रति उनके मन में बड़ा आदर था। गांधी ने कहा था, 'आम आदमी हमारे काम में कोई बाधा नहीं है। वह हमारा लक्ष्य है। हमारे काम में वह कोई बाहरी व्यक्ति नहीं है। वह इसका हिस्सा है। हम उसकी सेवा कर

कोई अहसान नहीं कर रहे हैं, बल्कि सेवा का अवसर देकर वह हमारे ऊपर अहसान कर रहा है।' और उनके संघर्ष में आखिरी लक्ष्य जनता थी। उसके साथ जुड़ाव के लिए उन्होंने अपने सूट और टाई को तिलांजलि दे दी। दरअसल, उसके साथ जुड़ने के लिए ही उसके मार्केटिंग अभियान में विदेशी कपड़ों को जलाना और खादी बनाना शामिल था। टैगोर जैसे बहुत से लोग इसे तार्किक नहीं मानते थे, लेकिन मार्केटिंग का व्यक्ति होने के नाते गांधी जानते थे कि यह उन्हें अपने लोगों से भावनात्मक रूप से जोड़ने में मदद करेगा और उनके संदेश को उन तक पहुँचाएगा।

आम आदमी आम तौर पर महान् कविताओं की बजाय प्रतीकात्मक संकेतों को ज्यादा बेहतर तरीके से समझता है और गांधी ने इन प्रतीकात्मक संकेतों को सार्वजनिक किया। महान् नेता होने के नाते अगुवाई करना कभी कोई मुद्दा नहीं रहा, लेकिन यहाँ तक कि आज जब जुड़ाव बहुत आसान है, तब भी बहुत से भारतीय नेता जो काम नहीं कर पाते हैं, वह उन्होंने वर्ष 1900 की शुरुआत में ही कर दिखाया। वह जनता के बीच गए और उन्हीं का हिस्सा बन गए। वह उनके साथ चले और उन्हें अपने साथ चलने के लिए प्रेरित किया। उनकी नई पोशाक खादी, जिससे आम आदमी पहचाना जाता था और उनके आधे तन पर कपड़ा, उस आदमी का प्रतीक था, जिसका समर्थन वह चाहते थे, भूखा और पीड़ित आदमी, जिसे मुक्ति की तलाश हो। और जैसी कि कहावत है, वचन से बड़ी कोई चीज नहीं है। जनता के साथ किए गए उनके काम की गूँज जल्द ही आग की तरह पूरे देश में फैल गई और लोग इस शांति पुरुष के क्रिया-कलापों का अनुसरण करने लगे, जो भारत को आजादी दिलाने की बात कर रहा था और उसे हासिल करने के उतने करीब दिख रहा था, जहाँ तक कोई नहीं पहुँच सका था।

मैनेजमेंट की गहरी समझ रखनेवाले व्यक्ति के तौर पर उन्होंने गुण-दोषों का शानदार विश्लेषण किया। वह अपने विरोधियों और प्रतिस्पर्धा—अंग्रेज—को अच्छी तरह जानते थे। वह जानते थे कि नाजियों के विपरीत अंग्रेज ज्यादा सुसंस्कृत थे और निष्पक्षता में यकीन रखते थे और उनके पास एक अदालत थी, जिसके प्रति वे जवाबदेह भी थे। इसलिए वह जानते थे कि अगर वह शांति वार्त्ता की पहल करते हैं तो अंग्रेजों के लिए उन्हें मार डालना लगभग असंभव होगा। अपने फायदे के लिए उन्होंने उनकी क्रूरता को कमजोरी के तौर पर लिया और अपनी पहुँच बनाने के लिए उनके बीच के बुद्धिजीवियों का इस्तेमाल किया।

इस पुस्तक में महात्मा गांधी के जीवन से प्रतिबिंबित होनेवाले मैनेजमेंट सूत्रों का चित्रण किया गया है।

❑

महात्मा गांधी एक परिचय

मोहनदास करमचंद गांधी का जन्म 2 अक्तूबर, 1869 को पोरबंदर के एक छोटे सेसाफ-सुथरे मकान में हुआ था। पोरबंदर पश्चिम भारत में काठियावाड़ के तट पर स्थित है। उनके पिता का नाम करमचंद गांधी और माता का नाम पुतलीबाई था। उनका कद छोटा और रंग साँवला था। वह भारत में जन्म लेनेवाले लाखों बच्चों की तरह ही दिखाई देते थे; लेकिन फिर भी, वह साधारण बालक नहीं थे। उन्हें एक बड़े साम्राज्य से लोहा लेना था और शास्त्रों का सहारा लिये बगैर अपने देश को आजाद करना था। उन्हें 'महात्मा' कहलाना था और देश की जनता को स्वतंत्रता दिलाकर अपने आपको उनके लिए विसर्जित कर देना था।

पोरबंदर एक प्राचीन बंदरगाह है, जो सुदूर वरदा पहाड़ी से दिखाई देता है। उस काल में भी व्यापार के लिए यहाँ दूर-दूर से जहाज आया करते थे। गांधी परिवार का यहाँ पुश्तैनी मकान था। मोहनदास के पिता और पितामह अपनी योग्यता और अपने उच्च नैतिक चरित्र के लिए प्रसिद्ध थे।

पितामह उत्तमचंद गांधी एक साधारण बनिया परिवार में जनमे थे। लेकिन वह पोरबंदर के दीवान बन गए। फिर उनका उत्तराधिकार मिला उनके पुत्र करमचंद गांधी को, जो कबा गांधी के नाम से जाने जाते थे। कबा गांधी ने वैसे तो साधारण शिक्षा ही प्राप्त की थी, लेकिन अपने ज्ञान और अनुभव से वह कुशल शासक बन सके। वह पराक्रमी और उदार मन के थे। यदि उनमें कोई बुराई थी तो वह था उनका तेज मिजाज।

करमचंद गांधी की पत्नी पुतलीबाई बड़ी धर्मपरायण थीं। नित्य प्रति वह मंदिर जाकर पूजा करतीं। सब उनसे स्नेह करते। वह दृढ़ इच्छा-शक्तिवाली महिला थीं। सभी उनकी बुद्धि और सद्भावना का आदर करते। लोग अकसर कई मामलों में उनकी सलाह लिया करते।

कबा गांधी के छह बच्चे थे और मोहनदास उनमें सबसे छोटे थे। वह परिवार के लाडले बेटे थे। माता-पिता और उनके मित्र उन्हें 'मोनिया' के नाम से पुकारते थे। मोनिया अपनी माँ को बहुत प्यार करता था। प्यार पिता को भी करता था, लेकिन उनसे थोड़ा डरता था।

मोनिया जब छोटा था तो उसे घर में रहना अच्छा नहीं लगता था। वह घर आता तो खाना खाते ही भाग खड़ा होता और बाहर जाकर खेलने लगता। यदि किसी भाई ने खेल-खेल में चिढ़ा दिया या कान खींच लिये तो वह दौड़कर घर जाता और माँ से उनकी शिकायत करता।

''तो तुम भी उन्हें क्यों नहीं पीट देते?'' माँ शिकायत सुनकर कहतीं।

''तुम मुझे उन्हें पीट देने की बात कैसे सिखा सकती हो, माँ? मैं अपने भाई को क्यों मारूँगा? और भाई को ही क्यों, किसी और को भी क्यों पीटूँगा?'' मोनिया तत्काल उत्तर देता।

माँ अचरज करतीं कि उनके नन्हे बेटे के मन में ऐसे विचार आए कहाँ से।

तब मोनिया की उम्र थी केवल सात वर्ष, जब उसके पिता पोरबंदर की जगह राजकोट के दीवान नियुक्त हुए। मोनिया से पोरबंदर छूट गया। उसे याद आता रहा वहाँ का नीला आकाश, वहाँ के बंदरगाह पर आते-जाते जहाज।

राजकोट में उसे प्राथमिक पाठशाला में भेजा गया। वह स्वभाव से शरमीला था और इस कारण दूसरे बच्चों के साथ आसानी से हिल-मिल नहीं पाया। हर सुबह वह समय से स्कूल जाता और छुट्टी होते ही घर भाग आता। उसकी दोस्ती केवल किताबों से ही थी।

उसका एक दोस्त अवश्य था, उका नाम का लड़का। उका हरिजन बालक होने के कारण अछूत था। एक दिन मोनिया को मिठाई मिली। वह उका के पास दौड़ा गया कि वे दोनों इसे बाँटकर खा लें।

उका बोला, ''छोटे मालिक, मेरे पास मत आओ।''

''क्यों?'' मोनिया ने आश्चर्य से पूछा, ''मैं क्यों नहीं आऊँ तुम्हारे पास?''

उका ने जवाब दिया, ''मैं अछूत हूँ, छोटे मालिक।''

मोनिया ने उका के हाथ पकड़े और उन पर मिठाई रख दी। पुतलीबाई ने खिड़की से वह सब देख लिया था। मोनिया को उन्होंने तुरंत अंदर आने को कहा।

उन्होंने कठोर स्वर में पूछा, ''क्या तुम यह नहीं जानते हो कि उच्च कुल के हिंदू अछूतों को नहीं छूते?''

''लेकिन माँ, छूते क्यों नहीं हैं?'' मोनिया ने पूछा।

''क्योंकि हमारी हिंदू रीति-नीति में ऐसा करने की मनाही है।'' उन्होंने उत्तर दिया।

''मैं तुम्हारी बात से सहमत नहीं हूँ, माँ। मुझे उका को छू लेने में कुछ भी गलत नहीं लग रहा है। वह मुझ जैसा ही तो है, मुझसे जुदा तो है नहीं, बोलो ना?''

माँ निरुत्तर हो गईं। लेकिन उन्होंने गुस्से में यही कहा कि वह जाकर नहाए और फिर प्रार्थना करे।

करमचंद गांधी अपने सभी पुत्रों को प्यार करते थे। लेकिन सबसे छोटे से उन्हें कुछ विशेष ही प्यार था। वह अकसर कहा करते, ''तुम खूब पढ़ना, हाई स्कूल, कॉलेज तक और कोई बड़ा व्यवसाय करना।''

मोनिया ने खूब मेहनत करके बड़ी सावधानी से पढ़ाई की लेकिन उसे किसी पाठ को कंठस्थ कर लेना पसंद नहीं था। इसी कारण संस्कृत में वह कमजोर था। भूमिति उसे बहुत अच्छी लगती थी, क्योंकि उसमें हर बात तर्क से सिद्ध होती थी।

एक बार मोनिया ने श्रवण कुमार की कहानी पढ़ी। श्रवण के माता-पिता वृद्ध और अंधे थे। वह उन्हें हमेशा कंधे पर काँवड़ लटकाकर लाता-ले जाता था और अपने साथ रखता था। माता-पिता के प्रति श्रवण की इस भक्ति ने मोनिया को बहुत प्रभावित किया। मोनिया ने प्रतिज्ञा की, 'मैं श्रवण जैसा ही बनूँगा।'

उन्हीं दिनों मोनिया ने राजा हरिश्चंद्र के बारे में एक नाटक देखा। हरिश्चंद्र अपनी सत्यप्रियता के लिए विख्यात थे।

वह अपने आपसे बार-बार पूछने लगा, 'हम सभी हरिश्चंद्र की तरह सत्यवादी क्यों न बनें?'

उस समय मोहनदास की उम्र केवल तेरह वर्ष की थी, जब उससे कहा गया कि शीघ्र ही उसकी शादी होने वाली है। माता-पिता उसके लिए वधू खोज चुके थे। वधू पोरबंदर की थी और उसका नाम था कस्तूरबाई। वह और मोहनदास लगभग एक ही उम्र के थे।

विवाह का दिन आ गया। मोहनदास ने नए कपड़े पहने थे। सभी लोग ठाठदार कपड़ों में सजे थे। घर फूल व केले के पत्तों से सजाया गया था। दूल्हे को साथ लेकर बारात पोरबंदर के लिए रवाना हुई।

वह दिन वधू के घर बड़ी धूमधाम का दिन था। नृत्य-संगीत की बहार थी। मुहूर्त का समय आया और वर को लेकर बारात वहाँ पहुँची।

कस्तूरबाई लाल वस्त्र और जड़ाऊ आभूषण पहने थीं। उस वेशभूषा में वह शरमा रही थीं और बहुत आकर्षक लग रही थीं। खूब धूमधाम के साथ कस्तूरबाई से मोहनदास का विवाह हो गया।

पूरे एक सप्ताह तक रस्म-रिवाज होते रहे। फिर दुलहन पोरबंदर में पिता का घर छोड़कर पति के साथ राजकोट आ गई।

कस्तूरबाई देखने में बहुत सुंदर और प्राणवान् लगती थीं। मोहनदास और वह अकसर साथ-साथ खेला करते थे। कभी-कभी मोहनदास अपनी पत्नी को पढ़ाने की कोशिश भी करते, लेकिन पढ़ने में कभी उसका मन नहीं लगता, जबकि घर के काम-काज वह बड़ी तत्परता से सीख लेती थी।

एक दिन मोहनदास शेख मेहताब से मिले। वह उनके बड़े भाई के मित्र थे। शेख बदनाम थे। मोहनदास यह जानते थे, लेकिन शेख की लंबी काया और मजबूत डील-डौल से वह प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके।

शेख मांसाहारी थे और अकसर मोहनदास से कहा करते थे कि यदि वह भी मांस खाया करें तो कद से लंबे और शरीर से बलिष्ठ हो जाएँगे।

उन दिनों सुधार आंदोलन भी जोरों पर था और पुरातनपंथी जीवन-पद्धति में परिवर्तन लाने की कोशिश भी चल रही थी। मोहनदास ने खुद सुना था कि कई अच्छे-अच्छे घरों के लोग मांस खाने लगे हैं, सो उन्होंने भी मांस खाना शुरू कर दिया। उन्हें मांस का स्वाद नहीं आया, लेकिन कुछ समय बाद वे मांस की सब्जी पसंद करने लगे।

जब भी मोहनदास बाहर से मांस खाकर आते थे, वह शाम को घर भोजन नहीं कर पाते थे और उसके लिए माँ से कोई-न-कोई बहाना बनाना पड़ता था। वह यह अच्छी तरह जानते थे कि उनके माता-पिता मांस खाने की बात को कभी क्षमा नहीं करेंगे। वह उस समय मांस खाने के बहुत विरोधी नहीं थे, लेकिन माँ से झूठ बोलने के एकदम विरोधी थे। यह भावना उन्हें अंदर-ही-अंदर कुरेदती रहती। आखिरकार एक दिन उन्होंने यह तय कर लिया कि वह कभी मांस नहीं छुएँगे।

मोहनदास ने अपने भाई, शेख और एक दूसरे रिश्तेदार की सोहबत में धूम्रपान भी सीख लिया था। उन्हें सिगरेट खरीदने के लिए इस-उस से थोड़ा-बहुत रुपया भी उधार लेना पड़ता था।

इसी तरह उनके भाई पर कर्ज हो गया। उसे चुकाने के लिए उन्होंने भाई के सोने के कड़े से एक तोला सोना काटकर बेच दिया। वह सब चोरी से किया। चोरी करना बड़ा पाप माना जाता है। वह जानते थे कि उनसे भारी अपराध हो गया है। यह सोचकर उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वह कभी चोरी नहीं करेंगे। उन्होंने अपने अपराध की आत्म-स्वीकृति एक कागज पर लिखी और वह कागज अपने बीमार पिता के हाथ में थमा दिया।

करमचंद गांधी ने पुत्र की आत्म-स्वीकृति को पढ़ा। एक शब्द भी कहे बिना उन्होंने वह कागज फाड़ डाला। उसके टुकड़े जमीन पर बिखर गए। उनकी आँखों से दो बूँद आँसू टपके। दीर्घ निःश्वास लेकर वह फिर बिस्तर पर लेट गए। मोहनदास कमरे से बाहर आ गए। उनका चेहरा आँसुओं से तर था।

उस दिन से मोहनदास अपने पिता को और अधिक प्यार करने लगे। रोज वह स्कूल से सीधे घर आते और पिता की सेवा करते। लेकिन पिता की दशा बिगड़ती गई और अंत में उनकी मृत्यु हो गई। घर में मातम छा गया।

मोहनदास उस समय केवल सोलह वर्ष के थे।

हाई स्कूल की परीक्षा पास कर लेने के बाद मोहनदास भावनगर के शामलदास कॉलेज में भरती हो गए। वह पहले सत्र के बाद ही घर लौट आए, क्योंकि वहाँ की पढ़ाई उन्हें पसंद नहीं आई।

घर लौटे तो एक आश्चर्यजनक प्रस्ताव उनके सामने रखा गया। बड़े भाई तथा परिवार के एक मित्र का सुझाव था कि वह आगे पढ़ने के लिए इंग्लैंड जाएँ और बैरिस्टर बनें। मोहनदास रोमांचित हो गए। दुनिया देखने का एक सुंदर अवसर उनके सामने था।

लेकिन उनकी माँ को इंग्लैंड जाने की बात पसंद नहीं आई। वह नहीं चाहती थीं कि उनका सबसे छोटा बेटा उनसे दूर रहे। समस्या रुपयों की भी थी। लेकिन इन सबसे अधिक उन्हें यह डर था कि समंदर पार जाकर मोहनदास अपना जाति-धर्म खो बैठेगा। परिवार के मित्रों ने सुझाया कि ऐसे डर की कोई आशंका नहीं है और सारी समस्याएँ सुलझ जाएँगी। लेकिन फिर भी माँ विरोध ही करती रहीं।

''कई ऐसी बातें मैं जानती हूँ, जिनके कारण किसी हिंदू को भारत छोड़कर बाहर नहीं जाना चाहिए, उसमें खतरा है।'' उन्होंने समझाया, ''वहाँ मांस खाना पड़ेगा। वहाँ के लोग शराब पीते हैं और तुम्हारी भी इच्छा होगी

कि तुम भी पियो। यह भी हो सकता है कि तुम बुरी सोहबत में पड़ जाओ। वहाँ दुर्घटनाओं की कमी नहीं। वे तुम्हें बिगाड़ देंगे।''

मोहनदास ने कहा, ''नहीं माँ, मैं कोई बच्चा तो हूँ नहीं। मैं अपनी सार-सँभाल खुद कर सकता हूँ।''

वह माँ से जाने की आज्ञा पाने के लिए जिरह करते रहे और शपथ ली कि वह वहाँ कभी मांस नहीं खाएँगे, शराब नहीं पीएँगे और किसी नारी का स्पर्श नहीं करेंगे।

आखिरकार पुतलीबाई ने हारकर उन्हें इंग्लैंड जाने की आज्ञा दे दी। जब मोहनदास राजकोट छोड़कर बंबई जाने के लिए रवाना हुए तो वह दु:खी हो उठे। वह माँ, पत्नी और अपने छोटे से पुत्र को छोड़कर जा रहे थे, जो कुछ ही महीने का था।

4 सितंबर, 1888 को मोहनदास बंबई से इंग्लैंड के लिए रवाना हुए। जब जहाज तट से धीरे-धीरे आगे बढ़ा तो वह पश्चिमी वेशभूषा में डेक पर खड़े हुए थे। वह उदास थे, लेकिन साथ ही उत्तेजित भी।

मोहनदास जहाज पर अपनी पहली सुबह कभी नहीं भूल सके। वह काला सूट और सफेद शर्ट पहने थे, उनकी कॉलर सख्त थी और उन्होंने टाई लगा रखी थी। उसमें वह बड़ी असुविधा अनुभव कर रहे थे। सख्त कॉलर चुभ रही थी। ठीक से टाई बाँधना भी कोई छोटा काम तो था नहीं। चुस्त शॉर्ट कोट से भी खासी परेशानी हो रही थी। उन्होंने सोचा कि भारतीय पोशाक ही आरामदेह होती है। लेकिन आईने में चेहरा देखने पर उन्हें गर्व ही हुआ था। उन्हें लगा था कि वह बहुत प्रभावशाली दिख रहे हैं।

मोहनदास थे शरमीले स्वभाव के। वह मुश्किल से कभी केबिन छोड़कर बाहर गए होंगे। वह अपना खाना भी अकेले ही खाते थे। उन्हें विश्वास नहीं था कि जहाज पर जो खाना दिया जाता है, उसमें क्या होता है। हो सकता है, उसमें मांस ही हो। वह नहीं चाहते थे कि माँ को दिया वचन किसी भी तरह टूटे, इसलिए अधिकतर वह अपने साथ लाई मिठाई पर ही निर्भर रहते।

साउदेम्पटन पहुँचने पर उन्होंने अपने आसपास नजर दौड़ाई। जो देखा, वह यह कि सभी लोग गहरे रंग के कपड़े पहने हुए हैं, कटोरीनुमा टोप लगाए हैं और हाथ में ओवरकोट लटकाए हुए हैं। मोहनदास को यह देखकर बड़ा संकोच हुआ कि केवल वह अकेले ही सफेद फलालैन का कोट पहने थे।

लंदन में वह पहले तो विक्टोरिया होटल में ठहरे। सबसे पहले उनसे मिलने आए गांधी परिवार के हितैषी डॉ. पी.जे. मेहता। मोहनदास डॉ. मेहता के रेशमी टोप से बहुत प्रभावित हुए। टोप को उन्होंने कौतूहलवश छूकर देखा। छूने से उनके रेशमी फीते बिखर गए। तब डॉ. मेहता ने उन्हें यूरोपीय आचार-व्यवहार के बारे में पहली सीख दी।

''दूसरों की चीजों को मत छुओ।'' उन्होंने कहा, ''जब किसी से पहली बार मिलो तो सवाल मत पूछो, जैसे कि हम लोग भारत में पूछने लगते हैं। जोर से मत बोलो। दूसरों से बात करते समय 'सर' का उपयोग मत करो, जैसा कि हम भारत में करते हैं। केवल नौकर और मातहत लोग ही अपने मालिक से बात करते समय इस शब्द का इस्तेमाल करते हैं।''

युवक गांधी को आसपास का सारा वातावरण अजीब सा लग रहा था। उन्हें घर की याद आने लगी। वहाँ एक शाकाहारी भोजनालय खोज लेने तक वह लगभग भूखे ही रहे। पश्चिमी आचार-व्यवहार सीखने के लिए वह संघर्ष कर रहे थे। उन्होंने कुछ कमरों वाला एक मकान किराए पर ले लिया। बढ़िया सिलाईवाले कपड़े और एक टोप खरीदा। आईने के सामने खड़े होकर बालों में माँग निकालने और टाई की नॉट बाँधने में बड़ा समय लग जाता था। उन्होंने नृत्य भी सीखा; लेकिन जल्दी ही सीखना छोड़ दिया, क्योंकि उन्हें लय का ज्ञान नहीं था।

वायलिन बजाना सीखा, लेकिन असफल रहे। फ्रेंच भाषा और वक्तृत्व कला सीखने की कोशिश की, लेकिन उससे नींद आने लगी।

अंग्रेज बनने की उनकी यह कोशिश कोई तीन महीने चली। फिर यह विचार ही उन्होंने छोड़ दिया और गंभीर विद्यार्थी बन गए।

एक मित्र से उन्होंने कहा, ''मैंने अपनी जीवन-पद्धति बदल ली है। अब इस मूर्खता से मैं मुक्त हो गया हूँ। मैं एक कमरे में रहता हूँ और अपना खाना खुद पकाता हूँ। अब से आगे मैं अपना सारा समय केवल पढ़ने में ही लगाऊँगा।''

उनका खाना बहुत सादा होता था। आने-जाने पर खर्च करना भी उन्होंने बंद कर दिया। वह लंदन में हर जगह पैदल ही आते-जाते थे। अपने खर्च किए एक-एक पैसे का हिसाब रखने लगे थे।

मोहनदास ने 'लंदन शाकाहारी संस्था' में प्रवेश ले लिया और शीघ्र ही वह उसकी कार्यकारी समिति में आ गए। उन्होंने 'वेजिटेरियन' पत्रिका के लिए लेख भी लिखे।

कानून की परीक्षा के लिए बहुत अधिक अध्ययन की जरूरत नहीं होती थी और मोहनदास के पास बहुत सा समय बच जाता था। ऑक्सफोर्ड या कैंब्रिज का सवाल ही नहीं उठता था, क्योंकि उसका पाठ्यक्रम बहुत लंबा था। खर्च भी बहुत्था।

तब उन्होंने लंदन की मैट्रिक परीक्षा में बैठने का निर्णय किया। यह कठिन काम था, लेकिन उन्हें तो कठिन काम पसंद थे। फ्रेंच, इंग्लिश और रसायन-शास्त्र में तो वह पास हो गए, लेकिन लैटिन में फेल हो गए। उन्होंने दोबारा कोशिश की और लैटिन में भी पास हो गए। साथ-ही-साथ वह कानून भी पढ़ते रहे और नवंबर 1888 में उन्हें इनर टेंपल में जगह मिल गई।

वहाँ न्याय संस्थान (इन्स ऑफ कोर्ट्स) का यह नियम था कि उसके द्वारा वर्ष में कम-से-कम छह बार एक समय भोजन करें। जब पहली बार वह अपने विद्यार्थी साथियों के साथ भोजन करने गए तो शर्म और संकोच का अनुभव करते रहे। उनका विश्वास था कि मांस और शराब के लिए इनकार करने पर विद्यार्थी साथी उनका मजाक उड़ाए बगैर नहीं रहेंगे। जब शराब दी गई तो वह बोले, ''नहीं, धन्यवाद।''

उनके पास बैठे हुए लड़के ने उनसे कहा, ''मैं पूछता हूँ गांधी, क्या तुम सचमुच अपना हिस्सा नहीं चाहते? तुम जानते ही हो कि इसके लिए तुम्हें पैसा देना होता है!''

गांधीजी ने जब कहा कि शराब को उन्होंने कभी छुआ भी नहीं तो वह लड़का दोस्तों को पुकारकर बोला, ''दोस्तो, हम ईश्वर की कृपा से बड़े भाग्यवान् हैं कि यह लड़का हमारे पास बैठा है। इसके कारण हमें आधी बोतल और मिल रही है।''

मोहनदास ने कहा, ''तुम मेरे हिस्से का भुना हुआ मांस भी ले सकते हो।'' और वह अपने हिस्से की रोटी, उबले हुए आलू एवं गोभी की सब्जी खाकर संतुष्ट हो गए। उन्हें इस बात से आश्चर्यजनक प्रसन्नता हुई कि उनकी विलक्षण आदतों के बाद भी लोग उन्हें चाहते रहे।

अगली बार जब वह खाना खाने गए तो उनके हाथ में कानून की किताबों का ढेर था। वह उन किताबों को पढ़ने के लिए घर ले जा रहे थे।

''गांधी,'' एक विद्यार्थी ने उनसे पूछा, ''क्या तुम सचमुच इन पोथों को पढ़ोगे?''

यह कहकर उसने एक पुस्तक झपट ली।

फिर वह बोला, ''देखो मेरे दोस्तो, यह तो वाकई रोम का कानून लैटिन में पढ़ने जा रहा है।''

सारे दोस्त हँसने लगे। उनमें से एक ने कहा, ''मेरी बात सुनो गांधी, मैंने रोमन कानून की परीक्षा केवल दो सप्ताह में एक छपी हुई कुंजी पढ़कर पास की है। तुम क्यों बेकार मेहनत कर रहे हो?''

गांधीजी ने उस व्यंग्य कसनेवाले मित्र को बताया कि वह उस विषय में रुचि रखते हैं और इसी कारण इतनी मेहनत कर रहे हैं। वह ज्ञान पाने के लिए ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं।

फिर थोड़े समय के लिए वह फ्रांस गए और कानून की आखिरी परीक्षा की तैयारी में जुट गए। जल्दी ही नतीजा भी घोषित हो गया। गांधीजी अच्छे अंक प्राप्त करके पास हुए थे। 10 जून, 1891 को वह बैरिस्टर बन गए और दूसरे ही दिन उन्हें उच्च न्यायालय में औपचारिक प्रवेश भी मिल गया। उसके दूसरे ही दिन 12 जून को भारत लौटने के लिए वह जहाज पर सवार हुए।

गांधीजी का इंग्लैंड में तीन वर्ष ठहरना घटनापूर्ण रहा। वे दिन थे बौद्धिक जागरण के और उन दिनों हर तरह के मत-मतांतर को सम्मान दिया जाता था। सारा देश ही एक तरह से प्राणवान् विश्वविद्यालय बन गया था। गांधीजी जब एस.एस. आसाम नामक जहाज से लौट रहे थे तो यह विचार उनके मन में था कि भारत को छोड़कर अगर उन्हें कहीं और रहना पड़ा तो वह इंग्लैंड में ठहरना ही पसंद करेंगे।

जहाज बंबई के तट पर पहुँच गया। गांधीजी ने देखा कि उनके भाई मुख्य रास्ते से दूर मालगोदाम वाले रास्ते पर खड़े हैं। वह उनसे मिलने के लिए छोटे पुल पर से दौड़े, जो उतरने के लिए लगा हुआ था। अभिवादन के साथ ही उन्हें लगा कि भाई उदास हैं।

पूछा, ''कोई बुरी खबर है क्या?''

''हाँ,'' भाई की आँखों में आँसू भर आए, ''परीक्षा के दिनों में हम लोग तुम्हें परेशान नहीं करना चाहते थे। हमारी प्यारी माँ...। कुछ सप्ताह बीते उनकी मृत्यु हो गई।''

मोहनदास अवाक् रह गए। माँ उनके लिए बड़ा महत्त्व रखती थीं। वह तो लौटकर यह कहने आए थे कि विदेश जाने से पहले उन्होंने जो भी शपथ ली थी, उसका ठीक-ठीक पालन किया है; लेकिन माँ हैं ही नहीं। कैसी उदास वापसी थी वह।

राजकोट में उन्होंने वकालत शुरू की। लेकिन वकीलों में उन्होंने देखी स्वार्थपरता और संकीर्ण मनोवृत्ति। वह शीघ्र ही उकता गए। उन्होंने यह अनुभव किया कि गरीब और सीधे आदमी के लिए अदालत से न्याय पा लेना आसान काम नहीं है। वह राजकोट के जीवन से खुश नहीं थे और चाहते थे कि वहाँ से कहीं चले जाएँ।

उन्हीं दिनों उन्हें दादा अब्दुल्ला एंड कंपनी की ओर से दक्षिण अफ्रीका जाने का निमंत्रण मिला। वहाँ उनका बड़ा व्यापार फैला था। एक कंपनी पर उन लोगों ने 4 लाख डॉलर का मुकदमा दायर कर रखा था। उन्होंने गांधीजी से कहा कि वह यह मुकदमा वापस ले लें, क्योंकि वह अंग्रेजी अच्छी बोल लेते हैं और ब्रिटिश कानून की उन्हें जानकारी भी है। उनका मुकदमा लड़ने के अलावा उन्होंने अपनी फर्म के अंग्रेजी पत्र-व्यवहार का कामकाज भी उन्हें सौंप देना चाहा। वहाँ एक वर्ष के लिए उनकी जरूरत थी। कंपनी ने अच्छी फीस और आने-जाने का प्रथम श्रेणी का किराया देना भी मंजूर कर लिया।

नए देश और नए लोगों को देखने का अवसर सामने था। गांधीजी रोमांचित हो गए और निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

इस बात का उन्हें दु:ख था कि कस्तूरबाई से इतनी जल्दी अलग होना पड़ रहा है; लेकिन वह तो जाने का निर्णय कर चुके थे। अप्रैल 1893 में गांधीजी बंबई से दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हुए।

भारत से दक्षिण अफ्रीका की यात्रा बड़ी लंबी थी। सन् 1893 के मई महीने के अंत में गांधीजी नेटाल पहुँचे। पहली बात जो उन्होंने देखी, वह यह कि वहाँ भारतीय लोगों का बहुत कम सम्मान किया जाता है। डरबन

पहुँचने के लगभग एक सप्ताह के अंदर ही वह दादा अब्दुल्ला एंड कंपनी के अब्दुल्ला सेठ के साथ न्यायालय में गए।

वह वहाँ न्यायालय में बैठे ही होंगे कि न्यायाधीश ने उनकी तरफ अंगुली उठाई। कड़ी आवाज में यह कहा गया, ''तुम अपनी पगड़ी उतार दो।''

गांधीजी आश्चर्यचकित रह गए। उन्होंने घूमकर देखा कि आसपास कई मुसलमान पगड़ी बाँधे हुए हैं। वह समझ नहीं पाए कि केवल उन्हें ही क्यों फटकारा गया है।

''श्रीमान'', उन्होंने उत्तर दिया, ''मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि मैं अपनी पगड़ी क्यों उतार दूँ। मैं नहीं उतारता।''

न्यायाधीश ने चिल्लाकर कहा, ''कृपा कर अपनी पगड़ी उतार दो!''

यह सुनकर गांधीजी न्यायालय से उठ गए।

अब्दुल्ला गांधीजी के पीछे-पीछे दौड़े गए और उनकी बाँह पकड़ ली।

''आप जानते नहीं हैं,'' अब्दुल्ला ने कहा, ''मैं आपको कारण बतला दूँगा कि ये गोरी चमड़ीवाले ऐसा व्यवहार क्यों करते हैं!''

उन्होंने आगे कहा, ''ये लोग भारत के लोगों को छोटा समझते हैं और उन्हें 'कुली' या 'सामी' के नाम से पुकारते हैं। जो मुसलमान हैं, उन्हें पगड़ी पहनने की इजाजत दे दी गई है, क्योंकि उनके धर्म में वैसे कपड़े पहनना जरूरी है।''

गांधीजी की आँखें क्रोध से तमतमाने लगीं।

''न्यायाधीश ने मेरा अपमान किया है।'' उन्होंने कहा, ''यह नियम तो किसी भी आजाद आदमी का अपमान है। ऐसे अपमानजनक नियम के खिलाफ मैं आज ही डरबन प्रेस में लिखकर अपना विरोध प्रदर्शित करूँगा।''

और गांधीजी ने लिखा भी। उनका पत्र प्रकाशित हुआ और उसे आशा से अधिक प्रचार मिला। फिर भी, कुछ समाचार-पत्रों की दृष्टि में गांधीजी 'अप्रिय अतिथि' ही माने गए।

डरबन में गांधीजी ने एक सप्ताह बिताया और फिर प्रिटोरिया गए। वहाँ उन्हें मुकदमे की पैरवी करनी थी, इसलिए वह यहाँ आए थे। प्रथम श्रेणी का टिकट लेकर वह रेल में चढ़े। रात को नेटाल की राजधानी मेरित्सबर्ग पहुँचे। वहाँ एक अंग्रेज भी उसी डिब्बे में आ गया।

उसने गांधीजी की तरफ घृणा से देखा, कंडक्टर को बुलाया और कहा, ''इस कुली को यहाँ से उठा ले जाओ और वहाँ पटक दो जहाँ इसकी जगह है। मैं काले आदमी के साथ यात्रा नहीं करूँगा।''

''जो आज्ञा, श्रीमान।'' कंडक्टर ने उत्तर दिया।

फिर उसने गांधीजी की तरफ देखा, ''ओ सामी, उठो और मेरे साथ दूसरे डिब्बे में आ जाओ।''

''नहीं, मैं नहीं जाऊँगा।'' गांधीजी ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया, ''मेरे पास प्रथम श्रेणी का टिकट है और मुझे अधिकार है कि मैं यहाँ बैठ सकूँ।''

तब एक सिपाही को बुलाया गया और गांधीजी को बोरिया-बिस्तर सहित उस डिब्बे से बाहर निकाल दिया गया। उन्हें प्लेटफॉर्म पर ही छोड़कर रेल चली गई। वह रात उन्होंने सर्दी से ठिठुरते हुए अँधेरे प्रतीक्षालय में काटी।

यह अनुभव गांधीजी के मन में जम गया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि चाहे जो कीमत चुकानी पड़े, वह हर अन्याय के खिलाफ लड़ेंगे। उन्होंने रेलवे के जनरल मैनेजर को अपना विरोध पत्र भेजा, लेकिन वहाँ उनके कर्मचारी के पक्ष को ही उचित ठहराया गया।

उसी यात्रा में प्रिटोरिया जाते कुछ और मुश्किलें भी उनकी राह देख रही थीं। उन्हें चार्ल्सटाउन से जोहांसबर्ग घोड़ा-गाड़ी में जाना था। उनके पास प्रथम श्रेणी का टिकट था, लेकिन गोरे कंडक्टर ने उन्हें अंदर नहीं बैठने दिया।

उसने उनका मजाक उड़ाया, ''ओ बैरिस्टर कुली, तुम अंग्रेजों के साथ अंदर नहीं बैठ सकते। टिकट हो या न हो, बैठना होगा बाहर कोच के पायदान पर। वैसे वह मेरे बैठने की जगह है, लेकिन वह मैं तुम्हें दे दूँगा और तुम्हारी जगह मैं अंदर बैठ जाऊँगा।''

इस अपमान से गांधीजी तमतमा उठे; लेकिन भारी मन से चालक के पीछे वाली जगह जाकर बैठ गए। उस समय वह झगड़ने की मन:स्थिति में नहीं थे।

फिर जब एक जगह घोड़े बदलने के लिए गाड़ी रुकी तो कंडक्टर उनके पास आया। उसने कहा, ''ऐ सामी, अब तुम नीचे बैठो। हम सिगरेट पीएगा।'' और उसने पैरों के पास एक गंदा थैला फैला दिया।

यह देख गांधीजी को आग लग गई। वह बोले, ''मेरे पास प्रथम श्रेणी का टिकट है, जिसके अनुसार मैं अंदर बैठ सकता हूँ; लेकिन तुमने मुझे यहाँ बैठने के लिए मजबूर किया। अब तुम यह चाहते हो कि मैं तुम्हारे पैरों में बैठूँ। नहीं, मैं यहाँ नहीं बैठूँगा।''

''तुम्हें यहीं बैठना होगा।'' कंडक्टर ने चीखकर कहा। फिर वह गांधीजी को घूँसा जमाकर उन्हें धक्का देते हुए नीचे उतारने लगा। गांधीजी बरदाश्त करते रहे। वह सरिया पकड़े खड़े रहे, लेकिन अगले घूँसे ने तो उन्हें करीब-करीब धराशायी कर दिया।

यह देख सहसा गाड़ी में बैठे हुए कुछ यात्री शोर मचाने लगे। वे कहने लगे, ''बंद करो यह सब। उसे छोड़ दो कंडक्टर। वह ठीक बोल रहा है। उसे अंदर आकर हमारे साथ बैठने दो।''

कंडक्टर को उन्हें छोड़ देना पड़ा।

अगली रात वह जोहांसबर्ग पहुँचे। रास्ते की दुर्घटना ने उन्हें हिलाकर रख दिया। उनके पास एक मुसलमान व्यापारी का पता था, लेकिन इतनी रात गए उन्होंने उसके घर जाना ठीक नहीं समझा। टैक्सी से वह ग्रैंड नेशनल होटल पहुँचगए।

होटल के मैनेजर ने उनकी तरफ गौर से देखा और कहा, ''क्षमा कीजिए, आज रात कोई कमरा खाली नहीं है।''

गांधीजी समझ गए कि केवल काले रंग के कारण ही उन्हें कमरा देने से इनकार कर दिया गया है। अब उनके सामने उस व्यापारी के यहाँ चले जाने के अलावा कोई चारा नहीं रह गया। वह उसके यहाँ रात बिताने चले गए।

दूसरे दिन फिर उन्होंने प्रथम श्रेणी का टिकट खरीदा और रेल से प्रिटोरिया जाने के लिए रवाना हुए।

उस डिब्बे में केवल एक और यात्री था। वह ठीक-ठाक कपड़े पहने एक अंग्रेज था। गांधीजी को आता देख उसने अखबार पर से नजर उठाकर उन्हें देखा, सिर हिलाया और फिर पढ़ने में डूब गया। कुछ देर बाद ही कंडक्टर आ पहुँचा। गांधीजी ने फुरती से उसे अपना प्रथम श्रेणी का टिकट दिखा दिया।

''टिकट से कुछ नहीं होता, सामी।'' कंडक्टर ने गुर्राकर कहा, ''उठो और झटपट तीसरे दर्जे में चले जाओ।''

गांधीजी कोई उत्तर देते, उससे पहले ही उस अंग्रेज ने अखबार रख दिया और कंडक्टर की तरफ देखा। वह तीखी आवाज में बोला, ''आखिर इस भले आदमी को तंग करने में तुम्हें क्या मिल रहा है? टिकट के अनुसार उसे अधिकार है कि वह यहाँ बैठ सके।'' फिर गांधीजी की तरफ देखकर वह बोला, ''जहाँ बैठे हो वहाँ आराम से बैठो।''

गांधीजी ने उसे धन्यवाद दिया और एक पुस्तक खोलकर पढ़ने लगे।

शाम को बहुत देर से रेल प्रिटोरिया पहुँची। स्टेशन पर उन्हें लेने कोई नहीं आया था, इसलिए रात होटल में ही काटनी पड़ी।

दूसरे दिन एक मित्र ने उन्हें एक मकान में ठहरा दिया। वहाँ पर किराए पर रहने लगे। उन्होंने अब्दुल्ला के मुकदमे का काम भी शुरू कर दिया। उस काम में व्यस्त रहते हुए भी उन्होंने प्रिटोरिया में रहनेवाले भारतीय लोगों की एक बैठक बुलाई। सहायता की तैयब हाजी खाँ मुहम्मद ने, जो कि वहाँ के एक प्रभावशाली व्यापारी थे। गिनती के प्रिटोरिया निवासी भारतीय बैठक में भाग ले पाए। गांधीजी ने उस समय पहली बार किसी सभा में भाषण दिया।

वह बोले, ''हम लोगों के साथ बहुत भेदभाव बरता जाता है। आखिर जन्म, परिवार, जाति और धर्म के आधार पर हमें अलग क्यों समझा जाता है? हम लोगों को एक संगठन बनाना चाहिए, जिसमें सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व हो और हम लोग अपनी जरूरतों व शिकायतों की सूचना शासन को देते रहें।''

श्रोताओं ने उनकी बात को बहुत ध्यान से सुना। यह तय किया गया कि प्रिटोरिया के सभी भारतीयों की नियमित बैठक हुआ करे।

साथ-ही-साथ गांधीजी दादा अब्दुल्ला एंड कंपनी और उनके प्रतिपक्षी के बीच हुए पत्र-व्यवहार का अंग्रेजी में अनुवाद भी करते रहे। सब बातों का अध्ययन करने पर उन्होंने यह पाया कि उनके मुवक्किल का दावा न्याय की दृष्टि से उचित है। वह यह भी जानते थे कि मुकदमा अगर कोर्ट में गया तो बरसों चलता रहेगा, इसलिए उन्होंने दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों को बुलाया।

उनसे वह बोले, ''आप लोग ऐसे किसी आदमी को मध्यस्थता के लिए क्यों नहीं चुन लेते, जिस पर दोनों ही विश्वास कर सकें?''

प्रतिनिधियों ने उनकी बात को बड़ी गंभीरता से सुना। इस तरह के नए विचार सुनकर उन्हें आश्चर्य हुआ। यह युवक उन वकीलों जैसा नहीं है, जैसे वकीलों से वह अब तक मिलते रहे हैं। इस सुझाव की उन्होंने प्रशंसा की और वे सहमत होगए।

मध्यस्थ की नियुक्ति की गई और उसने निर्णय दिया गांधीजी के मुवक्किल दादा अब्दुल्ला एंड कंपनी के पक्ष में।

उनकी जीत हुई थी, लेकिन गांधीजी ने अपने पक्ष से कहा कि वह प्रतिपक्ष के साथ नरमी का ही व्यवहार करें। वह इस बात के लिए सहमत हो गए कि जो धन लिया जाना है, वह एकमुश्त न लिया जाए, बल्कि लंबे समय में किस्तों में वह वसूल किया जा सके। इस समझौते से दोनों पक्ष संतुष्ट हो गए।

वकील के रूप में गांधीजी की पहली विजय विरोधी को पछाड़ देनेवाली विजय नहीं थी, बल्कि मानवता और सद्भावना की विजय थी।

औरेंज फ्री स्टेट में सन् 1888 में लागू किए गए एक कानून के अनुसार वहाँ के भारतीय अपने सारे अधिकारों से वंचित कर दिए गए थे। वे वहाँ केवल एक शर्त पर रह सकते थे कि नौकर-चाकर के रूप में काम करें। वहाँ के व्यापारी नाम मात्र का हरजाना देकर बाहर भेज दिए गए थे।

सन् 1886 में पास किए गए एक कानून के अनुसार ट्रांसवाल में रहनेवाले भारतीयों को प्रति व्यक्ति 3 पौंड व्यक्ति-कर हर साल देना पड़ता था। कुछ जगह उनके लिए अलग छोड़ दी गई थी और उसके अलावा वहाँ वे जमीन भी नहीं खरीद सकते थे। उन्हें मताधिकार भी नहीं था। यदि वे रात 9 बजे के बाद कहीं जाते हैं तो उन्हें अपने पास अनुमति-पत्र रखना पड़ता था। कुछ ऐसे प्रमुख पक्ष थे, जिन पर से उन्हें गुजरने की इजाजत भी नहीं थी।

जिस तरह का व्यवहार भारतीय लोगों के साथ किया जाता था, वह गांधीजी को बहुत अपमानजनक लगा। उन्हें लगा, यह उनका कर्तव्य है कि उनके अधिकारों की रक्षा करें और उनके कष्टों को दूर करें।

वह रोज शाम अपने अंग्रेज मित्र कोट्स के साथ घूमने जाया करते थे और कभी भी रात 10 बजे से पहले नहीं लौटते थे। उन्होंने राज्य के अटॉर्नी से इस तरह का एक पत्र ले लिया था कि वह पुलिस की आज्ञा के बिना चाहे जब बाहर जा सकें।

एक शाम गांधीजी अकेले थे। अपनी आदत के अनुसार वे फुरती से चले जा रहे थे कि सहसा उन पर किसी ने हमला कर दिया। वह गिर गए, घायल भी हो गए। वह जिस आदमी से छूटने की कोशिश कर रहे थे, वह था पुलिस का सिपाही।

''अब तुम्हें कानून के पालन की आदत पड़ेगी।'' सिपाही चिल्लाकर बोला, ''क्या तुम नहीं जानते हो कि किसी भी भारतीय को राष्ट्रपति भवन के पिछले भाग से गुजरने की इजाजत नहीं है?''

यह कहकर सिपाही ने फिर उन्हें ठोकर लगाई।

तभी किसी परिचित आवाज ने उनसे मित्रता पूर्वक पूछा, ''क्या चोट लग गई है, गांधी?''

यह आवाज थी कोट्स की। जब गांधीजी पर हमला किया जा रहा था, वह उधर से गुजर रहे थे। कोट्स ने सिपाही को चेतावनी दी, ''यह आदमी मेरा मित्र है और एक सुप्रसिद्ध वकील भी।'' वह बोले, ''अगर यह तुम्हारी शिकायत करेगा तो मैं गवाही दूँगा।''

फिर वह अपने मित्र के पास जाकर बोले, ''मुझे बड़ा खेद है गांधी, कि तुम पर ऐसा निर्मम आक्रमण किया गया।''

''इसमें खेद की कोई बात नहीं है।'' गांधीजी ने कहा, ''यह बेचारा यह सब कैसे जान सकता है? इसके लिए तो सारे काले लोग एक बराबर हैं। मैंने तो यह नियम बना लिया है कि किसी भी व्यक्तिगत शिकायत के लिए मैं अदालत में नहीं जाऊँगा।''

''यह उत्तर तुम्हारे अनुरूप है।'' कोट्स ने कहा, जो कि उस सिपाही के दुर्व्यवहार पर तब भी नाराज ही थे।

कोट्स दुबारा सिपाही के पास गए और उससे कहा, ''तुम किसी भारतीय को विनम्रता से यह बतला सकते हो कि यहाँ के नियम क्या हैं, यह नहीं कि उस पर टूट पड़ो।''

गांधीजी ने कहा, ''कोई बात नहीं। मैंने इसे क्षमा कर दिया है।''

अब्दुल्ला का मुकदमा निबट गया तो गांधीजी को लगा कि दक्षिण अफ्रीका में ठहरने की अब कोई आवश्यकता नहीं है। सन् 1893 के अंत में वह भारत लौटने के लिए अपना स्थान सुरक्षित करवाने डरबन गए। अब्दुल्ला ने उनके सम्मान में एक विदाई पार्टी का आयोजन किया।

उसी दिन समाचार-पत्र देखते हुए गांधीजी ने पढ़ा कि नेटाल विधानसभा के पास स्वीकृति के लिए एक ऐसा विधेयक है, जो अगर लागू हो गया तो विधानसभा के लिए सदस्य चुनने का भारतीयों का अधिकार छिन जाएगा। यहाँ भी उन्हें मताधिकार नहीं मिलेगा। इस बात को गांधीजी ने उस पार्टी में आए हुए लोगों के सामने रखा।

''हमें ऐसे मामलों से क्या लेना-देना। हम कुछ नहीं जानते।'' अब्दुल्ला सेठ ने कहा, ''हम तो केवल वही बात समझ सकते हैं, जिसका असर हमारे व्यापार पर पड़ता है।''

गांधीजी ने गंभीर होकर बताया, ''यह विधेयक अगर पास होकर कानून बन जाता है तो हम लोगों को खासी परेशानी में डाल देगा। यह तो एक तरह से हमारी मौत की शुरुआत है। यह हमारे बुनियादी आत्म-सम्मान पर आघात है।''

तब भारतीयों को लगा कि कौन सी बात दाँव पर लगी है। लेकिन वे लोग यह सोचने में भी असमर्थ थे कि आखिर किया क्या जाए। लोगों ने गांधीजी से अनुरोध किया कि वह जाना रद्द कर दें और उनकी सहायता करें। वह सहमत हो गए कि एक महीने रुककर इस विधेयक के खिलाफ विरोध प्रदर्शित करने के लिए काम करेंगे। देर रात को भारतीय लोगों ने अब्दुल्ला सेठ के घर एक बैठक की। अध्यक्ष थे वहाँ के अत्यंत प्रभावशाली भारतीय व्यापारी सेठ हाजी मुहम्मद। उन्होंने मताधिकार के उस विधेयक का सारी शक्ति के साथ विरोध करने की प्रतिज्ञा की।

विधानसभा के अध्यक्ष को तार भेजे गए और नेटाल के प्रधानमंत्री से प्रार्थना की गई कि इस विधेयक पर हो रहे विचार-विनिमय को स्थगित कर दिया जाए। अध्यक्ष ने तत्काल उत्तर दिया कि विचार-विनिमय दो दिन के लिए रोक दियाजाएगा।

उसके बाद नेटाल के भारतीयों ने विधानसभा को इस विधेयक के खिलाफ एक याचिका भेजी। साथ ही एक याचिका लॉर्ड रिपन को भी भेजी गई, जो उस समय उपनिवेश मंत्री थे। उस पर 10 हजार से भी अधिक भारतीय लोगों ने हस्ताक्षर किए। याचिका की प्रतियाँ दक्षिण अफ्रीका, इंग्लैंड और भारत में भी वितरित की गईं। नेटाली भारतीयों की इस अवस्था के प्रति सहानुभूति की कमी नहीं थी, लेकिन आंदोलन को शुरू होने में इतनी देर हो गई थी कि वह विधेयक कानून बनने से बच नहीं सकता था।

फिर भी इस आंदोलन से कुछ तो हुआ ही। भारत के लोगों को पहली बार नेटाल की स्थिति के बारे में जानकारी मिली। इसका विशेष महत्त्वपूर्ण परिणाम था दक्षिण अफ्रीका में पैदा हुई एक ऐसी नई लहर, जिसने भारतीय लोगों में जागृति पैदा कर दी।

नेटाली भारतीयों ने गांधीजी से प्रार्थना की कि वह वहाँ कुछ समय और रुक जाएँ और उनका पथ-प्रदर्शन करें। गांधीजी ने कहा कि वह वहाँ रुकने के लिए सहमत हैं, अगर वहाँ भारतीय लोग उन्हें पर्याप्त कानूनी काम दे सकें। सभी इस पर खुशी से राजी हो गए। 20 व्यापारियों ने अपने कानूनी काम गांधीजी को सौंप दिए।

जब गांधीजी ने अदालत में वकील के रूप में काम करने के लिए अरजी दी तो वहाँ के अंग्रेज वकीलों ने इसका कड़ा विरोध किया। लेकिन नेटाल के सर्वोच्च न्यायालय ने उस विरोध पर ध्यान न देते हुए उन्हें काम करने की अनुमति दे दी।

शीघ्र ही गांधीजी डरबन में बेहद व्यस्त वकीलों की गिनती में आ गए। लेकिन वकालत तो उनके लिए दूसरे महत्त्व का पेशा था, उनकी प्रमुख रुचि तो जन-कार्यों में थी। उन्हें लगा कि केवल याचिकाएँ और विरोध-पत्र भेजने से ही भारतीयों का काम नहीं चलेगा; बल्कि एक सुनियोजित आंदोलन की आवश्यकताहै।

इसलिए उन्होंने सलाह दी कि भारतीय लोगों के हितों की रक्षा के लिए एक स्थायी संगठन बनाया जाना चाहिए। इस विषय पर चर्चा करने के लिए एक बैठक बुलाई गई। दादा अब्दुल्ला के निवास-स्थान का बड़ा हॉल पूरा भर गया। उस समय वहाँ नेटाल इंडियन कांग्रेस की स्थापना की गई।

सन् 1894 में नेटाल शासन ने उन भारतीयों पर, जो अनुबंध के अंतर्गत लाए गए थे, वार्षिक व्यक्ति-कर लगाने का फैसला किया। ये वे भारतीय मजदूर थे, जो पाँच साल के लिए अनुबंध पर भारत से लाए गए थे और इतने कम वेतन पर काम करते थे कि जिससे पेट भी न भर सके। अनुबंध के अनुसार, वे अपने मालिक को छोड़ नहीं सकते थे। उनके साथ गुलामों जैसा बरताव किया जाता था।

उन लोगों को दक्षिण अफ्रीका इसलिए ले जाया गया कि वे उस उपनिवेश में रहनेवाले गोरों की खेती के कामों में सहायता करें। भारतीय लोगों ने आशा से भी अच्छा काम करके दिखाया। उन्होंने कड़ी मेहनत की, जमीन खरीदी और खुद अपने खेतों में अनाज पैदा करना शुरू कर दिया। उनका प्रयास इतने तक ही समाप्त नहीं हो

गया। उन्होंने वहाँ मकान बना लिये और मजदूरों से कहीं अधिक अच्छे स्तर पर रहने लगे। गोरों को यह सब पसंद नहीं आया। वे चाहते थे कि अनुबंध के समाप्त होने पर वे लोग अपने देश वापस चले जाएँ। उन लोगों को परेशानी में डालने के लिए ही 25 पौंड वार्षिक का व्यक्ति-कर शासन ने उन पर लगा दिया था।

नेटाल भारतीय कांग्रेस ने इसके विरुद्ध सशक्त आंदोलन शुरू कर दिया। बाद में भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड एलिस के हस्तक्षेप से वह कर 3 पौंड कर दिया गया। फिर भी, गांधीजी ने उसे 'निष्ठुर कर' का नाम दिया। ऐसा कर विश्व के किसी भू-भाग में कभी नहीं लगाया गया था। नेटाल इंडियन कांग्रेस ने अपना आंदोलन जारी रखा। लेकिन 20 वर्ष बाद जाकर कहीं यह व्यक्ति-कर पूरी तरह हटाया जा सका।

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में तीन साल बिताए। अब वह एक विख्यात व्यक्ति थे। हर आदमी उनको अँगरखे और पगड़ी से पहचानता था। उनका वकालत का काम भी खूब जम गया था। उन्हें लगा कि वह लंबे समय के लिए रुक गए हैं। वह यह जानते थे कि लोग उन्हें वहाँ चाहते हैं। सन् 1896 में उन्होंने घर जाने और पत्नी तथा बच्चों को दक्षिण अफ्रीका ले आने की अनुमति चाही; क्योंकि वह सोचते थे कि उनकी भारत-यात्रा अपने काम के अलावा दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों के पक्ष में समर्थन प्राप्त करने में भी सहायक होगी। उन्होंने सारा काम इस तरह व्यवस्थित कर दिया कि वह छह महीने की छुट्टी प्राप्त कर सकें।

सन् 1896 के मध्य में गांधीजी भारत के लिए रवाना हुए। 24 दिन की समुद्री यात्रा के बाद वह कलकत्ता पहुँचे, फिर वहाँ से राजकोट गए। कस्तूरबाई और दोनों पुत्र उनसे मिले। वह सुखद पारिवारिक मिलन था।

लेकिन दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की स्थिति हमेशा उनके दिमाग पर इस तरह छाई रहती थी कि वह शांतिपूर्वक गृहस्थ जीवन का सुख भोगकर संतुष्ट नहीं हो सकते थे। तब उन्होंने एक काम शुरू करने की बात सोची कि भारतीय जनता को दक्षिण अफ्रीका की वास्तविक स्थिति की पूरी जानकारी दी जाए।

वह प्रमुख अखबारों के संपादकों और महत्त्वपूर्ण भारतीय नेताओं से मिले। इनमें प्रमुख थे—महाराष्ट्र के नेता बाल गंगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले, जो गांधीजी की तरह ही 27 वर्ष की उम्र में प्रसिद्ध हो गए थे।

गांधीजी जहाँ-जहाँ गए, उन्होंने दक्षिणी अफ्रीकी देशबंधुओं के बारे में लोगों को जानकारी देकर उन्हें जागरूक करने का प्रयत्न किया। कई अखबारों ने उनका दृष्टिकोण प्रकाशित किया और इस मामले में पूरी सहमति जताई। इन अखबारों में प्रकाशित टिप्पणी और दृष्टिकोण की जानकारी गांधीजी के लौटने से बहुत पहले ही दक्षिण अफ्रीका पहुँच चुकी थी।

उन्हीं दिनों बंबई में प्लेग का रोग फैल गया और भय दिखाई देने लगा कि वह आसपास भी फैल जाएगा। राजकोट में गांधीजी एक सेवा-दल में सम्मिलित हो गए, जो नागरिकों को सफाई तथा बीमारी की रोकथाम के उपाय सिखाने का प्रयत्न कर रहा था, जिससे कि रोग अधिक न फैल जाए।

नवंबर के अंत में गांधीजी को नेटाल से एक जरूरी समाचार मिला कि वह तत्काल लौट आएँ। वहाँ कुछ ऐसी बातें हो गई हैं कि उनकी उपस्थिति आवश्यक है। गांधीजी एक बार फिर दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हुए। इस बार वह कस्तूरबाई तथा अपने दोनों बच्चों के अलावा विधवा बहन के इकलौते लड़के को भी साथ ले गए।

दक्षिण अफ्रीका के यूरोप निवासियों ने सुना कि गांधीजी लौट रहे हैं। उन लोगों ने नेटाल निवासी श्वेत लोगों के खिलाफ भारत में किए जा रहे प्रचार के बारे में भी सुन रखा था।

सभाएँ की गईं कि जब गांधीजी लौटें तो उनके साथ कैसे निबटा जाए।

इसी बीच यह अफवाह भी फैली कि गांधीजी दो जहाज भर भारतीयों सहित वहाँ बसने के लिए वापस आ रहे हैं। यह ठीक था कि कुछ भारतीय नेटाल जा रहे थे और वे दो जहाजों में भी थे, लेकिन उनका गांधीजी से कोई संबंध नहीं था।

18 दिसंबर को गांधीजी का जहाज डरबन पहुँचा। यात्रियों को बिना ठीक से डॉक्टरी जाँच करवाए उतरने की आज्ञा नहीं थी, क्योंकि वे बंबई से आ रहे थे, जहाँ प्लेग फैला हुआ था। जहाज लगभग पाँच दिन तक अलग पड़ा रहा कि उसके संसर्ग से रोग न फैले।

डरबन के गोरों ने गांधीजी और अन्य भारतीयों के लौटने पर आंदोलन शुरू कर दिया था। इस आंदोलन ने जहाज के किनारे लगने में और देरी लगा दी। भारत में यूरोप-विरोधी भावना फैलाने के लिए गांधीजी की निंदा की जा रही थी। आखिरकार 23 दिनों के बाद जहाज को बंदरगाह में घुसने की इजाजत दी गई।

गांधीजी को किसी तरह यह सूचना भेज दी गई कि वह अन्य लोगों के साथ जहाज से न उतरें और शाम तक प्रतीक्षा करें, क्योंकि बंदरगाह पर गोरों की क्रूर भीड़ जमा है।

कस्तूरबाई और बच्चों को गांधीजी के पारसी मित्र रुस्तमजी के घर भेज दिया गया। बाद में दादा अब्दुल्ला एंड कंपनी के कानूनी सलाहकार लॉटन के साथ गांधीजी किनारे पर आए।

चारों तरफ सन्नाटा था। परंतु कुछ युवकों ने उन्हें पहचान लिया और वे चिल्लाए, ''देखो, वह गांधी जा रहा है।''

लोग एकदम इकट्ठे हो गए और शोर मच गया। गांधीजी और उनके मित्र जब वहाँ से गुजर रहे थे, तब भीड़ इतनी अधिक बढ़ गई कि कदम आगे रखना भी मुश्किल हो गया।

सहसा लॉटन एक तरफ धकेल दिए गए और भीड़ गांधीजी पर टूट पड़ी।

उन लोगों ने गांधीजी पर पत्थर, बेंत, ईंट और सड़े हुए अंडों की बौछार कर दी। कोई उनकी पगड़ी ले भागा। दूसरे लोगों ने इस कदर ठोकरें मारीं कि उनका दुर्बल शरीर सहन न कर सका। उन्हें चक्कर आ गया। पर वह एक मकान के जँगले से टिके रहे। गोरों की उत्तेजना अबाध थी। वे लगातार गांधीजी को पीटते रहे और ठोकरें मारते रहे।

तभी किसी औरत की आवाज सुनाई पड़ी, ''रुको कायरो, उसे पीटना बंद करो।''

यह आवाज पुलिस सुपरिंटेंडेंट की पत्नी की थी। वह बीच में आ गई और भीड़ तथा गांधीजी के बीच अपनी छतरी खोलकर खड़ी हो गई। उससे भीड़ पर रोक लगी। फिर जल्दी ही पुलिस आ गई और भीड़ तितर-बितर कर दी गई।

गांधीजी को पुलिस चौकी के सुरक्षित स्थान में रहने को कहा गया, लेकिन उन्होंने मना कर दिया।

वह बोले, ''वे लोग जब अपनी गलती समझेंगे, तब निश्चित ही शांत हो जाएँगे।''

फिर पुलिस की सुरक्षा में गांधीजी रुस्तमजी के घर पहुँचे। वहाँ एक डॉक्टर ने उनके घावों की मरहम-पट्टी की।

साँझ ढले गोरों ने वह मकान भी घेर लिया।

कुछ आवाजों ने माँग की, ''गांधी को हमारे हवाले करो।''

वे चिल्लाने लगे, ''अगर गांधी हमें नहीं मिला तो हम इस मकान को आग लगा देंगे।''

गांधीजी जानते थे कि वे लोग धमकी के अनुसार आग लगा सकते हैं। इसलिए उन्होंने पुलिस कप्तान अलेक्जेंडर की सलाह मान ली। उन्होंने हिंदुस्तानी सिपाही की वरदी पहनी और भीड़ को चकमा देकर वहाँ से खिसक गए।

दो दिन बाद लंदन से एक सूचना आई। तत्कालीन उपनिवेश मंत्री जोसेफ चैंबरलेन ने नेटाल सरकार से कहा कि गांधीजी पर हमला करनेवाले प्रत्येक अपराधी पर मुकदमा चलाया जाए। नेटाल सरकार ने गांधीजी से उस घटना के प्रति खेद प्रकट किया और विश्वास दिलाया कि प्रत्येक आक्रमणकारी को सजा दी जाएगी।

जब गांधीजी को बुलाया गया कि वह अपराधियों को पहचानें तो उन्होंने वैसा करने से इनकार कर दिया।

''मैं नहीं चाहता कि किसी पर भी मुकदमा चलाया जाए।'' वह बोले, ''मैं हमलावर लोगों को दोष नहीं देता। वे लोग मेरे बारे में फैली अफवाह से गुमराह हो गए थे। मेरा विश्वास है कि जैसे ही सच्ची बात उनके सामने आएगी, वे लोग अपने किए पर दु:खी होंगे।''

गांधीजी के इस वक्तव्य ने डरबन का वातावरण ही बदल दिया। समाचार-पत्रों ने गांधीजी को निर्दोष बताया और उन लोगों की निंदा की, जिन्होंने उपद्रव किया था।

डरबन की इस घटना ने गांधीजी की प्रसिद्धि को बढ़ाया तथा विदेशों में दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों के प्रति और अधिक सहानुभूति प्राप्त होने लगी।

दक्षिण अफ्रीका में जब लगातार संघर्ष चल रहा था, गांधीजी में एक तरह का परिवर्तन आने लगा। उन्होंने आराम और सुविधा का जीवन शुरू किया था, लेकिन वह अधिक समय के लिए नहीं था। जैसे-जैसे वह जनकार्यों में अधिक-अधिक व्यस्त होते गए, वैसे-वैसे उनका जीवन और अधिक सादा होता गया। उन्होंने अपना खर्च कम कर दिया, कपड़े खुद ही धोने लगे और उन पर लोहा भी करने लगे। यह काम शुरू-शुरू में तो वह अच्छी तरह नहीं कर पाए और इससे दूसरे वकील उन पर हँसे भी। लेकिन शीघ्र ही वह इसमें पारंगत हो गए। अब उनकी कॉलर कम सख्त और कम चमकदार नहीं रहती थी।

एक बार प्रिटोरिया में गांधीजी नाई के पास गए। नाई ने बदतमीजी की और काले आदमी के बाल काटने से मना कर दिया। गांधीजी उसी समय बाल काटने की मशीन खरीद लाए और उन्होंने अपने बाल खुद ही काट लिये। आगे से बाल काटने में तो थोड़ी-बहुत सफलता मिल भी गई, लेकिन पीछे के बाल उन्होंने बिगाड़ लिये। वह अजीब लग रहे थे। उन्हें देखकर न्यायालय में उनके मित्र उन पर हँसने लगे।

उन्होंने पूछा, ''यह तुम्हारे बालों को क्या हुआ है, गांधी? क्या चूहों ने इन्हें कुतर डाला?''

गांधीजी ने गर्व से उत्तर दिया, ''नहीं भाई, मैंने अपने बाल खुद ही काटे हैं।''

फिर गांधीजी ने अपने भोजन में भी परिवर्तन शुरू कर दिया। उन्होंने बगैर पकाया खाना खाना शुरू कर दिया। वह इस बात में विश्वास करते थे कि यदि ताजा फलों और कंद-मूलों पर निर्भर रहा जाए तो आदमी संयमी रह सकता है और आध्यात्मिक शक्ति भी प्राप्त कर सकता है। अपने खाने के साथ उन्होंने कई प्रयोग किए। वह इस निर्णय पर भी पहुँचे कि उपवास से आत्मबल बढ़ता है।

जब वह इस तरह के प्रयोग करने में लगे हुए थे, तभी बोअर युद्ध शुरू हो गया। बोअर लोग मूलत: डच देश के थे, जो दक्षिण अफ्रीका में रहते थे। वह ब्रिटिश लोगों से लड़ रहे थे।

इन दोनों ही श्वेत राष्ट्रों ने भारतीय लोगों के साथ अच्छा सलूक नहीं किया था। गांधीजी इन दोनों में से किसी को समर्थन नहीं देना चाहते थे।

लेकिन ब्रिटिश शासन के प्रति निष्ठा के कारण उसकी मदद के लिए उन्होंने घायलों की सहायतार्थ एक भारतीय सेवा दल की स्थापना की। इस बात से उनके अनुयायियों को आश्चर्य हुआ। तब वह बोले, ''भारत केवल ब्रिटिश साम्राज्य में रहकर विकास करते हुए ही पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर सकता है। इसलिए हमें अंग्रेजों की सहायता करनी चाहिए।''

अंग्रेजों को युद्ध में सहायता मिली और जो सेवा दल बनाया गया था, वह भंग कर दिया गया। इंग्लैंड के अखबारों ने भारतीय जनता के द्वारा की गई सहायता की तारीफ की। भारतीय और यूरोपवासियों के बीच अब सौहार्दपूर्ण संबंध हो गए थे और वे आशा करने लगे थे कि उनकी शिकायतें अब जल्द ही दूर हो जाएँगी।

सन् 1901 में अपना परिवार डरबन लाए गांधीजी को छह वर्ष हो चुके थे। अब उन्हें लगने लगा कि उनका अगला कार्यक्षेत्र दक्षिण अफ्रीका नहीं, बल्कि भारत है। भारत के मित्र भी उन्हें घर लौट आने के लिए कह रहे थे। जब उन्होंने अपने साथ काम करनेवालों को अपना निर्णय बताया तो वे लोग उन्हें और ठहरने के लिए आग्रह करने लगे।

लंबी चर्चा के बाद वे उन्हें जाने देने के लिए राजी हो गए। शर्त यह थी कि जब भी वहाँ के भारतीय लोगों को उनकी आवश्यकता होगी, वह दक्षिण अफ्रीका अवश्य लौट आएँगे। वे सहमत हो गए। विदाई के आयोजन किए गए और उन्हें अनेक उपहार भेंट में दिए गए।

उपहार इतने अधिक और बेशकीमती थे कि गांधीजी को उन्हें स्वीकार करना अनुचित लगा। वह उपहारों को उन्हें ही लौटा देना चाहते थे जिन्होंने दिए थे, लेकिन वे लोग वापस लेने को तैयार नहीं थे। तब उन्होंने शर्तनामा तैयार करके सारी चीजें बैंक में जमा करवा दीं कि उनका उपयोग वहाँ की भारतीय जनता के कल्याण के लिए किया जाए।

भारत लौटने पर गांधीजी सारे देश की यात्रा पर निकले। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन दिनशा पाचा की अध्यक्षता में कलकत्ता में हो रहा था। गांधीजी ने अधिवेशन में भाग लिया। कांग्रेस के साथ यह उनका पहला संपर्क था। इसी कांग्रेस का भविष्य में उन्हें शानदार नेतृत्व करना था।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही उन दिनों एकमात्र ऐसी संस्था थी, जिसने भारतीय जनता को अपना राजनीतिक दृष्टिकोण सामने रखने का अवसर दिया। कई प्रसिद्ध भारतीय व्यक्ति उसके सदस्य थे और वह प्रभावशाली संस्था भी थी; लेकिन उसके निर्णयों का सरकार पर नहीं के बराबर प्रभाव होता था।

सन् 1901 के कलकत्ता अधिवेशन में गांधीजी को कांग्रेस के कई नेताओं से, जैसे—सर फिरोज शाह मेहता, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले आदि से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ।

वह कांग्रेस की कार्य-पद्धति से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने देखा कि उसके प्रतिनिधियों में एकता की कमी है। यह भी कि वे अंग्रेजी बोलने तथा वेशभूषा और तौर-तरीकों में परिचय की नकल तो करते थे, लेकिन कैंप में सफाई रखने की तरफ उनका कतई ध्यान नहीं था। गांधीजी उन्हें सबक सिखाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने शौचालय तथा स्नानघर की खुद ही चुपचाप सफाई शुरू कर दी। कोई भी उनकी मदद के लिए नहीं पहुँचा।

उन लोगों ने पूछा, ''आप अछूत का काम खुद क्यों कर रहे हैं?''

गांधीजी ने उत्तर दिया, ''क्योंकि जाति भाइयों ने इस जगह को ही अछूत बना दिया है।''

कलकत्ता से गांधीजी ने रेल द्वारा सारे भारत की यात्रा शुरू की। जैसे-जैसे वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर गए, उन्हें सामान्य जनता के जीवन को देखकर खासा धक्का पहुँचा। जनता भूखी थी, अज्ञानी थी और उस पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा था। उनका हृदय उदासी और क्रोध से भर गया।

गांधीजी बंबई में रहकर वकालत करने लगे। वहाँ वह आशा से अधिक अच्छा काम कर पाए।

दिसंबर 1902 में दक्षिण अफ्रीका से उन्हें एक तार मिला, जिसमें निवेदन किया गया था कि वायदे के मुताबिक वह यहाँ लौट आएँ। उपनिवेश मंत्री जोसेफ चैंबरलेन लंदन से नेटाल एवं ट्रांसपाल की यात्रा पर आ रहे थे और नेटाल की भारतीय कांग्रेस चाहती थी कि उनके सामने सारा मामला रखा जाए।

गांधीजी ने वचन का पालन किया। वह भारतीय शिष्टमंडल का नेतृत्व करने के लिए समय से नेटाल पहुँच गए; लेकिन उपनिवेश मंत्री ने उनका ठंडा स्वागत किया। भारतीय निराश हो गए। नेटाल से चैंबरलेन ट्रांसपाल गए। भारतीय लोगों ने वहाँ भी चाहा कि गांधीजी उनकी शिकायतें उनके सामने रख सकें।

बोअर युद्ध से पहले भारतीय लोगों को ट्रांसपाल में प्रवेश करने की हर समय स्वतंत्रता थी। लेकिन उस समय नए बने एशियाटिक विभाग से प्रवेश के लिए अनुमति-पत्र लेना पड़ता था। यह नया कानून भारतीयों को अंग्रेजों से अलग करने के लिए बनाया गया था। अनुमति-पत्र पाना भी कोई आसान काम तो था नहीं।

एशियाटिक विभाग के कार्यालय ने पूरी कोशिश की कि गांधीजी किसी भी तरह ट्रांसवाल न जा पाएँ, लेकिन अंत में उन्हें अनुमति देनी ही पड़ी। उन्हें अनुमति-पत्र मिल गया और वे प्रिटोरिया गए। लेकिन उन्हें शिष्टमंडल का प्रतिनिधित्व करने और अपने तैयार किए स्मरण-पत्र को पेश करने की अनुमति नहीं दी गई।

गांधीजी ने अब यह तय कर लिया कि ट्रांसपाल में ही रहा जाए और रंगभेद की उस नीति से लड़ा जाए, जो यहाँ दिनोदिन बद से बदतर होती जा रही है। उन्होंने यह महसूस किया कि अब वे यह देश नहीं छोड़ पाएँगे, जैसा कि वे चाहते थे। वे वहाँ रहने लगे और अपने देशवासियों के लिए जो भी कर सकते थे, उसकी तैयारी करने लगे।

जोहांसबर्ग के उच्च न्यायालय में उनका नाम दर्ज हो गया। एक मकान उन्होंने किराए पर ले लिया और दफ्तर खोल लिया। वकालत से उन्हें अच्छी कमाई होने लगी; परंतु वह हृदय से तो जनसेवा में लगे थे।

इसके अलावा वह शाकाहारी भोजन का प्रयोग भी करते जाते थे। उन्होंने सारी सुख-सुविधाओं का त्याग कर दिया। वह अपने भौतिक शरीर को अपने आध्यात्मिक व्यक्तित्व के अनुरूप ढालना चाहते थे।

उसी समय उनके एक मित्र मदनजीत उनसे मिले और यह प्रस्ताव उनके सामने रखा कि 'इंडियन ओपिनियन' नाम का एक समाचार-पत्र निकाला जाए। गांधीजी को यह विचार अच्छा लगा। सन् 1904 में समाचार-पत्र शुरू कर दिया गया। मनसुखलाल सजग संपादक थे। गांधीजी ने बहुत उदारतापूर्वक अखबार के लिए अपनी कमाई में से भी रुपए देकर सहायता की। उन्होंने उसका काम भी सँभाला और संपादकीय स्तंभ भी लिखे।

समाचार-पत्र गुजराती और अंग्रेजी में प्रति सप्ताह प्रकाशित होता था। उसमें उनके आदर्शों की झलक दिखाई देती थी और भारतीय लोगों को राजनीतिक शिक्षा भी उससे मिलती थी। गांधीजी ने उनकी असफलताओं और पूर्वग्रहों पर बड़ी स्पष्टता से प्रहार किए। 'इंडियन ओपिनियन' के माध्यम से यूरोपीय जनता को भी दक्षिण अफ्रीकी भारतीय जो दिक्कतें उठा रहे थे, उनकी सही तसवीर देखने को मिली।

बरसात के बाद सन् 1904 में जोहांसबर्ग के निकट सोने की खदानों की एक बस्ती में सहसा प्लेग फैल गया। वह शीघ्र ही भारतीय घरों में भी फैलने लगा। गांधीजी तत्काल वहाँ जा पहुँचे और रोकथाम के उपाय करने लगे। मित्रों की सहायता से उन्होंने कामचलाऊ अस्पताल बना लिये और बीमारों की देखभाल करने लगे।

उसी वर्ष एक और घटना हुई। गांधीजी 'द ब्रिटिश' के उप-संपादक एच.एस.एल. पोलॉक से मिले। दोनों शीघ्र ही मित्र बन गए, क्योंकि जीवन के बारे में दोनों के विचार मिलते-जुलते थे।

पोलॉक ने गांधीजी को जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन टू द लॉस्ट' भेंट की। अर्थशास्त्र पर लिखी उस पुस्तक में बहुत सारे नए विचार थे और गांधीजी को उसने बहुत कुछ प्रभावित किया भी। फिर वह एक फर्म स्थापित करने के विचार में डूब गए, जहाँ एक ऐसे संप्रदाय की स्थापना की जा सके, जो भाईचारे की भावना में विश्वास करता हो। उनके मित्रों ने इस योजना का उत्साहपूर्वक समर्थन किया।

डरबन के पास फिनिक्स में लगभग 1,000 एकड़ जमीन लेकर फार्म खोला गया। प्रारंभ में छह परिवार वहाँ जाकर बसे। 'इंडियन ओपिनियन' का प्रेस कार्यालय भी फिनिक्स भेज दिया गया। किसी भी जाति के लोग वहाँ जाकर स्वतंत्रतापूर्वक रह सकते थे। वे या तो खेती कर सकते थे या प्रेस में काम कर सकते थे।

लेकिन स्वयं गांधीजी फिनिक्स में बहुत कम समय रह पाए। जोहांसबर्ग में उनका मुख्य कार्यालय था, जहाँ वह वकालत करते थे। उन्हें ऐसा लगा कि अब निकट भविष्य में भारत लौटना मुश्किल है। उन्होंने यह सोचकर

कस्तूरबाई और अपने बच्चों को बुला भेजा। वे लोग शीघ्र ही उनके पास आ भी गए।

जब भी उन्हें समय मिलता, वे अपने तीनों लड़कों को पढ़ाया करते। साथ ही अपनी खुराक के साथ भी प्रयोग करते रहे।

वे कहते, ''मैं तो अपने शरीर का शासक होकर रहना चाहता हूँ। भौतिक आवश्यकताओं से मुक्त होने के बाद ही मुझ पर आत्मा का शासन हो सकता है।''

कॉफी और चाय भी छोड़ दी गई। उसके बाद दूध भी। कभी-कभी उपवास भी रखते और केवल पानी पर निर्भर रहते। कस्तूरबाई वह सब शांतिपूर्वक देखती रहतीं। वह जानती थीं कि ऐसे मामलों में पति से तर्क करना फिजूल है।

सन् 1906 में नेटाल में जुलू विद्रोह शुरू हो गया। वह आंदोलन टैक्स लगाए जाने के खिलाफ था। जुलू लोग अपने अधिकारों के लिए ही लड़ रहे थे, परंतु गोरे चिढ़ गए और उन लोगों के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया।

गांधीजी की सहानुभूति जुलू लोगों के साथ थी; लेकिन वे लोग ब्रिटिश शासन के खिलाफ लड़ रहे थे और गांधीजी का विश्वास था कि ब्रिटिश साम्राज्य विश्व-कल्याण के लिए है। अत: उन्होंने अंग्रेजों की सहायता करना अपना कर्तव्य समझा और एक भारतीय सेवा दल की स्थापना करनी चाही। उन्हें इसकी स्वीकृति मिल गई।

भारतीय सेवा दल की स्थापना कर दी गई। उस दल में 24 लोग थे और वे छह सप्ताह तक जुलू घायलों की देखभाल तथा मरहम-पट्टी करते रहे।

गांधीजी ने महसूस किया कि गोरे जुलू लोगों पर टैक्स लगाने के लिए उतारू हैं और वे टैक्स देना नहीं चाहते। गोरे हर विरोध को कुचल देना चाहते हैं और अपनी जमीन पर काले लोगों को कोई भी अधिकार देने को तैयार नहीं हैं।

आखिरकार जुलू लोगों का विद्रोह समाप्त हुआ और गांधीजी जोहांसबर्ग लौट आए। जोहांसबर्ग में भारतीय लोगों के हितों की देखभाल करने के लिए उनकी बड़ी जरूरत थी। वहाँ के गोरे निवासी भारतीय लोगों को हर तरह से दबा रहे थे।

अगस्त 1906 में ट्रांसवाल सरकार के द्वारा एक अध्यादेश जारी किया गया कि सारे भारतीय पुरुष, स्त्री और बच्चे अपने नामों की रजिस्ट्री करवाएँ। हर व्यक्ति प्रमाण-पत्र प्राप्त करे, जिसमें उसका नाम लिखा हो और उसके अँगूठे का निशान लगा हो। यह कार्ड हर व्यक्ति को हमेशा अपने पास रखना होगा और पूछे जाने पर दिखाना होगा। जिसके पास प्रमाण-पत्र नहीं होगा उस पर जुर्माना किया जा सकेगा, उसे सजा दी जा सकेगी और देश से निकाला भी जा सकेगा। पुलिस को तो यह आदेश भी था कि वह लोगों के घरों में घुसकर भी प्रमाण-पत्र की जाँच करे।

गांधीजी ने अपने साथियों से कहा, ''यह तो बड़ी ज्यादती है। यदि हमने कायरों की तरह हथियार डाल दिए तो दक्षिण अफ्रीका में हमारा सर्वनाश हो जाएगा। यदि हमें यहाँ रहना है तो तत्काल काररवाई करनी चाहिए।''

भारतीय लोगों ने तय किया कि वे इस अपमानजनक कानून के सामने नहीं झुकेंगे। वे अवश्य लड़ेंगे, लेकिन लड़ें कैसे?

गांधीजी ने तब सत्याग्रह की आवश्यकता महसूस की। उन्होंने लोगों को बताया कि सत्याग्रह से उनका क्या आशय है। उन्होंने कहा कि सबसे पहले अहिंसा के लिए पूरी तरह तैयार होना पड़ेगा। अधिकारी लोग आंदोलन को दबा देने की भरसक कोशिश करेंगे। वे लोग हिंसा का सहारा भी ले सकते हैं। वे हमें गिरफ्तार कर सकते हैं, जेल भेज सकते हैं; परंतु हमें इस सबको बगैर विरोध के सहना होगा।

गांधीजी ने कहा, ''सरकार के कानूनों का केवल उल्लंघन करने से कुछ नहीं होगा। तुम्हारे दिल में नफरत नहीं होनी चाहिए। तुम्हें हर तरह के भय से भी मुक्त होना चाहिए।''

सरकार ने इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया कि भारतीय लोग अध्यादेश का विरोध कर रहे हैं। उसने उस कानून पर अमल करना शुरू कर दिया। भारतीय लोगों ने उस 'काले कानून' का उल्लंघन करने का फैसला कर लिया। सैकड़ों भारतीय गिरफ्तार हुए, उन पर मुकदमा चलाया गया और वे जेल भेज दिए गए। सबने जुर्म स्वीकार कर लिया और बचने की कोशिश किए बिना जेल चले गए।

फिर गांधीजी को भी बंद कर दिया गया। बाद में एक दिन उन्हें जेल से बाहर लाया गया और जनरल स्मट्स से मिलने के लिए प्रिटोरिया भेज दिया गया।

स्मट्स ने कहा, ''यह आंदोलन तुमने शुरू किया है। यह एकदम बंद हो जाना चाहिए। मैं भारत के लोगों को नापसंद नहीं करता, लेकिन उन्हें कानून का पालन तो करना ही पड़ेगा।''

गांधीजी ने उत्तर दिया, ''इस कानून के सामने झुकने की बजाय मैं मर जाना पसंद करूँगा। यह भारतीय लोगों को नीचा दिखाने के लिए है। यह उनका अपमान है।''

आखिरकार वाद-विवाद के बाद वे एक समझौते पर पहुँचे। गांधीजी ने वचन दिया कि अगर 'काला कानून' वापस ले लिया जाए और कैदियों को रिहा कर दिया जाए तो वे सत्याग्रह वापस ले लेंगे। स्मट्स इसके लिए सहमत हो गए। शर्त यह थी कि भारतीय लोग अपनी इच्छा से अपने-अपने नाम दर्ज करवा लें। इस समझौते के साथ ही वे विदा हुए।

जोहांसबर्ग लौटकर गांधीजी ने भारतीय लोगों की एक सभा बुलाई। उन्होंने कहा, ''हमें अब अपनी इच्छा से अपनी रजिस्ट्री करवा लेनी चाहिए। इससे यह साबित होगा कि हम गलत तरीके से एक भी भारतीय को ट्रांसवाल नहीं लाना चाहते। यह काम करके हम अपनी भलमनसाहत ही जतलाएँगे। इससे जनरल स्मट्स 'काले कानून' को वापस भी ले लेंगे।''

अधिकांश लोग सहमत हो गए। परंतु एक पठान पीर आलम चिल्ला उठा, ''आपने तो हमसे यह कहा था कि अँगुलियों के निशान केवल उन लोगों के ही लिये जाते हैं, जो अपराधी होते हैं! आपने ही कहा था न कि इस 'काले कानून' का उल्लंघन करना चाहिए। वे ही सब बातें आज आपकी नजर में ठीक कैसे लगने लगीं?''

दूसरे दिन सवेरे गांधीजी अपने सत्याग्रही साथियों को साथ लेकर नामांकन कार्यालय की तरफ बढ़े। लेकिन रास्ते में ही पीर आलम ने भारी लाठी से उन पर प्रहार कर दिया। गांधीजी बेहोश होकर गिर पड़े। पीर आलम और उसके साथी उन्हें तब तक पीटते रहे, जब तक कि दूसरे मित्र उनकी सहायता के लिए आ नहीं गए। जब गांधीजी को होश आया तो उन्होंने अपने आपको एक अंग्रेज आदमी के घर कोच पर लेटा हुआ पाया, जिसे वे मुश्किल से जानते थे।

बैठने की कोशिश करते हुए गांधीजी ने कमजोर आवाज में कहा, ''पीर आलम को दोष मत दो, क्योंकि वह सब बातें नहीं समझता है।''

फिर उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि नामांकन कार्यालय से कोई आए और उनके अँगूठे का निशान ले जाए और प्रमाण-पत्र बना दे। इस तरह गांधीजी ने वहाँ अपने नाम की रजिस्ट्री करवाई। कई भारतीय लोगों ने गांधीजी का अनुकरण किया और अपना नाम दर्ज करवा लिया।

लेकिन जनरल स्मट्स ने 'काला कानून' वापस नहीं लिया।

सरकार के इस रवैए से निराश होकर भारतीय लोगों से गांधीजी ने उन नामांकन पत्रों को वापस कर देने के लिए कहा, जिन्हें उन्होंने अपनी इच्छा से भरा था।

लेकिन ट्रांसवाल सरकार टस से मस नहीं हुई।

गांधीजी तब तक स्वस्थ हो गए थे। उन्होंने चुनौती दी, ''अगर किसी निश्चित तारीख तक यह 'काला कानून' वापस नहीं किया गया तो हम लोगों ने जो प्रमाण-पत्र लिये हैं, उनकी होली जला दी जाएगी।''

जब उन्हें लगा कि शासन ने उनकी धमकी को भी अनसुना कर दिया है तो गांधीजी ने दूसरा सत्याग्रह शुरू किया। होली जलाई गई और उसमें लगभग 2,000 प्रमाण-पत्र भस्म कर दिए गए। कई भारतीयों ने खुल्लमखुल्ला ट्रांसवाल की सीमा पार की, जहाँ जाना कानूनन मना था। गांधीजी और उनके साथी सत्याग्रह के समय कई बार जेल गए। तीसरी बार जब गांधीजी जेल से बाहर आए तो भारतीय लोगों ने सभा की और तय किया कि एक शिष्टमंडल इंग्लैंड भेजा जाए, जो ब्रिटिश शासन को दक्षिण अफ्रीका की सही स्थिति की जानकारी दे। गांधीजी और हाजी हबीब से कहा गया कि वे दोनों लंदन जाएँ और वहाँ भारतीय लोगों की शिकायत प्रस्तुत करें। योजना के अनुसार वे गए भी, लेकिन सफल नहीं हुए। फिर वे इस दृढ़ निश्चय के साथ लौटे कि अंत तक संघर्ष करेंगे, चाहे वह अंत कितना ही बुरा क्यों न हो। गांधीजी ने अब वकील के रूप में काम करना छोड़ दिया। उन्हें लगा कि वे उस कानून से कैसे जीविका कमाते रह सकते हैं, जिसका वह विरोध करते हैं।

एक अंग्रेज किसान हरमैन कैलनबैल फिनिक्स की शांत जीवन-पद्धति से बहुत प्रभावित हुआ। उसने जोहांसबर्ग के निकट अपना विस्तृत फार्म एक नई कॉलोनी बनाने के लिए गांधीजी को दे देने का प्रस्ताव रखा। उसने सुझाव दिया कि जो लोग सत्याग्रह में भाग लेने के कारण अपना धंधा और घर खो बैठे हैं, उन्हें यहाँ बसाया जाए।

सन् 1910 में नई कॉलोनी बन गई। महान् रूसी लेखक के नाम पर उसका नाम 'टॉल्सटॉय फार्म' रखा गया। गांधीजी टॉल्सटॉय के बड़े प्रशंसक थे। उस कॉलोनी में राष्ट्रीयता, धर्म और रंग की दृष्टि से भिन्न-भिन्न तरह के लोग एक ही परिवार के रूप में रहने लगे। वे लोग कठिन परिश्रम करते और श्रम का फल मिल-बाँटकर खाते।

गांधीजी अपना अधिकांश समय टॉल्सटॉय फार्म पर ही बिताते थे। वह बच्चों को पढ़ाते थे। दूसरे रचनात्मक काम भी उन्होंने अपने ऊपर ले रखे थे।

सरकार का रवैया बदलने के लिए जनरल स्मट्स को राजी करने का गांधीजी का प्रयत्न असफल हो चुका था। लेकिन 'काले कानून' और 'व्यक्ति कर' के खिलाफ संघर्ष चलता रहा। कस्तूरबाई तथा कई भारतीय महिलाएँ भी इस आंदोलन में भाग लेने लगीं।

उसी समय दक्षिण अफ्रीका के एक न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि भारतीय विवाह कानून की दृष्टि से मान्य नहीं है। पारिवारिक संबंधों पर किया गया यह प्रहार महिलाओं को सहन नहीं हुआ। उन्होंने खुलेआम कानून की अवहेलना की। उन्हें बड़ी संख्या में जेल भेज दिया गया। नेटाल में न्यू कैसल के पास कोयले की खदानों में भारतीय मजदूरों ने इस दमन के खिलाफ हड़ताल कर दी।

गिरफ्तारियों, सत्याग्रहियों के देशनिकाले और भारतीय परिवारों की अनकही तकलीफों ने भारत में लोगों को क्रोधित कर दिया। पीड़ितों की सहायतार्थ बहुत सी धनराशि एकत्र की गई।

कई सत्याग्रहियों को पीटा गया, उन पर डंडे चलाए गए। उनमें से कुछ मर भी गए। जनता के साथ अपमान का गांधीजी के मन पर गहरा असर हुआ। उन्होंने आत्म-पीड़ा के लिए तीन प्रतिज्ञाएँ कीं। जब तक व्यक्ति-कर उठा नहीं लिया जाएगा और अन्याय समाप्त नहीं होगा, वह नंगे पैर चलेंगे, गरीब मजदूरों की तरह कपड़े पहनेंगे और एक ही बार भोजन करेंगे।

गांधीजी ने देखा कि सरकार निष्ठुर है और कोई समाधान दिखाई नहीं दे रहा है। उन्हें अगला कदम उठाने के बारे में सोचना पड़ा।

अक्तूबर 1913 में गांधीजी ने नेटाल खदान क्षेत्र के 6,000 मजदूरों द्वारा ट्रांसवाल में मार्च करने का कार्यक्रम बनाया। कानून यह था कि भारतीय लोग बगैर अनुमति-पत्र के ट्रांसवाल में घुस नहीं सकते।

गांधीजी ने कहा, ''हम लोग सीमा पार करके ट्रांसवाल में शांतिपूर्वक प्रयाण करने के लिए बढ़ रहे हैं। सरकार हमें गिरफ्तार करेगी और जेल में बंद कर देगी। लेकिन हमें शील बने रहना है। इस अहिंसक तरीके से हम व्यक्ति-कर के, हमारे विवाहों को मान्यता नहीं देने के निर्णय के और हमारे विरुद्ध लगाए गए सभी कानूनों के खिलाफ अपना विरोध प्रकट कर रहे हैं। हम नेक काम के लिए लड़ रहे हैं। हम किसी को नुकसान नहीं पहुँचाएँगे।''

उन्होंने फिर लोगों से ऊँची आवाज में पूछा, ''क्या आप लोग गिरफ्तार होने और कठोर व्यवहार को सहने के लिए तथा हमेशा अहिंसक बने रहने के लिए तैयार हैं?''

समर्थन का शोर उभरा कि सभी सहमत हैं। वे लोग हर जगह गांधीजी का अनुगमन करने के लिए तैयार थे। इस तरह ट्रांसवाल प्रवेश की शुरुआत हुई।

फिर साँझ ढले बहुत सारे वरदीधारी लोग आए और गांधीजी को नींद से जगा दिया।

गांधीजी बोले, ''मुझे मालूम है, आप लोग मुझे गिरफ्तार करने आए हैं। मैं तैयार हूँ।''

गांधीजी और कई भारतीय गिरफ्तार कर लिये गए। सत्याग्रहियों को पीटा गया, उन पर लाठी चलाई गई और उन्हें काम पर जाने के लिए दबाव डाला गया; लेकिन सफलता नहीं मिली। अधिकारीगण उन्हें काम पर भेजने में सफल नहीं हो सके। गांधीजी ने उनमें शांतिपूर्वक समर्थ ढंग से विरोध करने की भावना भर दी थी।

उसके शीघ्र बाद ही सारे नेटाल और ट्रांसवाल में सत्याग्रह आंदोलन फैल गया। सरकार यह नहीं समझ पा रही थी कि उसे अब क्या करना चाहिए, क्योंकि उसके निष्ठुर दमन के सामने कोई भी झुका नहीं। सारे जेलखाने भर गए। आखिरकार जनरल स्मट्स को कुछ करना ही पड़ा। उसने सारी स्थिति के अध्ययन के लिए एक आयोग बिठा दिया।

दिसंबर 1913 में गांधीजी को रिहा कर दिया गया। लेकिन वह संघर्ष समाप्त कर देनेवाले नहीं थे।

गांधीजी ने स्मट्स को चेतावनी दी कि यदि उनकी माँगें पूरी नहीं की गईं तो वह दूसरा मार्च शुरू कर देंगे। लेकिन दूसरी बार वैसा करने की जरूरत नहीं पड़ी। रेलवे के यूरोप निवासी केंद्रीय कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी और सरकार की हालत बहुत खराब हो गई। गांधीजी ने उस गंभीर हालत में मार्च आयोजित करने का विचार छोड़ दिया, क्योंकि वह शासन को किसी भी तरह के संकट में नहीं डालना चाहते थे।

गांधीजी ने सभी मजदूरों को आज्ञा दी कि कम-से-कम उस समय के लिए वे लोग काम पर चले जाएँ। उनके इस निर्णय का शासन पर अच्छा प्रभाव पड़ा और जनरल स्मट्स ने भी इस शालीनता को माना।

भारतीय नेताओं द्वारा जितने भी आवश्यक सुधारों की माँग की गई थी, उनके पक्ष में जाँच आयोग ने अपना विवरण दिया। आखिरकार 'भारतीय राहत विधेयक' पास कर दिया गया और गवर्नर ने उस पर हस्ताक्षर भी कर दिए। इसके द्वारा अनुबंध से आए मजदूरों पर लगा व्यक्ति-कर समाप्त कर दिया गया। सारे भारतीय विवाहों को कानूनी मान्यता प्राप्त हो गई और एक राज्य से दूसरे राज्य में आने-जाने पर किया जानेवाला जुर्माना भी उठा लिया गया।

गांधीजी जीत गए और यह थी सत्याग्रह आंदोलन की विजय।

गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में 21 वर्ष कार्य करते रहे। उन्होंने वहाँ की भारतीय जनता के लिए बहुत कुछ किया।

गांधीजी को ऐसा लगने लगा कि दक्षिण अफ्रीका में उनका काम समाप्त हो गया है। वह चाहने लगे कि अब भारत लौट जाएँ। उस समय गोखले इंग्लैंड में थे। वह चाहते थे कि गांधीजी भारत लौटने से पहले उनसे लंदन में मिल लें। गांधीजी भी यही चाहते थे। उन्होंने अपना निर्णय कस्तूरबाई को बताया।

वह बोले, ''तुम मेरे साथ लंदन चल रही हो। वहाँ से फिर हम लोग भारत चलेंगे।''

18 जुलाई, 1914 को गांधीजी कस्तूरबाई और कैलनबैक के साथ इंग्लैंड के लिए जहाज पर चढ़े। उनके लंदन पहुँचने के दो दिन पहले 4 अगस्त को पहला विश्व युद्ध घोषित हो चुका था।

लंदन पहुँचने पर गांधीजी को मालूम हुआ कि गोखले अपने स्वास्थ्य सुधार के लिए पेरिस गए हुए हैं। युद्ध के कारण लंदन और पेरिस के बीच डाक-तार व्यवस्था भंग हो गई थी। गांधीजी निराश हुए। वह गोखले से मिले बिना भारत नहीं लौटना चाहते थे। वह लंदन में रुके रहे।

युद्ध जारी था। वैसे गांधीजी इंग्लैंड में क्या कर सकते थे? कुछ भारतीय मित्रों के सुझाव पर इंग्लैंड निवासी भारतीयों की सभा बुलाई गई, जिसमें गांधीजी ने विचार प्रकट किए कि इंग्लैंड में रहनेवाले भारतीय लोगों को भी युद्ध के समय कुछ करना चाहिए। अंग्रेज छात्र अपनी इच्छा से सेना में भरती होने के लिए तैयार थे। वैसी स्थिति में भारतीय लोगों को भी उनसे कुछ कम नहीं करना चाहिए था।

उनके विचारों पर लोगों में मतभेद था। बहुत से भारतीय यह सोचते थे कि युद्ध के कारण एक अवसर प्राप्त हुआ है कि भारत को आजादी मिल सके। भारतीय लोगों को अपनी बात पर जोर देकर अपने अधिकारों के लिए दावा करना चाहिए।

लेकिन गांधीजी यह सोचते थे कि इंग्लैंड अगर मुसीबत में है तो हमें अवसर का गलत लाभ नहीं उठाना चाहिए। उन्होंने जोर दिया कि हम इंग्लैंड को हर संभव सहायता दें। उन्होंने घायलों के लिए सेवा दल की स्थापना की, जिससे अनेक दिक्कतों के बावजूद ब्रिटिश लोगों को आवश्यकता के समय सहायता पहुँचाई।

कुछ समय बाद गोखले इंग्लैंड लौट आए। गांधीजी और कैलनबैक उनसे कई बार मिलने गए और युद्ध तथा दूसरे मामलों के बारे में चर्चाएँ कीं।

उसके बाद गांधीजी को प्लूरिसी हो गई। गोखले और उनके मित्र चिंतित हो उठे। डॉक्टर जीवराज मेहता ने उनका इलाज किया, लेकिन कुछ लाभ नहीं हुआ। गोखले जब भारत लौटे, तब भी गांधीजी बीमार ही थे।

बीमारी बढ़ती ही गई। गांधीजी को सलाह दी गई कि जल्दी-से-जल्दी वह भारत लौट जाएँ। उन्होंने सुझाव मान लिया और भारत लौट आए।

बारह वर्षों के बाद गांधीजी भारत लौटे थे।

बंबई में उनका भव्य स्वागत किया गया। जनता का ऐसा अगाध प्रेम देखकर गांधीजी विभोर हो गए। गोखले पूना में थे और उनकी हालत खराब थी, इसलिए गांधीजी उन्हें देखने के लिए पूना गए। वह उनसे बहुत स्नेह से मिले। गांधीजी ने गोखले से कहा कि वह एक आश्रम खोलना चाहते हैं, जिसमें फिनिक्स परिवार के लोगों सहित वह रह सकें। वे लोग भारत आ गए थे और शांति निकेतन में ठहरे थे। गोखले ने उनकी योजना का समर्थन किया और कहा कि जो भी सहायता वह कर सकेंगे, अवश्य करेंगे।

गांधीजी अपने परिवार के लोगों से मिलने राजकोट और पोरबंदर गए। उसके बाद शांति निकेतन चले गए। अध्यापकों और छात्रों ने उनका भावभीना स्वागत किया। वहाँ गांधीजी पहली बार टैगोर से मिले। वे सी.एफ. एंड्रूज से भी मिले, जो उन दिनों वहाँ थे।

शांति निकेतन में ठहरने के कुछ दिनों बाद ही गांधीजी ने सुना कि गोखले का स्वर्गवास हो गया। वह तत्काल पूना चले गए। बर्दवान तक सी.एफ. एंड्रूज भी साथ आए थे।

एंड्रूज ने गांधीजी से पूछा, ''क्या आप सोचते हैं कि भारत में सत्याग्रह के अनुकूल अवसर आएगा? यदि हाँ, तो कब तक?''

गांधीजी ने उत्तर दिया, ''यह कहना कठिन है। मैं एक साल कुछ नहीं करूँगा। गोखले ने मुझसे वचन लिया है कि मैं साल भर तक भारत-भ्रमण करूँ और अनुभव प्राप्त करूँ। तब तक मैं विचार भी प्रकट नहीं करूँगा, जब तक कि एक साल का यह परीक्षा-काल समाप्त नहीं हो जाता। इसलिए मैं नहीं सोचता कि पाँच वर्ष से पहले सत्याग्रह के लिए कोई अवसर दिखाई देगा।''

गोखले के श्राद्ध समारोह के बाद गांधीजी सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी के नेताओं से मिले। गोखले के प्रति श्रद्धा के कारण इस संस्था में वह सम्मिलित हो गए होते, लेकिन उसके सदस्यों में से कुछ ने विरोध किया।

थोड़े समय के लिए गांधीजी रंगून गए और वहाँ से लौटने पर कुंभ मेले के अवसर पर वे हरिद्वार गए। लगभग 17 लाख लोग मेले में आए थे। विभिन्न संगठनों के सेवा दल वहाँ आए लोगों की सहायता के लिए आमंत्रित थे। गांधीजी को सेवा दल के लोगों की सहायतार्थ उनके फिनिक्स परिवार के साथ निमंत्रण दिया गया। फिनिक्स परिवार वहाँ पहुँचा और वह उसमें सम्मिलित हो गए।

गांधीजी को ऐसे धार्मिक मेले की अनेक घटनाओं और कमियों के कारण दु:ख हुआ। वहाँ भ्रष्टाचार था, धोखाधड़ी थी और कई असामाजिक बुराइयाँ भी थीं। सफाई की ओर नाम मात्र का ध्यान दिया जाता था। गांधीजी उदास हो गए। वह इस समस्या के बारे में बहुत कुछ सोचते रहे कि भारतीय चरित्र को कैसे सुधारा जाए।

मई 1915 में अहमदाबाद के पास एक गाँव में एक आश्रम की स्थापना की गई। अहमदाबाद हस्तकरघा उद्योग के लिए प्रसिद्ध प्राचीन शहर है। गांधीजी ने उस जगह को इसलिए ठीक समझा कि चरखे के घरेलू उपयोग का वहाँ फिर से विकास किया जा सकेगा। गांधीजी ने उस जगह को नाम दिया 'सत्याग्रह आश्रम'।

उनका कहना था, ''सत्य के प्रति हमारा सिद्धांत है। और हमारा कर्म है सत्य की खोज और उसकी प्रस्थापना।''

जो लोग वहाँ रहते थे, वे सादे और एक जैसे कपड़े पहनते थे। वे एक ही रसोईघर में खाना खाते और संयुक्त परिवार की तरह जीवन बिताते थे।

गांधीजी ने आश्रमवासियों से कहा, ''यदि आप जनता की सेवा करना चाहते हैं तो आपको सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय (चोरी नहीं करना), अपरिग्रह और अस्वाद का संकल्प करना होगा।''

एक दिन और उन्होंने कहा, ''मुझे एक अछूत परिवार का पत्र मिला है, जो हमारे साथ रहना चाहता है। मैं उत्तर दे रहा हूँ कि यहाँ उसका स्वागत है।''

इसके कारण खासा हंगामा मच गया। एक अछूत के साथ रहना! कस्तूरबाई तक सहमत नहीं हुईं। गांधीजी मन में तय कर चुके थे और इस बात का कोई आश्रमवासी विरोध नहीं कर सकता था। लेकिन आश्रम के संरक्षकों को यह बात पसंद नहीं आई और उन्होंने आर्थिक सहायता देना बंद कर दिया।

आश्रम के सामने आर्थिक संकट आ गया, लेकिन अनायास ऐसी सहायता मिल गई, जिसकी कोई आशा नहीं थी। एक धनी आदमी आश्रम में आया और गांधी को 13 हजार रुपए दे गया। वह उस व्यक्ति के इस दान से आश्चर्यचकित रह गए।

फरवरी 1916 में गांधीजी को बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के शिलान्यास के अवसर पर भाषण देने के लिए बुलाया गया। वायसराय तथा अन्य कई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे।

लंबा काठियावाड़ी कोट तथा पगड़ी पहने गांधीजी भाषण देने के लिए खड़े हुए। पुलिस का इंतजाम और आसपास की शान-शौकत देखकर गांधीजी को सदमा पहुँचा। श्रोताओं की तरफ देखकर वे बोले, ''मैं खुलेआम

अपने विचार बिना किसी संकोच के आपके सामने रखना चाहता हूँ।''

उनके प्रारंभिक शब्द सुनकर ही श्रोता स्तब्ध रह गए।

उन्होंने कहा, ''यह हमारे लिए गहरे अपमान और लज्जा की बात है कि मैं इस महान् विश्वविद्यालय और पवित्र नगर के बीच अपने देशवासियों से एक ऐसी भाषा में बोलने के लिए विवश हूँ, जो कि मेरे लिए विदेशी है।''

यह एक तरह का विस्फोट था। कभी कोई अंग्रेजी भाषा के खिलाफ बोलने का साहस नहीं कर पाया था। ब्रिटिश अधिकारी, उनके मित्र और अन्य प्रतिष्ठित भारतीय लोग, जो वहाँ उपस्थित थे, गुस्से में भारी साँसें छोड़ने लगे।

लेकिन गांधीजी बोलते चले गए, ''महामहिम सम्राट् ने कल हमारे समारोह की अध्यक्षता करते समय देश के गरीबों के बारे में कुछ कहा था, लेकिन हम यह क्या देख रहे हैं? तड़क-भड़कवाला माहौल, हीरे-जवाहरातों का प्रदर्शन। भारत के लिए तब तक मुक्ति पाना असंभव है जब तक कि आप लोग इन हीरे-जवाहरातों से मुक्ति नहीं पा लेते और केवल देशवासियों की थाली के रूप में ही इन्हें अपने पास नहीं रखते।'' गांधीजी ने अपने लंबे भाषण में कई बातों की चर्चा की। उनका भाषण तीखी और खरी आलोचना से भरा पड़ा था।

समारोह के संयोजकों में से एक थीं एनी बेसेंट। वह घबरा गईं और उन्होंने गांधीजी को बैठ जाने के लिए कहा; लेकिन वह बोलते ही चले गए। कुछ लोग क्रोध से तमतमा उठे, लेकिन दूसरे लोग बड़े चाव से गांधीजी की बात सुनते रहे।

वे लोग सोचने लगे, 'कम-से-कम एक आदमी तो ऐसा है, जो सच बोल रहा है। यह आदमी भारत को दलदल में से बाहर निकाल सकता है।'

उन लोगों ने बार-बार प्रसन्नता प्रकट करते हुए हर्ष-ध्वनि की।

गांधीजी ने उनकी तरफ देखकर कहा, ''भाषणों से हम स्वराज्य के योग्य नहीं हो सकते। हमारा चरित्र ही हमें उसके योग्य बनाएगा।''

गांधीजी ने लोगों से यह भी कहा कि वे इस योग्य बनने की कोशिश करें कि अपने शासन का काम खुद चला सकें।

अंत में गांधीजी ने, जिन्होंने युद्धकाल में अंग्रेजों की तीन-तीन बार सहायता की थी, कहा, ''यदि मुझे यह जरूरी लगता है कि भारत की मुक्ति के लिए अंग्रेज हट जाएँ या हटा दिए जाएँ तो मैं यह बात कहने में कतई संकोच नहीं करूँगा कि उन्हें एक दिन चले जाना होगा। मैं आशा करता हूँ कि अपने इन शब्दों का पालन करने के लिए मैं मरने तक को तैयार रहूँगा।''

जनता गांधीजी की इस स्पष्टवादिता से चकित रह गई। वह गांधीजी का पहला महान् राजनीतिक भाषण था।

बहुत वर्षों बाद जवाहरलाल नेहरू ने इस बात पर प्रकाश डाला कि गांधीजी के आने का लोगों के लिए क्या अर्थ था।

उन्होंने कहा था, ''हमें ऐसा लग रहा था जैसे किसी सर्वशक्तिमान दैत्य की जकड़ में फँसकर हम असहाय हो गए हैं। हमारे हाथ-पैरों को जैसे लकवा मार गया है। हमारे दिमाग जैसे संज्ञा-शून्य हो गए हैं। हम कर ही क्या सकते थे? दरिद्रता और पराजय के दलदल में भारत अंदर-ही-अंदर धँसता चला जा रहा था।

''और तब गांधीजी का आगमन हुआ। वह आए खुली हवा के झोंके की तरह, जिसने हमें बाहर खींच लिया और गहरी साँसें लेने का अवसर दिया। वह प्रकाश-पुंज की तरह आए कि जिसने आँखों पर बँधी पट्टियाँ उतार दीं। वह एक बवंडर की तरह आए कि उससे बहुत कुछ अस्त-व्यस्त हो गया और जनता के सोचने का ढंग ही बदल गया...।''

सन् 1916 के आखिरी महीनों में भारत में होम रूल के लिए कई सभाएँ हुईं। तिलक, एनी बेसेंट और जिन्ना के नेतृत्व में नई राजनीतिक लहर-सी आ गई।

उस वर्ष कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में दिसंबर महीने में हुआ। कांग्रेस विभाजित हो रही थी। कुछ गरम दल के थे, कुछ नरम दल के। लेकिन लखनऊ का कांग्रेस अधिवेशन बिना किसी तनाव के संपन्न हो गया।

अध्यक्ष अंबिकाचरण मजूमदार स्वराज के पक्ष में बोले। दूसरे नेताओं ने भी इसकी माँग की थी। एक प्रस्ताव ब्रिटिश सरकार को संबोधित करते हुए पास किया गया। उसमें अपील की गई कि भारत को स्वराज्य देने के लिए निश्चित कदम उठाए जाएँ। इसके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने जो योजना तैयार की है और उसमें जो सुधार सुझाए हैं, उन्हें स्वीकार किया जाए। उस योजना को अखिल भारतीय मुसलिम लीग ने भी स्वीकार कर लिया था।

लखनऊ में कांग्रेस और मुसलिम लीग में एक समझौता हुआ, जो बाद में 'लखनऊ पैक्ट' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भारत की एकता के लिए मुसलमानों की बहुत सी माँगों को कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया।

दो साल तक गांधीजी ने खूब यात्रा की और विभिन्न जगहों पर लोगों से चर्चाएँ कीं। अब वह मजदूरों से संबंधित कोई काम करना चाहते थे। पहले उनका ध्यान गिरमिट प्रथा की समस्या की ओर गया। उसके अनुसार, गरीब और अपढ़ मजदूरों को फुसलाकर ब्रिटिश राज के दूसरे उपनिवेशों में भेज दिया जाता था। वह इसके खिलाफ अफ्रीका में लड़ चुके थे और अब चाहते थे कि यह प्रथा समाप्त ही कर दी जाए।

वायसराय लॉर्ड हार्डिंग ने यह घोषणा की कि वक्त आने पर ब्रिटिश सरकार इस प्रथा को समाप्त कर देने के लिए सहमत हो गई है।

लेकिन गांधीजी निश्चित तारीख चाहते थे।

इस बात को लेकर गांधीजी ने एक बड़ा आंदोलन शुरू कर दिया।

वह बंबई गए और सभी भारतीय नेताओं से मिलकर सलाह-मशविरा किया। उन्होंने इस प्रथा को समाप्त कर देने की तारीख 31 मई, 1917 तय कर दी।

फिर वह अपने इन विचारों के पक्ष में समर्थन प्राप्त करने के लिए भ्रमण करने लगे। सभी महत्त्वपूर्ण स्थानों पर सभाएँ की गईं। हर जगह उन्हें अच्छा समर्थन मिला।

स्वयं गांधीजी ने कहा कि उन्हें इतना अधिक समर्थन पाने की आशा नहींथी।

इस आंदोलन के फलस्वरूप शासन ने यह घोषणा कर दी कि यह प्रथा 31 जुलाई, 1917 तक समाप्त कर दी जाएगी।

फिर गांधीजी ने बिहार के खेतिहर मजदूरों पर थोपी गई एक घृणित प्रणाली के बारे में सुना। बिहार के चंपारण जिले में किसानों को गोरे जबरदस्ती नील की खेती करने को मजबूर करते थे। इससे उन्हें बहुत तकलीफ उठानी पड़ती थी। न वे अपनी जरूरत का अनाज पैदा कर पाते थे और न ही नील की खेती करने के बदले उन्हें पर्याप्त धन ही मिल पाता था।

गांधीजी को इसके बारे में कोई जानकारी नहीं थी। बिहार के एक किसान राजकुमार शुक्ल उनसे मिले और चंपारण के लोगों की तकलीफों के बारे में बताया। शुक्ल ने गांधीजी से निवेदन किया कि वह खुद वहाँ जाकर

स्थिति को देखें। गांधीजी उस समय लखनऊ में कांग्रेस की बैठक में भाग ले रहे थे और उनके पास इतना समय नहीं था कि वहाँ जा सकते। लेकिन राजकुमार शुक्ल उनके पीछे पड़े रहे कि वह उनके साथ जाकर चंपारण के लोगों के कष्ट दूर करने में मदद करें। आखिरकार गांधीजी ने कलकत्ता से लौटने के बाद वहाँ जाने का वादा किया।

सन् 1917 के प्रारंभ में गांधीजी राजकुमार शुक्ल के साथ चंपारण गए। उनके वहाँ पहुँचने पर जिलाधीश ने उन्हें एक नोटिस भेजा कि वह चंपारण में नहीं ठहर सकते और जो भी पहली ट्रेन मिल रही हो, उससे वह वापस लौट जाएँ।

गांधीजी ने उस आज्ञा को नहीं माना। तब उन्हें अदालत में उपस्थित होने का आदेश दिया गया।

न्यायाधीश ने कहा, ''यदि आप इस जिले से चले जाएँ और यहाँ कभी न आने का वचन दें तो आप पर से मुकदमा उठा लिया जाएगा।''

गांधीजी ने उत्तर दिया, ''यह नहीं हो सकता। मैं यहाँ जनता और राष्ट्र की सेवा के लिए आया हूँ। मैं चंपारण को अपना घर समझूँगा और यहाँ के दलित किसानों के लिए काम करूँगा।''

न्यायालय के बाहर किसानों की एक बड़ी भीड़ नारे लगा रही थी। न्यायाधीश और पुलिस दोनों के होश गुम थे।

गांधीजी ने कहा, ''यदि आप मुझे इन लोगों से बात करने दें तो शांति स्थापित करने में उससे आपको सहायता मिलेगी।''

गांधीजी भीड़ के सामने आए और बोले, ''आप लोग शांत रहकर मुझ में और मेरे काम में निष्ठा रखिए। न्यायाधीश को मुझे गिरफ्तार करने का अधिकार है, क्योंकि मैंने उनकी आज्ञा का उल्लंघन किया है। यदि मुझे जेल भी भेज दिया जाए तो उसे भी उचित ही समझिए। हमें शांतिपूर्वक काम करना है। किसी भी हिंसक काररवाई से हमारे उद्देश्यों पर आँच आएगी।''

सारी भीड़ शांतिपूर्वक लौट गई। जैसे ही गांधीजी न्यायालय में वापस आए, पुलिस ने उनकी तरफ प्रशंसा की दृष्टि से देखा।

सरकार ने गांधीजी पर से मुकदमा उठा लिया और उन्हें जिले में रहने की अनुमति दे दी। किसानों की परेशानियाँ जानने की गरज से गांधीजी वहाँ ठहरे।

वह कई गाँवों में गए। उन्होंने लगभग 8,000 किसानों से सवाल-जवाब किए और उनकी शिकायतें दर्ज कीं। इस प्रकार वह उनकी तकलीफों और उनके कारणों को ठीक-ठीक समझ पाए।

वह इस निर्णय पर पहुँचे कि गोरे काश्तकार, जो किसानों को दबा लेते हैं, उसका एक सबसे बड़ा कारण है उनका अज्ञान। इसके लिए गांधीजी ने ऐसे ऐच्छिक संगठन बनाए, जो उनकी आर्थिक और शिक्षा संबंधी स्थिति को सुधारने में मदद कर सकें। उन संगठनों द्वारा स्कूल खोले गए और सफाई के बारे में भी लोगों को शिक्षा दी गई।

सरकार ने गांधीजी की शक्ति और अपने उद्देश्य के प्रति उनकी लगन को पहचान लिया। उसने स्वयं ही किसानों की शिकायतों को दूर करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति की। उन्होंने गांधीजी को उस आयोग में काम करने का निमंत्रण दिया और वह तैयार भी हो गए। उसके परिणामस्वरूप कुछ महीनों बाद ही 'चंपारण भूमि सुधार विधेयक' पास हो गया। इससे किसानों और जोतदारों को बहुत राहत मिली।

गांधीजी बिहार में अधिक समय तक नहीं ठहर पाए। दूसरी जगहों से बुलावा आ रहा था। अहमदाबाद में मजदूरों में अशांति फैली हुई थी और उनके झगड़ों को सुलझाने के लिए उनकी वहाँ आवश्यकता थी।

गांधीजी शीघ्र ही अहमदाबाद लौट आए।

मजदूरों के झगड़ों को हाथ में लेने से पहले गांधीजी अपने आश्रम को बदलना चाहते थे। सत्याग्रह आश्रम अहमदाबाद के पास एक गाँव में था, लेकिन उसके आसपास की जगह साफ-सुथरी नहीं थी और वहाँ प्लेग भी फैल गया था। अहमदाबाद में वह पहले से ही फैला हुआ था।

आश्रम के निकट संपर्क में रहनेवाले अहमदाबाद के एक धनी व्यक्ति ने उपयुक्त जमीन खरीदने की इच्छा दिखाई। गांधीजी स्वयं जमीन की खोज में गए और साबरमती केंद्रीय कारागार के पास साबरमती नदी के किनारे एक जगह पसंद की। वह जमीन खरीद ली गई और वहाँ हुई 'साबरमती आश्रम' की स्थापना।

अहमदाबाद में कपड़ों की कई मिलें थीं। कीमतें बढ़ गई थीं और मिल मजदूर अधिक वेतन की माँग कर रहे थे। मिल मालिक उसके लिए तैयार नहीं थे। गांधीजी ने मजदूरों के साथ सहानुभूति दिखाई और उनका मामला हाथ में ले लिया। उन्होंने संघर्ष शुरू कर दिया और शांतिपूर्वक विरोध प्रदर्शित किया। मजदूरों ने गांधीजी का अनुसरण किया और उन्हें अपना पूरा समर्थन दिया। बड़े-बड़े झंडे लेकर वे सड़कों पर परेड करते और कहते कि वे तब तक काम पर नहीं जाएँगे, जब तक कि झगड़ा सुलझ नहीं जाता।

कई दिन बीत गए। मिल मालिक जिद पर उतर आए। हड़ताली मजदूर अधीर होने लगे, क्योंकि वे भूखे रहने लगे थे। अनुशासन में ढिलाई आ गई। गांधीजी को लगा कि कहीं मजदूर अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर काम पर न चले जाएँ। वह बहुत बड़ी नैतिक हार होगी।

एक सुबह उन्होंने मजदूरों को बुलाया और कहा, ''जब तक सारे मजदूर एकजुट नहीं हो जाते और समझौता होने तक हड़ताल नहीं चलाते, तब तक मैं भोजन को छुऊँगा भी नहीं।''

मजदूर अवाक् रह गए।

''आप नहीं बल्कि हम उपवास करेंगे।'' वे बोले, ''हमारी ढिलाई के लिए क्षमा करें, अब हम अपनी प्रतिज्ञा पर कायम रहेंगे।''

गांधीजी नहीं चाहते थे कि कोई और उपवास करे। उनका उपवास मिल मालिकों के खिलाफ नहीं था, बल्कि मजदूरों के बीच एकता और सहयोग की कमी के खिलाफ था। उपवास केवल तीन दिन चला; लेकिन उससे मिल मालिक इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने मजदूरों के साथ समझौता कर लिया।

मजदूरों की हड़ताल समाप्त हुई ही थी कि गांधीजी को खेड़ा सत्याग्रह के संघर्ष में जुट जाना पड़ा।

गुजरात में खेड़ा जिला फसल खराब हो जाने के कारण अकाल के कगार पर खड़ा था। फसल इतनी कम हुई थी कि किसान और खासकर गरीब तबके के किसान लगान देने में असमर्थ थे। लेकिन शासन का कहना था कि पैदावार बहुत कम नहीं हुई है और किसानों को लगान चुकाना ही चाहिए।

गांधीजी को किसानों की बात में संगति दिखाई दी और उन्होंने लगान न चुकाकर सत्याग्रह करने की सलाह दी।

वल्लभभाई पटेल, शंकरलाल बैंकर, महादेव देसाई और दूसरे कई नेताओं ने इस संघर्ष में रचनात्मक भाग लिया। उस आंदोलन का अंत इस प्रकार हुआ कि जिसकी आशा ही नहीं थी। ऐसे संकेत दिखाई देने लगे थे कि वह बिखर जाएगा, लेकिन चार महीने के संघर्ष के बाद आखिर एक सम्मानजनक समझौता हो गया। सरकार ने कहा कि अगर संपन्न किसान कर चुका दें तो गरीब किसानों का लगान माफ कर दिया जाएगा। इस पर वे सहमत हो गए और आंदोलन समाप्त कर दिया गया।

खेड़ा सत्याग्रह गुजरात के किसानों में जागृति का प्रारंभ था। यह प्रारंभ राजनीतिक शिक्षा का भी था। साथ ही शिक्षित जन-सेवकों को यह मौका भी मिला कि वे किसानों के वास्तविक जीवन को समझ सकें।

इस समय तक युद्ध संगीन स्थिति में पहुँच चुका था। ब्रिटेन और फ्रांस कठिन स्थिति में फँस गए थे। सन् 1917 के वसंत में जर्मनी में ब्रिटिश और फ्रांसीसी सेना को बुरी तरह हरा दिया था। रूस के युद्ध संबंधी सभी प्रयत्न बेकार हो गए थे और उसके सामने क्रांति का खतरा था। अमेरिका युद्ध में शरीक तो हो गया था, लेकिन युद्धभूमि में अभी तक उसका कोई भी सैनिक नहीं पहुँचा था।

भारत के वायसराय लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने विभिन्न भारतीय नेताओं को युद्ध परिषद् में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। गांधीजी को भी बुलाया गया। उन्होंने आमंत्रण स्वीकार कर लिया और वह दिल्ली गए। गांधीजी को इस बात से दु:ख हुआ कि तिलक और अली बंधुओं को उसमें नहीं बुलाया गया था। वह जाने को तैयार भी न थे, लेकिन वायसराय से मिलने के बाद उन्होंने उस सम्मेलन में भाग लिया।

वायसराय यह चाहते थे कि गांधीजी सेना में भरती होने के प्रस्ताव का समर्थन करें।

गांधीजी ने एक वाक्य कहा, ''अपने उत्तरदायित्व को पूरी तरह समझते हुए मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।''

गांधीजी ने सरकार के इस प्रस्ताव का समर्थन किया कि लोग सेना में भरती हों। यह सुनकर उनके बहुत सारे मित्र सकते में आ गए।

किसी ने कहा, ''आप तो अहिंसा के पुजारी हैं, फिर हमें हथियार उठाने के लिए क्यों कह रहे हैं?''

दूसरे लोग बोले, ''इस सरकार ने भारत के लिए ऐसा किया क्या है कि वह हमसे सहयोग की अपेक्षा रखे?''

उनके बहुत से निकट के मित्र भी यह नहीं समझ पाए कि वह अपने अहिंसक आंदोलन के साथ युद्ध का तालमेल कैसे बैठा पाए हैं।

लेकिन गांधीजी अपने विश्वास पर अडिग रहे—''भारत के शिक्षित वर्ग की ओर से, बगैर शर्त, पूरे मन से सहयोग दिया जाना चाहिए। इससे ही हम स्वराज के अपने लक्ष्य तक पहुँच पाएँगे और किसी बात से नहीं।''

गांधीजी ने निर्णय कर लिया था और वह अब उसे कार्यान्वित करने में जुट्गए।

सेना में भरती होने की अपील का संतोषजनक फल नहीं मिला, लेकिन वह अपनी धुन के पीछे पड़े रहे। उन्होंने सभाएँ कीं। उन्होंने परचे बाँटे कि लोग सेना में भरती हों। लगातार प्रयत्न का फल निकला ही। बहुत से लोग भरती हो गए। और वह आशा करने लगे कि पहली टुकड़ी जैसे ही बाहर भेजी जाएगी, और लोग भी भरती होंगे।

गांधीजी ने भरती होने के प्रचार कार्य में अपना स्वास्थ्य करीब-करीब चौपट कर लिया। उन्हें बहुत कठिन परिश्रम करना पड़ा। वे समय पर भोजन नहीं कर पाते थे और ऐसा आवश्यक पौष्टिक आहार भी नहीं ले पाते थे कि जिससे शरीर को शक्ति मिले।

तभी उन्हें संग्रहणी हो गई। उन्होंने दवाई खाने से इनकार कर दिया। उनकी हालत बिगड़ती ही चली गई। मित्रों ने बहुत समझाने की कोशिश की, लेकिन वह किसी की भी सलाह को मानने के लिए तैयार नहीं थे। वह दिन-रात बेचैन रहने लगे और स्वयं उन्हें ऐसा लगा कि वह मृत्यु के निकट पहुँच रहे हैं।

उन्हें फिर से स्वस्थ होने में बहुत समय लग गया। लेकिन तब तक यह समाचार आ चुका था कि युद्ध समाप्त हो गया है। जर्मनी को एकदम परास्त कर दिया गया था। अब और लोगों के भरती होने की जरूरत नहीं थी।

मित्रों और डॉक्टरों ने सलाह दी कि वे वायु परिवर्तन के लिए कहीं चले जाएँ और स्वास्थ्य को पहले ठीक हो लेने दें। वे माथेरान गए, लेकिन वह जगह उन्हें रास नहीं आई।

वह पूना गए। वहाँ उन्होंने एक डॉक्टर से सलाह ली। उसने स्वास्थ्य ठीक करने के लिए दूध लेने की सलाह दी और कुछ इंजेक्शन लेने के लिए भी कहा। गांधीजी इंजेक्शन लेने के लिए तो तैयार हो गए, लेकिन दूध के लिए नहीं; क्योंकि दूध तो वे कई वर्ष पहले ही छोड़ चुके थे।

लेकिन कस्तूरबा ने कहा, ''आपको एतराज है गाय और भैंस के दूध से, लेकिन आप बकरी का दूध तो ले ही सकते हैं।''

तब गांधीजी बकरी का दूध लेने के लिए तैयार हो गए।

वह अहमदाबाद लौट आए। उनका स्वास्थ्य सुधर ही रहा था कि समाचार पत्रों में उन्होंने रोलेट कमेटी की रिपोर्ट पढ़ी। वह रिपोर्ट उसी समय प्रकाशित हुईथी।

उस रिपोर्ट में सिफारिश की गई थी कि फौजदारी कानून में संशोधन किए जाएँ। इस बात से गांधीजी विचलित हो उठे। उन्होंने कहा, ''यह अन्याय है। स्वतंत्रता और न्याय के सिद्धांत पर यह कुठाराघात है। व्यक्ति के मूलभूत अधिकारों का इससे हनन होता है।''

मित्रगण गांधीजी के पास सलाह के लिए पहुँचे।

वे बोले, ''कुछ किया ही जाना चाहिए। यदि ये सिफारिशें कानून का रूप लेती हैं तो हमें सत्याग्रह करना ही पड़ेगा।''

गांधीजी को इस बात का खेद था कि उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, अन्यथा वह अकेले ही इन सुधारों के विरुद्ध लड़ाई छेड़ देते। बीमारी की हालत में ही बिस्तर पर से वे अखबारों में लेख लिखते रहे कि प्रस्तावित विधेयक तानाशाही है। कोई भी आत्मसम्मानवाला व्यक्ति इसके सामने नहीं झुक सकता।

गांधीजी ने सोचा कि सरकार के खिलाफ सच्ची निष्ठा से सत्याग्रह आंदोलन छेड़ देना ही एकमात्र उपाय है। आश्रम में कुछ नेताओं की बैठक बुलाई गई और सत्याग्रह का प्रतिज्ञा-पत्र तैयार किया गया। वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने उस पर हस्ताक्षर कर दिए। गांधीजी को इस बात का विश्वास नहीं था कि अहिंसा जैसे महान् अस्त्र का अन्य संस्थाएँ ठीक से उपयोग कर सकेंगी। इसलिए उन्होंने 'सत्याग्रह सभा' के नाम से एक नई संस्था बनाई। उसका मुख्य कार्यालय बंबई में था।

रोलेट कमेटी की रिपोर्ट के विरुद्ध हर जगह उपद्रव हो रहे थे। लेकिन सरकार उसकी सिफारिशों को लागू करने पर तुली हुई थी। सन् 1919 में रोलेट एक्ट प्रस्तुत कर दिया गया। जब भारतीय असेंबली में उस पर चर्चा हो रही थी, गांधीजी वहाँ दर्शक के रूप में उपस्थित थे।

सारे देशभक्त लोगों के विरोध के बाद भी वह विधेयक कानून के रूप में पास कर दिया गया।

गांधीजी उस समय भी शरीर से कमजोर थे, जब उन्हें मद्रास आने का निमंत्रण मिला। वे खतरा उठाकर भी महादेव देसाई के साथ वहाँ गए। वहाँ पर पहली बार चक्रवर्ती राजगोपालाचारी से मिले। उनसे वे बहुत प्रभावित हुए।

नेताओं की एक छोटी सी बैठक हुई और गांधीजी ने उन्हें बताया कि यदि रोलेट एक्ट पास हो जाता है तो उसके क्या-क्या परिणाम होंगे। जब ये चर्चाएँ चल रही थीं, तभी रोलेट एक्ट के कानून के रूप में प्रकाशित कर दिए जाने के समाचार प्राप्त हुए।

मद्रास में ही गांधीजी के मन में यह विचार आया कि सत्याग्रह आंदोलन छेड़ने से पहले सारे भारत में हड़ताल की जानी चाहिए। नेताओं ने सुझाव को मान लिया और उस हड़ताल का खासा प्रचार किया गया। पहले तो उसके लिए वर्ष 1919 की 30 मार्च तय कर दी गई थी, लेकिन बाद में इसे बदलकर 6 अप्रैल कर दिया गया। लोगों को हड़ताल की सूचना बहुत कम समय पहले मिली थी, फिर भी वह सफल रही।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए जो संघर्ष हुए, उस दिशा में वह हड़ताल पहली महान् जागृति थी।

गांधीजी मद्रास से रवाना हुए और 6 अप्रैल की हड़ताल में शरीक होने के लिए बंबई आए। तब तक दिल्ली, लाहौर और अमृतसर में 30 मार्च को ही हड़ताल हो चुकी थी। दिल्ली में पुलिस ने प्रदर्शनकारियों के स्वतंत्रतापूर्वक चलने-फिरने पर प्रतिबंध लगा दिया। वहाँ गोली चली और कई लोग हताहत हुए। गांधीजी से निवेदन किया गया कि वे दिल्ली आएँ। उन्होंने उत्तर दिया कि वे 6 अप्रैल को बंबई में हड़ताल हो जाने के बाद ही वहाँ आएँगे।

बंबई में हड़ताल बहुत ही सफल रही। किसी भी फैक्टरी में एक चक्का तक नहीं चला। एक दुकान भी नहीं खुली।

सारे भारत में हड़ताल रखी गई। गांधीजी ने बार-बार लोगों से कहा कि वे शांति बनाए रखें और सरकार के दमन से उत्तेजित होकर हिंसा पर उतारू न हों। इसके बावजूद कई जगह हिंसा फूट पड़ी। अहमदाबाद और पंजाब में उपद्रव हुए। अहिंसा का प्रचार करने के लिए गांधीजी इन जगहों पर जाना चाहते थे।

पंजाब जाते हुए पलवल नामक एक स्टेशन पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और वापस बंबई भेज दिया गया। उनकी गिरफ्तारी की खबर सारी बंबई में आग की तरह फैल गई। वहाँ अपार जन-समुदाय उनके आने की प्रतीक्षा कर रहा था। जब वे बंबई पहुँचे तो उन्हें रिहा कर दिया गया। भीड़ अधीर हो रही थी।

गांधीजी से एक मित्र ने कहा, ''केवल आप ही भीड़ पर काबू पा सकते हैं। आइए, मैं आपको उस स्थान पर ले चलता हूँ।''

भीड़ ने अपार प्रसन्नता से उनका स्वागत किया। बहुत बड़ा जुलूस निकलने वाला था, लेकिन पुलिस ने उस पर प्रतिबंध लगाकर उसे आगे बढ़ने से रोक दिया। फिर घुड़सवारों की टुकड़ी उस भीड़ पर दौड़ा दी गई। जैसे ही घुड़सवार भाले तानकर भीड़ में घुसे और वातावरण में बच्चों व महिलाओं की चीख-पुकार मच उठी, पुलिस के जुल्म से बचने के लिए लोग भागने लगे।

गांधीजी स्तब्ध रह गए। वह कमिश्नर से मिलने गए। उन्होंने देखा कि वे आग-बबूला हो रहे हैं।

''लोगों पर आपके उपदेशों का क्या प्रभाव पड़ता है, यह आपसे अधिक हम पुलिसवाले बेहतर ढंग से जानते हैं। यदि हमने सख्त काररवाई न की होती तो स्थिति हाथ से ही चली जाती। आपकी भावना के बारे में हमें कोई संदेह नहीं, लेकिन जनता उसे नहीं समझती है। लोग तो केवल अपनी आदतों के अनुसार ही व्यवहार करते हैं।''

गांधीजी ने कहा, ''जनता स्वभाव से हिंसक नहीं है। वह शांतिप्रिय है।''

''आप पंजाब जाना चाहते थे न?'' कमिश्नर ने कहा, ''क्या आप जानते हैं कि अहमदाबाद, पंजाब और दिल्ली में क्या हो रहा है? इन सारे उपद्रवों के लिए आप जिम्मेदार हैं।''

गांधीजी को इन उपद्रवों के समाचारों से बड़ा सदमा पहुँचा। उन्होंने कहा कि वे निश्चित ही इन सब बातों का उत्तरदायी खुद को मान लेंगे, अगर वे इससे सहमत हो जाएँ कि सारे उपद्रव उनके द्वारा ही शुरू किए गए हैं।

वे अहमदाबाद गए। अहमदाबाद में उन दिनों मार्शल लॉ लगा हुआ था।

रेलवे स्टेशन पर पुलिस अधिकारी उनकी प्रतीक्षा कर रहा था कि उन्हें कमिश्नर साहब तक पहुँचा दे। वह कमिश्नर भी तमतमाया हुआ था। गांधीजी ने उपद्रवों के लिए खेद प्रकट किया और शांति स्थापित करने में सहयोग देने का वचन दिया।

फिर गांधीजी ने साबरमती आश्रम में एक सभा करने की अनुमति चाही। यह प्रस्ताव अधिकारी को पसंद आया।

सभा में गांधीजी ने दु:ख भरे हृदय से घोषणा की कि सविनय अवज्ञा आंदोलन समाप्त किया जा रहा है। उन्होंने कहा कि वे प्रायश्चित्त के रूप में तीन दिन तक उपवास करेंगे। उन्होंने सब लोगों से भी कहा कि वे एक-एक दिन का उपवास रखें। उन्होंने कहा कि जिन्होंने उपद्रव में भाग लिया है, वे अपना जुर्म स्वीकार कर लें। उन्हें इस बात का दु:ख था कि लोगों को पूरा प्रशिक्षण दिए बगैर ही सविनय अवज्ञा आंदोलन समय से पहले शुरू कर दिया गया।

वे बोले, ''मैंने भयंकर गलती की है।''

कई लोगों ने गांधीजी के इस कथन का मजाक उड़ाया। उनके कई मित्र तथा अनुयायी सत्याग्रह बंद कर देने पर आपे से बाहर हो गए।

फिर गांधीजी ने इस बात की शिक्षा देनी शुरू की कि सत्याग्रह का सही अर्थ क्या है और उसको कैसे चलाया जाना चाहिए। अपने लेखों और भाषणों के माध्यम से वे इस नए सिद्धांत को समझा देना चाहते थे।

पंजाब में स्थिति बहुत गंभीर थी। यह सही है कि उपद्रव जनता के द्वारा ही शुरू किया गया था, लेकिन उसे रोकने के लिए सरकार ने जिस तरह के उपायों का सहारा लिया था, वे भयंकर थे।

नेतागण कोशिश कर रहे थे कि लोग शांत रहें, लेकिन अधिकारीगण जिस तरह का कठोर दमन-चक्र चला रहे थे, उसके समान बहुत कम घटनाएँ इतिहास में पाई जाती हैं।

अमृतसर में लोगों को घूमने-फिरने की आजादी नहीं थी। एक घोषणा प्रकाशित करके सभा-सम्मेलनों पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। लेकिन बहुत कम लोग उसके बारे में जान पाए, क्योंकि सब जगह उसका ऐलान नहीं किया गया था और वह घोषणा केवल अंग्रेजी में प्रकाशित की गई थी।

तभी यह ऐलान किया गया कि सरकार के दमन के खिलाफ विरोध प्रकट करने के लिए एक सभा जलियाँवाला बाग में आयोजित की गई है। जनरल डायर ने सभा को रोकने का कोई उपाय नहीं किया, लेकिन उसके शुरू होते ही वह वहाँ पहुँच गया और अपने साथ हथियारबंद सेना की टुकड़ी और गाड़ियाँ ले गया। बिना कोई चेतावनी दिए उसने आदेश दिया, ''तब तक गोली चलाओ, जब तक गोला-बारूद खत्म न हो जाए।''

वह बाग चारों तरफ से दीवारों व मकानों से घिरा हुआ था और बाहर निकलने के लिए उसमें एक ही दरवाजा था। पहली गोली के चलते ही बाहर जाने का रास्ता बंद हो गया। भीड़ के लिए बचने का कोई उपाय नहीं था। वहाँ लगभग 10 हजार के बीच लोग जमा थे। सिपाहियों ने उस निहत्थी जनता के ऊपर 16 हजार से अधिक गोलियाँ चलाईं।

जो पहले बाग था, वह नर-संहार का स्थल बन गया। सैकड़ों पुरुष, स्त्री और बच्चे भून डाले गए। हालाँकि सरकारी आँकड़ों के अनुसार केवल 379 लोग मरे और 200 घायल हुए। घायलों और मृत लोगों को वहीं छोड़कर सेना की टुकड़ी लौट गई। जलियाँवाला बाग एक तरह से हत्याकांड का पर्यायवाची ही हो गया।

यह घटना तो भयानक थी ही, इसके अलावा भी सारे पंजाब में कई शर्मनाक घटनाएँ घटित हुईं। भारतीय लोगों को अपने हाथों और घुटनों के बल चलने का आदेश दिया गया। जनरल डायर ने कुछ स्थानों पर इस तरह के हुक्म भी दिए कि जब भी कोई अंग्रेज अफसर दिखाई दे, भारतीय लोग अपने वाहन से उतर जाएँ और उन्हें सलाम करें। यही नहीं, कुछ जगहों पर लोगों को नंगा करके पीटा गया। विद्यार्थियों और बच्चों को हाजिरी देने, परेड में शामिल होने और ब्रिटिश झंडे को सलामी देने के लिए मीलों चलना पड़ता था। फिर यह भी हुआ कि बारात में जा रहे लोगों को नंगा करके पीटा गया। चिट्ठी-पत्री पर प्रतिबंध लगा दिया गया। भारतीय परिवारों के नल काट दिए गए और बिजली बंद कर दी गई। जनरल डायर के मार्शल लॉ ने पंजाब में भयंकर आतंक पैदा कर दिया था।

सी.एफ. एंड्रूज पंजाब पहुँच गए थे। उन्होंने गांधीजी को लिखा कि वह तत्काल पंजाब आ जाएँ। गांधीजी वहाँ जाना चाहते थे, लेकिन सरकार बराबर उनकी प्रार्थना को अस्वीकृत करती रही। आखिरकार अक्तूबर में वायसराय ने उन्हें पंजाब जाने की अनुमति दे दी और वे वहाँ गए।

लाहौर स्टेशन पर पहुँचने पर गांधीजी ने देखा कि नगर की लगभग सारी जनता उनके आने की प्रतीक्षा में वहाँ उपस्थित थी।

कांग्रेस ने पंजाब में किए गए अत्याचारों की जाँच के लिए एक समिति नियुक्त की थी। लाहौर पहुँचने पर गांधीजी से कहा गया कि वह भी उस समिति में शरीक हों। उन्होंने धीमे लेकिन बहुत ही युक्ति-युक्त तरीके से पंजाब में हुई घटनाओं की जाँच-पड़ताल शुरू की।

इस तरह गांधीजी को पंजाब और वहाँ की जनता को समझने का मौका मिला। लोग उन्हें घेर लेते थे। वे उन्हें प्यार करते थे, उनका सम्मान करते थे।

जवाहरलाल नेहरू उन दिनों पंजाब में ही थे। उन्होंने यह अनुभव किया कि गांधीजी जन-जन के नेता हैं। लोग उनके पास उनके विचारों और कर्मों से प्रभावित होकर खिंचे चले आते थे। नेहरू ने गांधीजी द्वारा की जा रही जाँच-पड़ताल में वैज्ञानिक यथार्थ के दर्शन किए।

गांधीजी ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि सरकार कुछ लोगों का बचाव करने का प्रयत्न कर रही है। गांधीजी की इस बात में कोई रुचि नहीं थी कि किसी से बदला लें, लेकिन उस रिपोर्ट के छपने पर भी सरकार को चुप देखकर उन्हें बड़ा धक्का लगा।

पंजाब के लोगों के कष्ट देखकर गांधीजी बहुत विचलित हो गए। वे जान गए थे कि निरस्त्र लोगों पर कैसे-कैसे अत्याचार किए गए हैं।

तब गांधीजी ने लोगों को सलाह दी कि वे हर तरह से सरकार से असहयोग करें। उन्होंने लोगों से कहा कि वे ब्रिटिश सरकार द्वारा दिए जानेवाले खिताब स्वीकार न करें और जो पहले उन्हें स्वीकार कर चुके हैं, वे उन्हें लौटा दें। वे चाहते थे कि लोग न्यायालयों का भी बहिष्कार करें। उन्होंने जनता को विदेशी वस्तु न खरीदने की सलाह दी। वे देशवासियों को इस बात के लिए सहमत करने में कोई भी कसर नहीं उठा रखना चाहते थे कि वे लोग किसी भी सरकारी पद पर कार्य न करें। उन्होंने लोगों को शिक्षा संस्थाओं से भी बाहर आ जाने को कहा।

भारत की जनता पर गांधीजी का प्रभाव तेजी से बढ़ता जा रहा था। बहुत सारे वयोवृद्ध नेता अपनी उदारवादी नीति के कारण भारतीय राजनीति से अस्त होते जा रहे थे। सन् 1920 के अंत तक गांधीजी देश के और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के निर्विवाद नेता बन गए।

कांग्रेस इस बात के लिए लड़ रही थी कि तत्काल होमरूल दे दिया जाए। उनका लड़ने का तरीका सरकार के साथ अहिंसात्मक असहयोग करने का था। समय-समय पर कुछ कानूनों की सावधानीपूर्वक आज्ञा भी की जाती थी।

गांधीजी जवाहरलाल नेहरू के समाजवादी दृष्टिकोण में बहुत रुचि लेते थे। किसानों के साथ अपने संपर्कों का जो ब्यौरा जवाहरलाल ने उन्हें दिया, उससे वे बहुत प्रभावित हुए थे। जवाहरलाल ने उन्हें बताया कि किसान कैसे-कैसे कष्ट सहते हैं। विशेष रूप से यह बात कि उन्हें कितना भारी कर देना पड़ता है।

भारत की राजनीतिक अवस्था दिन-पर-दिन खराब होती चली गई। सरकार भी परेशान हो उठी। शोषित लोगों में हर जगह एक तरह का तनाव व्याप्त था और हिंसक काररवाई फैलने का खतरा था।

सरकार के ऐसे सख्त व्यवहार के बाद भी गांधीजी को यह विश्वास न था कि शीघ्र ही ब्रिटेन अपनी गलती ठीक कर लेगा। जवाहरलाल के विचार ये थे कि ब्रिटेन तब तक नहीं झुकेगा, जब तक कि उसे झुकने के लिए

विवश नहीं कर दिया जाए। जवाहरलाल ठीक ही सोच रहे थे। उसके बाद सरकार ने नेताओं को गिरफ्तार कर जेल भेजना शुरू कर दिया। अंग्रेजों को यह डर लगा कि कहीं भारत पर से उन्हें अपना अधिकार ही न खो देना पड़े।

1 अगस्त, 1920 को गांधीजी ने वायसराय लॉर्ड चेम्सफोर्ड को एक पत्र लिखा और उसमें असहयोग का संकेत दे दिया। इसके साथ ही उन्होंने 'कैसरे-हिंद' नामक स्वर्ण-पदक भी लौटा दिया, जो कि उन्हें सन् 1915 में मिला था। 'यंग इंडिया' के स्तंभों में गांधीजी ने अहिंसात्मक असहयोग के बारे में विस्तार से लिखा।

जगह-जगह भाषण देते हुए और सत्याग्रह की विशेषताएँ समझाते हुए उन्होंने अनेक नेताओं के साथ दूर-दूर की यात्रा की। हर जगह अपार जन-समुदाय अगाध प्रेम और उत्साह के साथ उनसे मिला। बार-बार उन्होंने लोगों को हिंसा के खिलाफ चेतावनी दी। भीड़ के उन्माद से उन्हें बड़ी घृणा थी।

वे कहते थे, ''यदि भारत को हिंसा के माध्यम से आजादी लेनी है तो फिर यह काम अनुशासित हिंसा यानी युद्ध के द्वारा ही किया जाना चाहिए।''

अगस्त के अंत में गुजरात राजनीतिक परिषद् ने असहयोग का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। 4 से 9 सितंबर तक कलकत्ता में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ। इसके लिए असहयोग आंदोलन का प्रस्ताव स्वयं गांधीजी ने तैयार किया।

गांधीजी नहीं जानते थे कि कांग्रेस अधिवेशन में उन्हें कितनी सफलता मिलेगी। जब उन्होंने प्रस्ताव रखा तो यह कहा गया कि अब तक जिस नीति से काम किया जाता रहा है, यह प्रस्ताव उससे भिन्न है। वे यह भी जानते थे कि कई नेता उनके एकदम खिलाफ हैं।

उन्होंने घोषित किया, ''ईश्वर से डरते हुए और कर्तव्य की भावना से प्रेरित होकर ही यह आपकी स्वीकृति के लिए मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ।''

उस विशेष अधिवेशन में असहयोग योजना को स्वराज प्राप्त करने के साधन के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

सन् 1920 के आखिरी महीनों में गांधीजी ने तिहरे बहिष्कार की बात कही। उन्होंने सरकार और समस्त सरकारी संस्थाओं का बहिष्कार करने पर जोर दिया। इनमें स्कूल-कॉलेज और न्यायालय भी सम्मिलित थे। यदि जनता इनसे मुक्त हो जाए तो वह आसानी से अपने स्कूल, अपने कॉलेज और अपने न्यायालय खोल सकती है और उससे ब्रिटिश सत्ता धराशायी हो जाएगी।

ब्रिटिश सरकार के सहयोगियों और दूसरे सम्माननीय लोगों ने इस बात का खासा मजाक उड़ाया। लेकिन गांधीजी ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। गांधीजी की गतिविधियों से सरकार आतंकित हो उठी। उसने चेतावनी दी कि जो भी कानून की सीमा से बाहर काम करेगा, उसे गिरफ्तार किया जा सकता है और जेल भेजा जा सकता है।

गांधीजी को लगा कि यह तो आंदोलन की सफलता है। उन्होंने लोगों को इस बात के निर्देश दे दिए कि जब वह गिरफ्तार हो जाएँ तो उन्हें क्या करना चाहिए।

26 दिसंबर को कांग्रेस का अधिवेशन नागपुर में हुआ। इस अधिवेशन में गांधीजी की नीतियों का विरोध भी किया गया; लेकिन उनका प्रस्ताव अपार बहुमत में स्वीकृत हो गया।

नागपुर में इस नए कार्यक्रम की स्वीकृति जन-आंदोलन की शुरुआत का संकेत थी। गांधीजी ने सोचा कि सारी सरकारी संस्थाओं का बहिष्कार कर देने से कांग्रेस को वैसी ही संस्थाएँ बनाने का मौका मिल सकता है और इस तरह राज्य के अंदर राज्य बन सकेगा। उससे भारत स्वराज की तरफ बढ़ सकेगा।

सन् 1921 में ड्यूक ऑफ कनॉट भारत आए कि वे यहाँ की जनता को शांत कर सकें। वे देश में चार विधानसभाओं का उद्घाटन करने आए थे। सम्राट् की ओर से घोषित सुधारों के अंतर्गत ही इनका निर्माण हुआ था। लेकिन उनके आने से अंग्रेजों के प्रति भारतीय दृष्टिकोण में कोई ठोस परिवर्तन नहीं हुआ।

गांधीजी दूर-दूर तक यात्रा करते रहे और अहिंसा तथा असहयोग के आदर्शों का प्रचार करते रहे। दिनोंदिन जनता गांधीजी के कार्यक्रमों पर अमल करने के लिए आतुर हो रही थी। अनेक विद्यार्थियों ने अपने स्कूल-कॉलेज छोड़ दिए। बहुत से अधिकारियों ने अपने पद त्याग दिए। बहिष्कार आंदोलन चोटी पर पहुँच गया था।

जनता का नैतिक साहस बढ़ता जा रहा था और सरकार का धैर्य डिगने लगा था। दमन-चक्र शुरू हुआ। गांधीजी ने लोगों को धीरज रखने की सलाह दी और अहिंसा पर जोर दिया। उन्हें भारतीय जनता में दुर्बलता भी दिखाई दी और उन्होंने उसे दूर करने का सुझाव दिया। वे चाहते थे कि इसके साथ ही सामाजिक सुधार और रचनात्मक काम भी किए जाएँ।

तभी यह घोषणा हुई कि प्रिंस ऑफ वेल्स भारत यात्रा करेंगे। कई जगह कार्यक्रम आयोजित किए गए कि वे अपनी वफादार प्रजा से भेंट कर सकें।

गांधीजी ने जब समाचार-पत्रों में यह खबर पढ़ी तो वह भड़क उठे।

उन्होंने कहा, ''क्या अंग्रेज यह समझते हैं कि हम बच्चे हैं? क्या वे इस बात में विश्वास करते हैं कि युवराज के लिए की जानेवाली परेडों से हम पंजाब में किए गए बर्बर अत्याचारों और स्वशासन देने में किए जानेवाले विलंब को भूल जाएँगे?''

''हमें महामहिम युवराज से कोई शिकायत नहीं है।'' गांधीजी ने कहा, ''लेकिन वह दमन के प्रतीक हैं और इस कारण हम उनके खिलाफ हैं। हम सारी दुनिया को दिखा देंगे कि हमारा यह असहयोग तलवार के यूरोपीय सिद्धांतों के ठीक विपरीत है। हम लोग प्राचीन ऋषियों के अनुसार आचरण कर रहे हैं। बिना हिंसा के असहयोग वीरों की लड़ाई है।''

इस बात के डर से कि महामहिम युवराज की यात्रा के समय अव्यवस्था न फैल जाए, फिर दमन-चक्र शुरू हो गया। हजारों लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया। भारतीय जनता इतनी नाराज हो उठी कि नगर-नगर में होली जलाई गई। यह होली विदेशी और खासकर ब्रिटिश कपड़ों की थी।

17 नवंबर, 1921 को युवराज बंबई पहुँचे। ब्रिटेन के स्वामीभक्त प्रतिनिधि शाही मेहमान की अगवानी करने गए। अहिंसात्मक असहयोग करनेवालों ने कोई दखल नहीं दिया। फिर भी, सहसा गुस्सा भड़क उठा। धार्मिक और राजनीतिक घृणा ने इसे और भड़का दिया। दंगे शुरू हो गए। बहुत से लोग मारे गए। बहुत सी संपत्ति नष्ट हो गई। शहर में आतंक छा गया। गांधीजी बंबई में ही थे। वह दंगेवाली जगह जा पहुँचे कि उपद्रव समाप्त हो जाए। आखिरकार शांति स्थापित हो गई।

गांधीजी ने बहुत कड़वे शब्दों में कहा, ''हर आदमी को अपने धर्म और अपनी राजनीतिक विचारधारा को मानने का अधिकार है। तब तक सत्याग्रह सफल नहीं हो सकता जब तक इस बात को नहीं समझ पाएँगे।''

दूसरे शहरों में युवराज के आने का बहिष्कार शांतिपूर्वक किया गया। अभागे युवराज शहर-पर-शहर देखे जा रहे थे, लेकिन उनका स्वागत कर रही थीं खाली सड़कें। एक दुकान तक नहीं खुली थी। लोग घर के दरवाजे बंद किए रहे और बाहर नहीं आए। यह अवस्था देखकर ब्रिटिश सरकार क्रुद्ध हो उठी। उसने भारत सरकार से इसके खिलाफ काररवाई करने को कहा।

फलस्वरूप मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू और दूसरे नेता गिरफ्तार कर लिये गए और अलग-अलग अवधि के लिए सबको जेल भेज दिया गया। लेकिन जनता का अटल साहस रत्ती भर भी कम नहीं हुआ। जनता

स्वराज प्राप्त करने के लिए चाहे जैसे कष्ट सहने को तैयार थी।

गांधीजी से यह माँग की गई कि वे स्वराज की प्राप्ति के लिए जन-आंदोलन शुरू करें। गांधीजी ने निश्चय कर लिया। बारदोली में सत्याग्रह शुरू करने की तैयारी कर ली गई। लेकिन बंबई तथा अन्य जगहों पर कुछ घटनाएँ हो गईं और गांधीजी को आंदोलन तुरंत स्थगित कर देना पड़ा।

उत्तर प्रदेश में गोरखपुर के नजदीक चौरीचौरा में सरकार के खिलाफ प्रदर्शन कर रही एक भीड़ पर पुलिस ने गोली चलाई। प्रदर्शनकारियों को इससे इतना क्रोध आया कि वे बहुत उत्तेजित हो उठे। पुलिस को सिटी हॉल में शरण लेनी पड़ी। क्रुद्ध भीड़ ने उस हॉल को घेर लिया और आग लगा दी। कुछ सिपाही जलकर मर गए। जो भागने की कोशिश कर रहे थे, वे बाहर खड़ी कुछ जनता के द्वारा मार डाले गए।

इससे गांधीजी बहुत विचलित हो उठे। वे सोचने लगे। उन्हें लगा कि लोग निश्चित ही अभी तक सत्याग्रह के लिए तैयार नहीं हुए हैं। उन्होंने बारदोली का सत्याग्रह स्थगित कर दिया। उनके साथी इससे सहमत नहीं थे, लेकिन गांधीजी अपनी बात पर दृढ़ रहे। वे चाहते थे कि उनके अनुयायी रचनात्मक काम में लग जाएँ।

गांधीजी के इस निर्णय से बहुत से देशवासी दु:खी हुए। वे सोच रहे थे कि स्वराज अब पहुँच के भीतर ही है और आंदोलन जारी रहना चाहिए।

सरकार तो जैसे प्रतीक्षा ही कर रही थी। जन-आंदोलन को रोक देने के लिए गांधीजी को धन्यवाद देने के बदले उन पर राजद्रोह का आरोप लगाया गया और उन्हें छह वर्ष की सजा सुना दी गई। उन्हें पूना के यरवदा केंद्रीय जेल में भेज दिया गया।

जेल में गांधीजी कताई, लेखन और चिंतन में व्यस्त रहने लगे। लोगों को बड़ी निराशा हुई। हर जगह सरकार ने अपनी पकड़ मजबूत बना ली। लगभग सभी नेता जेल में ठूँस दिए गए।

फिर सन् 1924 में गांधीजी बीमार हो गए। उन्हें अपेंडिसाइटिस का रोग था। पीड़ा बहुत हो रही थी। सरकार सतर्क हो गई। यदि गांधीजी जेल में मर गए तो क्या होगा? तत्काल ऑपरेशन का इंतजाम किया गया और वे उसके लिए सहमत हो गए। ऑपरेशन सफल हो गया। लेकिन उनका स्वास्थ्य बहुत धीमी गति से सुधर रहा था। सरकार ने यह उचित समझा कि उन्हें छोड़ दिया जाए। वे रिहा कर दिए गए। फिर अपने स्वास्थ्य सुधार के लिए वे बंबई के पास जुहू चले गए।

असहयोग आंदोलन ठंडा पड़ गया था। कई कांग्रेसी नेता नगरपालिका और प्रांतीय कौंसिलों में भाग लेने की बात सोचने लगे थे। जबकि गांधीजी ने इनका बहिष्कार करने के लिए कहा था। लेकिन गांधीजी न निराश हुए और न ही उन्होंने साहस खोया। उन्होंने कुछ समय के बाद राजनीति छोड़ देने का फैसला किया और हिंदू-मुसलमान एकता स्थापित करने तथा छुआछूत मिटाने में लग गए।

इस तरह लगभग छह वर्ष तक गांधीजी ने राजनीतिक क्षेत्र में कुछ नहीं किया। लेकिन वे लिखते रहे, भाषण देते रहे और प्रार्थना करते रहे। सारे भारत की उन्होंने यात्रा की। ब्रिटिश राज के प्रति अहिंसक विरोध का विचार गांधीजी ने छोड़ नहीं दिया था। वे तो सचमुच समय की प्रतीक्षा कर रहे थे।

कई यात्राओं में गांधीजी के साथ जवाहरलाल नेहरू भी रहे। हर जगह उन दोनों का असीम उत्साह से स्वागत किया गया। जवाहरलाल तो युवा पीढ़ी की आशा ही थे।

सन् 1928 में वायसराय ने गांधीजी को मिलने के लिए बुलाया। उन्होंने गांधीजी को बताया कि ब्रिटिश सरकार ने सर जॉन साइमन की देखरेख में एक कमीशन की नियुक्ति की है। यह कमीशन भारत की वस्तुस्थिति का अध्ययन करेगा और सुझाव देगा कि किस तरह के राजनीतिक सुधार किए जाने चाहिए।

गांधीजी ने पूछा, ''क्या उस कमीशन में कोई भारतीय भी होगा?''

''नहीं।'' वायसराय ने उत्तर दिया।

''फिर वह फिजूल है।'' गांधीजी ने कहा, ''हमें इसका बहिष्कार करना चाहिए।''

गांधीजी ने लोगों को सलाह दी कि साइमन कमीशन का बहिष्कार किया जाए। जब कमीशन के लोग बंबई पहुँचे तो सारे भारत में हड़ताल रखी गई। जब वे देश के दूसरे शहरों की यात्रा कर रहे थे तो काले झंडों के प्रदर्शन किए गए।

लोगों ने नारे लगाए, ''साइमन लौट जाओ।''

कई जगह लाठियाँ चलाई गईं और गोलियाँ भी चलीं।

उसी वर्ष गुजरात में बारदोली के किसान भूमि कर बढ़ा दिए जाने से विक्षुब्ध हो रहे थे। गांधीजी ने उनकी शिकायतों का अध्ययन किया और सलाह दी कि वे सत्याग्रह का सहारा लें और कर न चुकाएँ।

''लेकिन अहिंसक बने रहना जरूरी है।'' उन्होंने कहा। वल्लभभाई पटेल ने उस आंदोलन का काम हाथ में ले लिया।

सरकार ने जनता को आतंकित करने के अपने पुराने तरीकों का उपयोग किया। लेकिन उसे झुकना ही पड़ा। शिकायतों की जाँच की आज्ञा दी गई। वल्लभभाई ने कुछ रियायतें माँगीं। गांधीजी जब बारदोली पहुँचे तो सलाह-मशविरा जारी था। कुछ समय बाद ही सरकार ने उनकी बातें मान लीं और समझौता हो गया।

अब राजनीतिक हलचल ने फिर बल पकड़ा। हर जगह लोग जन-संघर्ष की तैयारी कर रहे थे।

वायसराय ने देश के नेताओं की एक बैठक बुलाई। यह घोषणा की गई कि भारत को कनाडा जैसा स्वायत्त शासन दे दिया जाएगा। गांधीजी ने चाहा कि संविधान बनाने की योजना के लिए तत्काल कदम उठाया जाए।

''भले आदमी,'' वायसराय ने कहा, ''ऐसे वायदे करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है।''

हर आदमी को यह लगा कि इंग्लैंड टाल-मटोल कर रहा है। सत्ता सौंप देने का उसका कोई इरादा नहीं है।

जनता के मन में यह बात घर कर गई कि सरकार को कुछ करने के लिए मजबूर किया ही जाना चाहिए।

जवाहरलाल नेहरू गांधीजी के प्रस्ताव पर कांग्रेस के अध्यक्ष चुन लिये गए। 31 दिसंबर, 1929 को लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। वहाँ यह प्रस्ताव पास हुआ कि संपूर्ण स्वराज भारत का लक्ष्य है।

स्वायत्त शासन पाने में असफल होकर भारत ने अब संपूर्ण स्वराज की माँग की।

सारा देश जाग उठा। हर आदमी गांधीजी के नेतृत्व की राह देख रहा था। दो महीने की प्रतीक्षा के बाद गांधीजी ने नमक सत्याग्रह की घोषणा कर दी।

यह सविनय अवज्ञा आंदोलन का प्रारंभ था, जिसके द्वारा सरकार के कानूनों का उल्लंघन किया जाना था। सविनय अवज्ञा की शुरुआत होनी थी नमक के कानून उल्लंघन से।

नेहरू ने कहा था, ''सहसा 'नमक' शब्द रहस्यमय शब्द बन गया, शक्ति का द्योतक।''

सरकार ने नमक पर आबकारी कर लगा दिया, जिससे उसके खजाने में बेशुमार रुपया आने लगा। और तो और, सरकार के पास नमक बनाने का एकाधिकार भी था।

नमक कर पर वार किया जाना था और नमक कानून को तोड़ना था। गांधीजी की इस सहजता ने कि नमक को उन्होंने आंदोलन के लिए चुना, सारी स्थिति को बेहद नाटकीय रंग दे दिया था।

2 मार्च, 1930 को गांधीजी ने नए वायसराय लॉर्ड इरविन को ब्रिटिश राज में भारत की खेदजनक दशा के बारे में एक लंबा पत्र लिखा।

उन्होंने कहा, ''ब्रिटिश राज ने हमारा लगातार शोषण किया है। सैनिक तथा नागरिक प्रशासन की भयंकर खर्चीली व्यवस्था को हमारे ऊपर लादा गया है। इसने लाखों लोगों को गूँगा कर दिया है और कंगाल बना दिया

है। इससे हम राजनीतिक रूप में खरीदे हुए गुलाम बन गए हैं। इसने हमारी संस्कृति की जड़ें खोखली कर दी हैं।''

उन्होंने वायसराय से निवेदन किया कि वह उनसे मिलें और व्यक्तिगत रूप से सारी स्थिति पर चर्चा करें।

''लेकिन यदि आप इन बुराइयों को दूर करने के उपाय नहीं खोजते,'' उन्होंने आगे कहा, ''और मेरे पत्र का आपके हृदय पर कोई असर नहीं पड़ता तो इस महीने की 11 तारीख को मैं आश्रम के अपने उन लोगों के साथ, जो मेरे साथ जा सकते हैं, नमक कानून तोड़ने जाऊँगा।... मैं जानता हूँ और यह आपके हाथ में है कि मुझे गिरफ्तार करके आप मेरी योजना पर पानी फेर सकते हैं। लेकिन मुझे आशा है कि मेरे बाद उस काम को आगे बढ़ानेवाले हजारों-लाखों लोग होंगे, जो अनुशासनबद्ध आंदोलन करेंगे।''

लॉर्ड इरविन ने कोई उत्तर नहीं दिया; लेकिन अपने सचिव से यह कहलवा भेजा कि उन्हें इस बात का खेद है कि गांधीजी ने वह रास्ता चुना है, जिसमें देश के कानून को तोड़ने और जन-शांति को खतरा पहुँचाने की संभावना है।

गांधीजी के नमक सत्याग्रह से सारा भारत आंदोलित हो उठा। 12 मार्च को सवेरे 6:30 बजे हजारों लोगों ने देखा कि गांधीजी आश्रम के 78 स्वयंसेवकों सहित दांडी यात्रा पर निकल पड़े हैं। दांडी वहाँ से 241 मील दूर समुद्र किनारे बसा एक गाँव है।

यह घोषणा कर दी गई कि नमक कानून का उल्लंघन किया जाएगा। गांधीजी एक गाँव के बाद दूसरे गाँव को पार करते रहे। वे हर जगह रुकते, किसानों से बातें करते और उन्हें समाज-सुधार का महत्त्व समझाते।

वे समुद्र की तरफ बढ़ते जा रहे थे। चौबीस दिन तक भारत तथा सारे संसार की आँखें उन पर लगी रहीं। सरकार ने गांधीजी को गिरफ्तार करने का खतरा मोल नहीं लिया। दिनोदिन वह आंदोलन बढ़ता गया। सैकड़ों-हजारों लोगों ने जुलूस में भाग लिया। पुरुष, स्त्री और बच्चे जगह-जगह कतारों में खड़े रहते, हार-फूल भेंट करते और यात्रा की सफलता के नारे लगाते। संसार के कोने-कोने से पत्रकार इस यात्रा की जानकारी प्राप्त करने के लिए आए हुए थे।

5 अप्रैल को दांडी यात्रा समाप्त हुई। गांधीजी और उनके कुछ चुने हुए साथी समुद्र किनारे गए और तट पर छूटा हुआ नमक बीनकर नमक कानून का उल्लंघन किया।

फिर गांधीजी ने सब देशवासियों को छूट दे दी कि वे अवैध रूप से नमक बनाएँ। वे चाहते थे कि जनता खुलेआम नमक कानून तोड़े और पुलिस काररवाई के सामने अहिंसक विरोध प्रकट करे। सारे भारत के लोग अपने-अपने नजदीक के समुद्र किनारे नमक कानून तोड़ने जा पहुँचे। हर जगह बड़ा उत्साह था। बहुत कम लोग यह जानते थे कि नमक कैसे बनाया जाता है; लेकिन लोगों ने अपने-अपने तरीके ईजाद कर लिये। नमक बनाना महत्त्वपूर्ण नहीं था, महत्त्वपूर्ण था उस कानून को तोड़ना।

गांधीजी और दूसरे नेताओं ने इस तरह का प्रबंध कर रखा था कि अगर वे गिरफ्तार कर लिये जाएँ तो भी आंदोलन चलता रहे। नेताओं की एक सूची पहले से निश्चित कर ली गई थी कि जैसे ही एक नेता गिरफ्तार होगा, दूसरा उसकी जगह लेने के लिए तैयार रहेगा।

सरकार कदम उठाने से पहले कुछ समय तक प्रतीक्षा करती रही, फिर जवाबी हमला शुरू हो गया। गांधीजी को खुला छोड़ दिया गया, लेकिन दूसरे बहुत से नेता गिरफ्तार कर लिये गए। जवाहरलाल, महादेव देसाई और गांधीजी के पुत्र देवदास को सबसे पहले जेल भेजा गया। नमक कानून तोड़नेवाले लोगों के साथ पुलिसवालों का व्यवहार पहले जैसा ही बर्बर था।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को अवैधानिक घोषित कर दिया गया। जिन अखबारों को रोक-टोक लगाने की धमकी दी गई, उन्होंने अपना प्रकाशन बंद कर दिया। लोगों ने हड़ताल की, प्रदर्शन किए और वे सामूहिक रूप से गिरफ्तार हुए। शीघ्र ही सारी जेलों में बाढ़-सी आ गई। लोग अहिंसक ही बने रहे कि गांधीजी आंदोलन वापस न ले लें।

फिर गांधीजी ने वायसराय को सूचना दी कि वह घरसना के सरकारी नमक कारखाने पर धावा बोलने जा रहे हैं।

लॉर्ड इरविन ने कदम उठाया। मध्य रात्रि के समय दो पिस्तौलधारी अंग्रेज अधिकारी कई सशस्त्र भारतीय सिपाहियों सहित गांधीजी के डेरे पर जा पहुँचे।

उन्होंने गांधीजी को जगाया और कहा, ''आप गिरफ्तार किए जाते हैं।''

गांधीजी को गिरफ्तार करके यरवदा जेल भेज दिया गया।

घरसना नमक कारखाने पर धावा बोलने के लिए गांधीजी उपस्थित नहीं थे।

नमक कारखाने काँटेवाले तारों से घिरा था और लोहे की मूठवाली लाठियों से लैस 400 सशस्त्र भारतीय सैनिक वहाँ पहरा दे रहे थे। कुछ ब्रिटिश अधिकारी उनका संचालन कर रहे थे।

गांधीजी के स्वयंसेवक उस घेरे से कुछ दूर ही रुक गए। फिर चुने हुए लोगों का एक दल उन काँटेदार तारों के घेरे की तरफ बढ़ा। पुलिस अधिकारियों ने स्वयंसेवकों को आज्ञा दी कि वे लौट जाएँ; लेकिन उन्होंने इस चेतावनी को अनसुना कर दिया।

सहसा पुलिस उनकी ओर लपकी और निहत्थे लोगों पर हमले-पर-हमले करने लगी। लेकिन मार के खिलाफ एक स्वयंसेवक ने भी हाथ नहीं उठाया। वे गिरते गए। कुछ के सिर फूट गए, कुछ के कंधों पर चोटें लगीं। किसी के हाथ तो किसी के पैर टूटे। इस दृश्य को देखनेवाली भीड़ आर्तनाद करती रही।

जब पहला दल बुरी तरह पिट चुका और स्ट्रेचर पर उठा-उठाकर उनके घायल शरीर वहाँ से हटा दिए गए तो दूसरा दल उसी स्थिति का सामना करने के लिए आगे बढ़ा। यह क्रम घंटों चला। अंत में जब गरमी बहुत बढ़ गई तो स्वयंसेवकों ने उस दिन के लिए काररवाई बंद कर दी। स्वयंसेवकों में से दो मारे गए और 320 घायल हुए।

गांधीजी की गिरफ्तारी ने भारत और ब्रिटेन में सनसनी पैदा कर दी। संसार के सभी भागों से ब्रिटिश प्रधानमंत्री को इस आशय से पत्र भेजे गए कि गांधीजी को छोड़ दें और भारत के साथ सुलह करने का प्रयत्न करें। जो लोग ब्रिटिश सरकार के सहयोगी थे, उन लोगों ने भी गांधीजी को रिहा कर देने की माँग की।

गांधीजी का जेल के अंदर बंद रहना उनके बाहर रहने से अधिक खतरनाक साबित हुआ। जब वे यरवदा जेल में शांतिपूर्वक बैठे हुए थे, सारे देश में सविनय अवज्ञा के कारण ब्रिटिश सरकार की नाक में दम थी। जेलों में जैसे बाढ़-सी आ गई थी। सरकार काफी संकट में पड़ गई थी और आखिरकार सन् 1931 में गांधीजी, नेहरू और दूसरे नेताओं को उसे रिहा कर देना पड़ा।

जैसे ही गांधीजी जेल से बाहर आए, उन्होंने वायसराय लॉर्ड इरविन से भेंट करनी चाही। तत्काल ही भेंट की आज्ञा मिल गई। गांधीजी और इरविन मिले; लेकिन दोनों ही जैसे दो अलग-अलग संसार के रहनेवाले थे।

गांधीजी दया माँगने तो गए नहीं थे। वे तो समानता के स्तर पर समझौता करना चाहते थे। कई दिनों तक वे दोनों मिलते रहे और अंत में एक समझौते के रूप में बात समाप्त हुई। उसका नाम पड़ा 'गांधी-इरविन पैक्ट'। इसमें दोनों पक्षों की ओर से समझौते किए गए। इरविन इस बात के लिए सहमत हुए कि वह सब राजनीतिक कैदियों को रिहा कर देंगे और गांधीजी इस बात के लिए कि वे सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस ले लेंगे तथा

गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस का एक प्रतिनिधि भेजेंगे। उन दिनों ब्रिटिश सरकार लंदन में भारत के भविष्य के बारे में विचार करने के लिए गोलमेज सम्मेलन करती थी।

'गांधी-इरविन पैक्ट' अहिंसक आंदोलन की विजय थी। लेकिन उनके कुछ कांग्रेसी अनुयायी इस मत के थे कि यह कोई खास उपलब्धि नहीं है।

गांधीजी को गोलमेज सम्मेलन के लिए कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में नामजद किया गया। अगस्त 1931 में वे कुछ लोगों के साथ लंदन गए।

गांधीजी इंग्लैंड गए थे कि भारत के लिए उचित संविधान के प्रश्न पर ब्रिटिश सरकार के साथ कोई समझौता कर सकेंगे और ब्रिटिश जनता का हृदय जीत सकेंगे। पहले उद्देश्य में तो वे असफल हो गए, लेकिन दूसरे में उन्हें बड़ी सफलता मिली।

गांधीजी इंग्लैंड में 84 दिनों तक रहे। वे अधिकांश समय लोगों से मिलकर चर्चा करते रहे। चर्चिल ने उनसे मिलने से इनकार कर दिया। लेकिन गांधीजी ने कई लोगों के मन जीत लिये। सम्राट् और सम्राज्ञी ने उन्हें चाय पर बुलाया। एक पत्रकार ने उनसे पूछा कि ऐसी राजसी चाय पार्टी में क्या उन्हें यह खयाल नहीं आया कि वे भी उस अवसर के अनुकूल कपड़े पहने होते? गांधीजी ने उत्तर दिया, ''सम्राट् स्वयं ही इतने वस्त्र पहने हुए थे कि वे हम दोनों के लिए काफी थे।''

गोलमेज सम्मेलन में ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकला, जो स्वराज के काम आता। हिंदू और मुसलमानों के बीच उस सम्मेलन से खाई ही बढ़ी तथा भारत में सांप्रदायिक तनाव और बढ़ गया।

गांधीजी जब भारत लौटे तो बहुत से अंग्रेज लोगों की हार्दिक शुभकामनाओं के अलावा वह और कुछ लेकर नहीं लौटे।

घर लौटकर गांधीजी ने देखा कि सरकार तो दमन करने पर तुली हुई है। बहुत से लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया है। उन व्यक्तियों और संस्थाओं की संपत्ति तथा जमा-पूँजी छीन ली गई है, जो शासन के खिलाफ हैं।

सन् 1932 के प्रारंभ में नए वायसराय लॉर्ड विलिंगटन से गांधीजी ने मिलना चाहा, लेकिन वायसराय ने स्पष्ट कह दिया कि समझौते के दिन अब लद गए हैं।

गांधीजी ने अधिकारियों को सूचना दी कि वे फिर से सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू कर रहे हैं। वायसराय ने सोचा कि यह धमकी है। उन्होंने गांधीजी को गिरफ्तार करके यरवदा जेल में डाल दिया। बहुत से दूसरे नेता और गांधीजी के अनुयायी भी गिरफ्तार करके जेल में बंद कर दिए गए।

मार्च के महीने में इस संघर्ष को नई दिशा मिली। गांधीजी ने हमेशा यह कहा कि हरिजन हिंदू ही हैं और उनके साथ हिंदुओं जैसा ही बरताव किया जाना चाहिए। उन दिनों ही सरकार ने यह घोषणा कि अछूतों के लिए अंग्रेज सरकार पृथक् मताधिकार का प्रस्ताव रख रही है। इसका यह आशय हुआ कि अछूत अपनी जाति के सदस्यों के लिए ही मत दे सकेंगे।

गांधीजी ने सोच लिया कि ब्रिटिश शासन कौन सी चाल चलना चाहता है। वह हिंदू समाज को कमजोर बना देने की साजिश रच रहा था।

गांधीजी ने घोषणा की, ''अछूतों के साथ अलग व्यवहार की अनुमति नहीं दी जा सकती। यह तो साजिश है कि छुआछूत हमेशा बनी रहे। हम जब तक अछूत समस्या से मुक्त नहीं हो लेते तब तक स्वराज प्राप्त नहीं कर सकते।''

''लेकिन चुनाव के इस नए कानून के लिए आप क्या करना चाहते हैं?'' एक मित्र ने पूछा।

''मैं मर जाऊँगा,'' उन्होंने तत्काल उत्तर दिया, ''लेकिन मैं इस गलत व्यवस्था का विरोध अपने जीवन का दाँव लगाकर भी करूँगा।''

गांधीजी ने घोषणा की कि यदि पृथक् निर्वाचन की योजना में परिवर्तन नहीं किया गया तो वे शीघ्र ही आमरण अनशन शुरू कर देंगे।

इस घोषणा से सारा देश सकते में आ गया। गांधीजी के निर्णय से देश के नेता भी अवाक् रह गए। जवाहरलाल नेहरू तक ने यह सोचा कि एक साधारण बात के लिए वे बहुत कठोर कदम उठा रहे हैं।

गांधीजी की उस घोषणा के दिन से उपवास शुरू करने तक यरवदा जेल में दर्शकों की भीड़ उमड़ पड़ी। अधिकारियों ने गांधीजी से मिलने के रास्ते खुले छोड़ दिए कि संभावित दुर्घटना टाली जा सके। लेकिन गांधीजी को अनशन से डिगाने के सारे सुझाव असफल हो गए।

टैगोर ने उन्हें तार भेजा—''भारत की एकता और उसकी सामाजिक एकरूपता के लिए अमूल्य जीवन उत्सर्ग कर देना उचित ही है। शोक में डूबे हुए हमारे हृदय आपकी इस अलौकिक तपस्या का आदर और स्नेह सहित अनुकरण करेंगे।''

गांधीजी ने 20 सितंबर, 1932 को उपवास शुरू कर दिया। पहले दिन सारे देश में प्रार्थनाएँ की गईं और उपवास रखे गए। अछूतों के लिए कई मंदिर खोल दिए गए। सारे भारत में अछूतोद्धार के लिए सभाएँ की गईं।

जेल से बाहर राजनीतिक सरगर्मी शुरू हो गई। हिंदुओं और अछूतों के नेता मिले। वे इस बात पर चर्चा करते रहे कि ऐसा समझौता कैसे किया जाए कि जिससे गांधीजी को संतोष मिल सके। सुझाव-पर-सुझाव दिए गए। लेकिन सब अस्वीकृत कर दिए गए। सबसे बड़े और समर्थ हरिजन नेता डॉ. भीमराव अंबेडकर गांधीजी से मिले और उन्हें विश्वास दिलाया कि वे ऐसा कोई हल जरूर ढूँढ़ेंगे, जिससे उनके जीवन की रक्षा हो सके।

उपवास का तीसरा दिन शुरू हुआ।

उनकी बिगड़ती हुई दशा से उनके मित्रों को विशेष चिंता होने लगी। वे बहुत कमजोर हो गए थे। उन्हें स्नानघर तक भी स्ट्रेचर पर ले जाना पड़ता था। आवाज क्षीण हो गई थी। रक्तचाप बढ़ता जा रहा था। अधिकारियों में आतंक छा गया।

उनकी पत्नी को बुला लिया गया और उनके सभी मित्रों व अनुयायियों को उनके साथ रहने की अनुमति दे दी गई।

भारतीय जनता हताश हो गई। गांधीजी की मृत्यु हो सकती है और फिर उनका कोई नेता नहीं रह जाएगा। दूसरे नेता भी हार गए, क्योंकि वे ऐसा कोई हल नहीं ढूँढ़ पाए, जिससे सहमत होकर गांधीजी उपवास तोड़ देते।

लेकिन उपवास के पाँचवें दिन हिंदू और अछूत नेताओं ने आखिरकार सहमति का रास्ता ढूँढ़ ही लिया। एक समझौते पर हस्ताक्षर हो गए, जिसके अनुसार पृथक् मताधिकार समाप्त किया जा सके।

लेकिन गांधीजी तब तक उसे कैसे मान सकते थे जब तक कि ब्रिटिश सरकार उसका अनुमोदन न कर दे।

समाचार मिले कि ब्रिटिश सरकार ने उस समझौते को स्वीकार कर लिया है। लेकिन गांधीजी ने तब भी उपवास नहीं तोड़ा। जब तक कि उस स्वीकृति के कागज को वह स्वयं न देख लें तब तक वे मान नहीं सकते थे।

जब गांधीजी उस स्वीकृति-पत्र की प्रतीक्षा कर रहे थे, टैगोर उन्हें देखने आए। गांधीजी की ऐसी कमजोर दशा देखकर कवि-हृदय विचलित हो उठा और गांधीजी के सीने पर सिर रखकर वे रो दिए।

तब तक ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति आ गई। गांधीजी उससे सहमत हो गए और वह लंबा उपवास समाप्त हुआ। गांधीजी बच गए।

सन् 1933 में गांधीजी जेल से छूटे। उसके कुछ समय बाद ही उन्होंने सामूहिक सविनय अवज्ञा आंदोलन स्थगित कर दिया। लेकिन उन्होंने सरकार की पाशविक नीतियों के विरुद्ध व्यक्तिगत रूप से सत्याग्रह करने की छूट दे दी।

अगले सात वर्षों तक गांधीजी जनता की सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए कठिन परिश्रम करते रहे। जवाहरलाल नेहरू और बहुत से नेता गांधीजी की नीति से सहमत नहीं थे।

नेहरू ने कहा, ''लेकिन मैं किसी 'जादूगर' को कोई सुझाव देने का दु:साहस कैसे कर सकता हूँ?''

और उस 'जादूगर' के प्रति नेहरू की भक्ति लगातार अटल बनी रही।

नमक सत्याग्रह के दिनों में सरकार ने साबरमती आश्रम छीन लिया था। इसलिए गांधीजी ने वर्धा के नजदीक सेवाग्राम में एक छोटा सा विश्रामगृह बना लिया। वह उनका मुख्य कार्यालय था।

सरकार ने जो नए सुधार लागू किए, भारतीय जनता ने उन्हें बहुत पसंद नहीं किया। लेकिन बहुत से लोग, जिनमें कांग्रेसी भी सम्मिलित थे, उन पर अमल करके देखना चाहते थे कि स्वराज की दिशा में कोई संभावना ढूँढ़ी जा सके।

सन् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया। ब्रिटेन और फ्रांस ने नाजी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। भारतीय नेताओं से परामर्श किए बिना ही ब्रिटेन ने घोषणा कर दी कि भारत युद्ध में मित्र देशों के साथ है।

गांधीजी की सहानुभूति ब्रिटेन के साथ थी, लेकिन उनका विश्वास था कि हिंसामात्र बुरी है। इस कारण युद्ध के लिए वे कुछ भी करने में असमर्थ थे। फिर भी, उन्होंने ब्रिटेन को नैतिक समर्थन दिया ही।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ब्रिटेन की सहायता करना चाहती थी और मित्र देशों की ओर से लड़ना भी चाहती थी, लेकिन एक स्वतंत्र राष्ट्र की हैसियत से। परंतु भारत को स्वतंत्रता दे देना विंस्टन चर्चिल और उनके शासन को हास्यास्पद लगा। वे नहीं चाहते थे कि उनकी किसी असावधानी के कारण भारत हाथ से निकल जाए। ब्रिटेन ने कांग्रेस के प्रस्तावित सहयोग को अस्वीकार कर दिया।

इसके विरोध स्वरूप कांग्रेस के सभी प्रांतीय मंत्रिमंडलों ने इस्तीफे दे दिए। सरकार ने प्रशासन हाथ में ले लिया और इस तरह से काम किया जाने लगा कि उससे उन्हें युद्ध में सहायता मिलती रहे। गांधीजी से सद्भावना और संयम का जो मंत्र नेताओं ने सीखा था, उसके बल पर उन्होंने सरकार के इस व्यवहार के प्रति किसी तरह की प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की।

लेकिन यूरोप की घटनाओं का भारत पर प्रभाव पड़ रहा था। कांग्रेस कार्यसमिति ने युद्ध के प्रति गांधीजी के दृष्टिकोण को पूरी तरह स्वीकार करने में अपने आपको असमर्थ पाया। वे उनके इस विचार से एकदम असहमत थे कि भारत की सुरक्षा सशस्त्र शक्ति पर निर्भर नहीं रहे।

सेवाग्राम में गांधीजी की कुटिया में बार-बार नेतागण मिले और अपनी यह इच्छा बतलाई कि अब कोई कदम उठाना ही चाहिए। अंत में एक प्रस्ताव सामने रखा गया कि सभी प्रांतीय सरकारें भारत की सुरक्षा के लिए ब्रिटिश सत्ता के साथ हो जाएँ। लेकिन सरकार ने उस प्रस्ताव को भी नामंजूर कर दिया।

सितंबर 1940 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक बंबई में बुलाई गई। ब्रिटेन ने भारत की आशाओं के सरासर विपरीत कार्य किया था। इसके विरोध-स्वरूप यह तय किया गया कि सत्ता के खिलाफ व्यक्तिगत रूप से सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरुआत की जानी चाहिए। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति अपना विरोध प्रदर्शित करने के लिए सभाएँ आयोजित करने का निर्णय भी लिया गया। उन दिनों ऐसी सभाओं पर रोक लगी हुई थी।

व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू करनेवालों में विनोबा भावे सर्वप्रथम थे। वे और उनका अनुकरण करनेवाले अन्य लोग भी गिरफ्तार कर लिये गए। नेहरू भी गिरफ्तार हो गए। कुछ महीनों में ही 30 हजार से ज्यादा कांग्रेसी जेल में बंद कर दिए गए।

केवल गांधीजी ही गिरफ्तार नहीं किए गए थे। उन्होंने अपना सारा समय सत्य और अहिंसा के प्रचार कार्य में लगा दिया था।

दिसंबर 1941 में सरकार ने सभी सत्याग्रहियों को रिहा कर दिया।

फिर सन् 1942 में जब जापान प्रशांत महासागर को पार करता हुआ मलाया और बर्मा तक आ गया तो ब्रिटेन ने भारत के साथ समझौता कर लेने की बात पर विचार किया। उन्हें डर था कि कहीं जापान भारत पर भी आक्रमण न कर दे।

जापान की ओर से हमले के भय के कारण गांधीजी ने भी सोचा कि उनकी शांतिवादी नीति कहीं भारत के भविष्य के आड़े न आ जाए। तब उन्होंने कामचलाऊ सरकार बनाने का प्रस्ताव रखा, जिससे भारत की सारी शक्ति हमलावर से युद्ध करने में सरकार के हाथ में रह सके। लेकिन उनका सुझाव अस्वीकृत कर दिया गया।

मार्च 1942 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल ने यह घोषणा की कि युद्ध मंत्रिमंडल ने भारत के लिए एक योजना पर स्वीकृति दे दी है। इसके लिए सर स्टेफर्ड क्रिप्स भारत जाकर यह संभावना खोजेंगे कि वहाँ के नेता इस योजना को स्वीकार करते हैं या नहीं और क्या वे जापान के खिलाफ भारत की सुरक्षा के लिए तन-मन से समर्पित होने को तैयार हैं।

सर स्टेफर्ड क्रिप्स 22 मार्च को दिल्ली आए। वे गांधी, नेहरू, आजाद, जिन्ना और सभी प्रसिद्ध नेताओं से मिले। उस समय तक जितनी आजादी की बात कही गई थी, क्रिप्स ने उससे अधिक के लिए आश्वासन दिया। उन्होंने यह भी कहा कि भारत चाहे तो युद्ध के बाद उसे संपूर्ण स्वतंत्रता भी दी जा सकती है। यदि यही प्रस्ताव एक साल पहले आता तो नेतागण इसे स्वीकार कर लेते, लेकिन उस समय वह अस्वीकृत कर दिया गया।

कांग्रेस नेता ऐसे किसी समझौते के लिए तैयार नहीं थे, जो आश्वासन पर आधारित हो। ब्रिटिश सरकार सत्ता देने के मामले में भारतीय जनता पर पूरी तरह विश्वास नहीं करती थी और इसी कारण भारतीय नेताओं ने भी उस पर विश्वास नहीं किया कि वह युद्ध के बाद उन्हें सत्ता सौंप देगी।

अगस्त 1942 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बंबई में हुई। उसकी अध्यक्षता मौलाना अबुल कलाम आजाद ने की। फिर से कामचलाऊ सरकार बनाने की माँग दोहराई गई।

''हम अपने देशवासियों को अपनी इच्छा प्रकट करने से अब अधिक रोक नहीं सकते।'' गांधीजी ने कहा, ''न ही हम लोग साम्राज्यवादी नीतियों के सामने झुक ही सकते हैं। अब समय आ गया है कि अंग्रेज देश छोड़कर चले जाएँ। उनके सरकारी नौकर, सेनाधिकारी, शासकीय पदाधिकारी आदि सभी अब भारत छोड़ दें।''

'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव तैयार किया गया और सरकार को प्रस्तुत करने के लिए वह पास भी कर दिया गया। जवाहरलाल नेहरू ने प्रस्ताव रखा था और अनुमोदन किया था सरदार पटेल ने।

बहुत बड़े पैमाने पर सामूहिक संघर्ष शुरू करने की बात प्रस्ताव में घोषित की गई थी।

बैठक की काररवाई को समाप्त करते हुए गांधीजी ने कहा, ''मैंने कांग्रेस से प्रतिज्ञा की है और कांग्रेस 'करने या मरने' के लिए प्रतिबद्ध है।''

सरकार ने जन-संघर्ष के शुरू होने की प्रतीक्षा नहीं की। रातोरात गांधीजी और देश के अन्य नेताओं को भी गिरफ्तार कर लिया गया। गांधीजी को पूना के आगा खाँ महल में भेज दिया गया। महादेव देसाई, कस्तूरबा, सरोजिनी नायडू और मीराबेन को बंद कर दिया गया।

लेकिन नेताओं के चले जाने से भारत चुप नहीं हो गया। 'करो या मरो' का नारा लोगों ने अपना लिया था। हर जगह प्रदर्शन किए जा रहे थे। सारे देश में हिंसक काररवाई फूट पड़ी थी। लोगों ने सरकारी इमारतें जला दीं। जो कुछ भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रतीक दिखाई देता, उसे ही नष्ट कर दिया जाता था।

आगा खाँ महल में नजरबंदी के शीघ्र बाद ही गांधीजी को एक दु:खद बिछोह सहना पड़ा। उनके विश्वासपात्र और योग्य सचिव महादेव देसाई की हृदय गति रुक जाने से मृत्यु हो गई।

गांधीजी ने कहा था, ''महादेव 'करो या मरो' के मंत्र को निभाते हुए ही जीवित रहा है। यह बलिदान भारत की स्वतंत्रता को और नजदीक लाएगा।''

सारे देश में हड़तालें हो रही थीं और उपद्रव फैल गए थे। वायसराय लिनलिथगो ने इसका सारा दोष गांधीजी के सिर मढ़ दिया। उन्होंने कहा कि गांधीजी ने हिंसा को निमंत्रण दिया है। लॉर्ड लिनलिथगो को लिखे अपने कई पत्रों में गांधीजी ने उन्हें समझाने की कोशिश की कि उन पर से यह आरोप हटा लिया जाए।

असफल होकर गांधीजी ने अपने खिलाफ लगाए गए गलत आरोपों के लिए सबसे बड़ी अदालत में अपील करने के लिए उपवास करने का निश्चय किया। फरवरी 1943 में गांधीजी ने 21 दिनों का उपवास किया। वह बहुत बड़ी परीक्षा थी; लेकिन वे बच गए।

कस्तूरबा ने सेवा-सुश्रूषा करके उन्हें फिर से स्वस्थ कर दिया, लेकिन उनका अपना स्वास्थ्य ही गिरता जा रहा था। वह हृदय रोग के दो दौरे सह चुकी थीं। गांधीजी ने उन्हें बचाने की सभी कोशिशें कीं, लेकिन कस्तूरबा की हालत खराब ही होती गई। आखिर एक दिन गांधीजी की गोद में शांतिपूर्वक उनकी मृत्यु हो गई।

कुछ सप्ताह बाद ही गांधीजी को मलेरिया हो गया। वे गंभीर रूप से बीमार हो गए। भारतीय जनता ने कहा कि उन्हें तत्काल रिहा किया जाए। अधिकारियों ने यह सोचकर कि वह मृत्यु-शय्या पर हैं, उन्हें और उनके साथियों को रिहा कर दिया। गांधीजी धीरे-धीरे स्वस्थ हो गए।

भारतीय स्वतंत्रता की माँग का सवाल अब सारी दुनिया का सवाल बन गया था। भारत की अपनी माँग तो थी ही, अमेरिका तथा दूसरे देशों ने भी ब्रिटेन पर दबाव डाला कि भारत को स्वतंत्रता दे दी जाए। लेकिन चर्चिल किसी के कहने पर झुके नहीं। भारत ब्रिटिश लोगों की संपन्नता के लिए सोने की चिड़िया था। चर्चिल किसी भी शर्त पर भारत को छोड़ने को तैयार नहीं थे। वह ब्रिटेन को इस संपन्नता से कैसे वंचित कर सकते थे!

जर्मनी के आत्म-समर्पण के बाद मई 1945 में ब्रिटेन में लेबर पार्टी के हाथ सत्ता आ गई। एटली प्रधानमंत्री बने। जापान के पराजित हो जाने के कुछ महीने बाद ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि जैसे ही भारत के घरेलू मामले सुलझ जाते हैं, वह उसको स्वराज दे देने की आशा करती है।

भारत के लिए यह उसकी विजय थी। यह अहिंसा की विजय थी। शांत-क्रांति से परास्त होकर ब्रिटेन भारत को अब अधिक समय तक अपने अधिकार में नहीं रख सकता था।

ब्रिटेन बगैर किसी कटुता के मित्रतापूर्ण वातावरण में योजना बनाकर भारत से हट जाने के लिए सहमत हो गया।

गांधीजी जीवन भर हिंदू-मुसलिम एकता के लिए कार्य करते रहे थे, लेकिन उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। कांग्रेस में बहुत से राष्ट्रीय विचारधारा के मुसलमान थे, लेकिन मुसलिम लीग के नेता धीरे-धीरे दूर ही होते चले गए।

गांधीजी निराश होनेवाले आदमी नहीं थे। वे समझौते की कोशिश में लगे रहे। दूसरी ओर, मुसलिम लीग के नेता मुहम्मद अली जिन्ना एकता के दुश्मन निकले। उन्होंने भारत को आजादी देने से पहले पृथक् मुसलिम राज्य बना देने की माँग रखी।

वायसराय ने सभी भारतीय नेताओं को शिमला बुलाया। उन्होंने हल ढूँढ़ने की कोशिश की कि हिंदू-मुसलिम एकता बनी रह सके। लेकिन जिन्ना किसी भी बात को माननेवाले नहीं थे। उन्होंने इसी बात पर जोर दिया कि पृथक् राज्य बनाया जाए और उसका नाम हो 'पाकिस्तान'।

इसके लिए ब्रिटेन ने चुनाव की घोषणा की और चुनाव हुआ भी। कांग्रेस ने अधिकांश गैर-मुसलिम सीटें और मुसलिम लीग ने मुसलिम सीटें जीत लीं। लेकिन गतिरोध बना रहा।

जिन्ना ने कहा, ''हम भारत की समस्या दस मिनट में सुलझा सकते हैं, अगर पाकिस्तान बनाने की बात मिस्टर गांधी मान जाएँ।''

गांधीजी ने व्यग्र होकर कहा, ''मेरे दो टुकड़े कर लो, लेकिन भारत के दो टुकड़े मत करो।''

लेकिन उनकी कौन सुनता!

फरवरी 1946 में ब्रिटिश शासन ने मंत्रिमंडल की ओर से एक मिशन भारत भेजा। लॉर्ड पैथिक लॉरेंस, सर स्टेफर्ड क्रिप्स और ए.वी. एलेक्जेंडर उस मिशन में थे। मिशन का काम यह था कि वह यहाँ की स्थिति का अध्ययन करे और यह सुझाव दे कि क्या किया जाना चाहिए। मंत्रिमंडल के इस मिशन ने सावधानीपूर्वक सारी स्थिति का अध्ययन किया और अपने वक्तव्य में यह सुझाव दिया कि ब्रिटिश सरकार को भारत छोड़ देना चाहिए। तब उनके मन में संयुक्त भारत की ही कल्पना थी।

24 अगस्त को वायसराय ने अपनी कार्यकारिणी समिति की जगह अंतरिम राष्ट्रीय सरकार बनाने की घोषणा कर दी।

जवाहरलाल नेहरू अंतरिम सरकार के उपाध्यक्ष थे।

मुसलिम लीग ने उसमें सम्मिलित होने से इनकार कर दिया, क्योंकि उसे सारे मुसलिम सदस्यों को नामजद करने का अधिकार नहीं दिया गया था।

अंतरिम सरकार बन जाने के बाद गांधीजी चाहते थे कि वह वर्धा के निकट अपने आश्रम सेवाग्राम चले जाएँ। लेकिन कांग्रेसी नेताओं ने उनसे कहा कि वे कुछ दिन दिल्ली में और रहें, क्योंकि उन्हें उनके सुझावों की आवश्यकता है। गांधीजी दिल्ली में रुक गए।

फिर मुसलिम लीग ने यह तय किया कि वह अंतरिम सरकार में सम्मिलित होगी और उसकी घोषणा 15 अक्तूबर, 1946 को कर दी गई। गांधीजी को फिर लगा कि अब वे सेवाग्राम लौट सकते हैं।

वे जब दिल्ली छोड़ने ही वाले थे कि बंगाल से दंगों के समाचार आए। कलकत्ता में तथा पूर्व बंगाल के मुसलिम बहुल नोआखाली जिले में मुसलमानों द्वारा सांप्रदायिक दंगे शुरू कर दिए गए थे। वहाँ हत्या, आगजनी, लूटपाट तथा जोर-जबरदस्ती से धर्म-परिवर्तन, विवाह और अपहरण की भरमार हो गई थी।

गांधीजी व्याकुल और दु:खी हो उठे। सेवाग्राम लौटने की बजाय वे शांति स्थापित करने के लिए नोआखाली के लिए चल पड़े।

सांप्रदायिक दंगे फैलते ही गए। बिहार और पंजाब में भी वैसे ही दंगे हुए। हजारों मारे गए और हजारों घायल हुए। इन घटनाओं से गांधीजी बहुत हताश हो गए। उन्होंने शांति स्थापित करने और लोगों को विश्वास दिलाने की कोशिश की।

शांति संदेश लेकर वे गाँव-गाँव और घर-घर घूमते रहे। वे जहाँ कहीं जाते वहाँ ऊपर से तो शांति दिखाई देती, लेकिन भारत की आम हालत खराब ही होती गई। ये दंगे शहरों और कस्बों के बाद गाँवों में फैलने लगे। बिहार में मुसलमान पीड़ित थे। वहाँ जाकर गांधीजी ने मुसलिम अल्पसंख्यकों को ढाढ़स दिलाया और उनके दु:ख में सहायता दी।

भारत की दशा इतनी खराब हो गई थी कि कांग्रेसी नेताओं के सामने जिन्ना की सलाह के अनुसार देश के विभाजन को स्वीकार कर लेने के अलावा और कोई रास्ता बाकी नहीं रह गया था। तब अनिच्छापूर्वक उन्होंने पाकिस्तान के निर्माण की बात मान ली।

नेहरू अपना निर्णय बतलाने के लिए गांधीजी से मिले।

गांधीजी ने पूछा, ''क्या कोई भी रास्ता नहीं निकल सकता? संयुक्त भारत की क्या कोई आशा नहीं रही?''

नेहरू उदास भी थे और गंभीर भी।

उन्होंने उत्तर दिया, ''बापूजी, एकता असंभव है। अपनी ही सीमाओं के भीतर एक अलग राष्ट्र की कल्पना भयानक है, लेकिन उसे स्वीकार करना ही होगा। नहीं तो ये विनाशकारी दंगे समाप्त नहीं होंगे।''

निराश होकर उन्होंने अपना सिर झुका लिया।

3 जून, 1947 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने विभाजन की घोषणा कर दी। कांग्रेस और मुसलिम लीग दोनों ने उसे स्वीकार कर लिया।

गांधीजी के लिए यह सब हार्दिक दु:ख पहुँचाने वाला था। अगाध दु:ख के साथ वे बोले, ''अब सारे भारत को पाकिस्तान के जन्म को स्नेहपूर्वक त्याग के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। हमारे पास कोई विकल्प नहीं रह गया है। अब हिंदू लोग भाईचारे के साथ समझौते के रास्ते पर चलें।''

अंतिम ब्रिटिश वायसराय लॉर्ड माउंटबेटन स्वतंत्र भारत और स्वतंत्र पाकिस्तान के निर्माण में देर नहीं करना चाहते थे। ब्रिटेन के लिए भारत छोड़ने की अवधि में भी उन्होंने कमी कर दी। भारत की स्वाधीनता घोषित करने की तारीख 15 अगस्त, 1947 तय कर दी गई।

इस प्रकार 15 अगस्त, 1947 को आजादी के लिए भारत की लंबी लड़ाई समाप्त हुई और दु:ख के दिन दूर हुए। एक नए राष्ट्र का जन्म हुआ, हालाँकि वह दो टुकड़ों में बँटा हुआ था।

लॉर्ड माउंटबेटन ने गांधीजी की प्रशंसा करते हुए कहा कि वे अहिंसा के माध्यम से भारत की स्वतंत्रता के निर्माता हैं।

गांधीजी ने कभी भी विभाजन के लिए सहमति नहीं दी थी, लेकिन जब विभाजन हो ही गया तो उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया और हिंदू-मुसलिम एकता के लिए वे हर संभव प्रयत्न करने लग गए। फिर भी, हिंदू-मुसलमानों में तनाव बढ़ता ही गया।

विभाजन के परिणामस्वरूप 7 लाख से अधिक हिंदू, सिख और पाकिस्तान में बसे गैर-मुसलमान पाकिस्तान के भय से अपने घर-बार छोड़कर सुरक्षा के लिए भारत आ गए। उसी संख्या में भारत में बसे मुसलमान हिंदुओं के भय से अपने घर छोड़कर पाकिस्तान के लिए चल दिए। इस सामूहिक देश-परिवर्तन का इतिहास में कोई उदाहरण नहीं। इसने अनंत विपत्तियों को जन्म दिया। एक देश से दूसरे देश जाने के रास्ते में कोई 15 लाख लोगों को भूख, बीमारी और कत्लेआम का जोखिम उठाना पड़ा।

गांधीजी पंजाब जाते हुए दिल्ली रुके कि यहाँ के दंगों और उपद्रवों की सुलगती आग को वह बुझा सकें। यहाँ वे दिल्ली के हिंदुओं का मुसलमानों के साथ अमानवीय दुर्व्यवहार देखकर चकित हो गए।

मुसलमानों के प्रति क्षमा और सहिष्णुता के उपदेश ने बहुतेरे अतिवादी कट्टर हिंदुओं की आँखों में गांधीजी को गद्दार बना दिया। मजहबी उन्माद में किए जा रहे उपद्रव को देखकर गांधीजी ने अपने शांति प्रयास दुगुने कर दिए। दिल्ली के प्रमुख उपद्रव तो शांत हो गए, लेकिन छिटपुट दंगे तब भी यहाँ-वहाँ होते रहे।

गांधीजी ने प्रायश्चित्त-स्वरूप उपवास करने का निर्णय लिया कि उससे धर्मांध हिंदू लोगों के रूप में अंतर आएगा।

उपवास शुरू हुआ 13 जनवरी, 1948 को।

इस उपवास के समाचार से सारे देश पर उदासी के बादल छा गए। लोगों को लग रहा था कि वे उपवास का दूसरा दिन भी नहीं सह सकेंगे। 78 वर्ष के वयोवृद्ध गांधी ने देश को विनाश से बचाने के लिए जब उपवास शुरू किया तो सारे विश्व की आँखें उन पर लगी हुई थीं।

18 जनवरी को एक शांति सभा बुलाई गई। उसमें सभी संप्रदाय के लोग थे। उन लोगों ने चर्चा की और अल्पसंख्यक मुसलमानों के प्रति आस्था तथा उनकी संपत्ति, उनके जीवन की रक्षा और एकता के लिए प्रतिज्ञा लेते हुए एक समझौते पर सबने हस्ताक्षर किए।

गांधीजी को इस प्रतिज्ञा की सूचना दी गई। उन्होंने उपवास तोड़ दिया।

गांधीजी बिड़ला हाउस में ठहरे हुए थे। हर शाम वे मैदान में प्रार्थना सभा किया करते थे।

20 जनवरी को उनकी प्रार्थना सभा में एक बम फेंका गया। लेकिन गांधीजी की प्रार्थना सभा चलती रही, जैसे कुछ हुआ ही न हो। निशाना चूक गया था।

किसी ने कहा, ''बापू, आपके पास कल बम फटा था।''

''क्या सचमुच?'' गांधीजी ने कहा, ''शायद किसी बेचारे पागल ने फेंका होगा। लेकिन उस ओर किसी को ध्यान नहीं देना चाहिए।''

30 जनवरी को दोपहर की नींद के बाद गांधीजी 3.30 बजे जागे। दिन भर मिलनेवाले आते रहे थे। सरदार पटेल उनसे मिलने 4 बजे आए थे। नेहरू और आजाद शाम की प्रार्थना के बाद आने वाले थे।

गांधीजी 5 बजे अपने कमरे से निकले और प्रार्थना सभा की ओर जाने लगे। वे अपनी पोती मनु और पोतबहू आभा के साथ खुली पगडंडी पर से गुजर रहे थे।

जैसे ही उन्होंने कदम बढ़ाया कि एक युवक उनके सामने इस तरह आया जैसे वह आशीर्वाद लेने आ रहा हो। लेकिन वह गांधीजी के ठीक सामने खड़ा हो गया और एक के बाद एक तीन गोलियाँ उसने दाग दीं। वे सारी गोलियाँ गांधीजी को लगीं।

गांधीजी गिर पड़े। वे जैसे प्रार्थना में बोल रहे हों, उन्होंने कहा, ''हे राम! हे राम!''

उनकी मृत्यु हो गई।

हत्या के समाचार से सारा संसार अवाक् रह गया।

नेहरूजी ने उनके निधन के समाचार सारे देश को दिए।

भावावेश में उनका गला रुँध गया था, ''मित्रो और साथियो, हमारे बीच से प्रकाश अस्त हो गया है और हर जगह अब अँधेरा-ही-अँधेरा है। मैं नहीं जानता कि आपको क्या कहूँ और किस तरह से कहूँ।

''हमारे प्रिय नेता, हमारे राष्ट्रपिता, हम जिन्हें प्यार से 'बापू' कहते थे, नहीं रहे। शायद मैं गलत कह रहा हूँ। परंतु हम सब उन्हें उस रूप में नहीं देख सकेंगे जिस रूप में वर्षों से देखते आए हैं।...

''मैंने कहा—प्रकाश अस्त हो गया, मेरा यह कहना भी गलत है; क्योंकि जो प्रकाश इस देश में जनमा था, वह साधारण प्रकाश नहीं था। जिस प्रकाश ने इस देश को अनेक वर्षों तक दीप्तिमान किया, वह इस देश को भविष्य में अनंत वर्षों तक प्रकाशित करता रहेगा। हजारों वर्ष बाद भी वह प्रकाश इस देश में प्रज्वलित रहेगा, सारा संसार उसे देख सकेगा और वह अनेक हृदयों को शांति प्रदान करता रहेगा।...''

❑

एक विलक्षण मैनेजमेंट गुरु

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को आमतौर पर स्वतंत्रता सेनानी के तौर पर याद किया जाता है। लेकिन कई विद्वानों ने उनके जीवन और उनकी विचारधारा के आधार पर उनके बहुआयामी व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं की पड़ताल करने की कोशिश की है। उन्हें पत्रकार, नेता, रणनीतिकार, समाज-सुधारक आदि के रूप में देखने की कोशिश होती रही है। उनके व्यक्तित्व के साथ प्रबंधन की जो खूबियाँ जुड़ी हुई हैं, उन्हें देखते हुए आज का कॉरपोरेट जगत् उन्हें एक 'विलक्षण मैनेजमेंट गुरु' के रूप में देखता है।

इस बात में कोई संदेह नहीं कि महात्मा गांधी एक महान् नेता थे। यह एक मानी हुई बात है कि प्रबंधकीय क्षमता के लिए नेतृत्व का गुण अनिवार्य होता है। महात्मा गांधी को हमेशा स्वयं पर और अपने अनुयायियों पर गहरा विश्वास था।

उन्हें पक्का यकीन था कि वे जो भी कदम उठाएँगे, उस कदम का उनके अनुयायी बेहिचक समर्थन करेंगे। लेकिन, उन्होंने कभी भी अपने अनुयायियों की अंध श्रद्धा का दुरुपयोग नहीं किया और जो भी कदम उठाया, काफी सोच-समझकर जिम्मेदारी के साथ उठाया। महात्मा गांधी के जीवन से वर्तमान युग के मैनेजर सीख सकते हैं कि किस तरह स्वयं पर और अपनी टीम पर भरोसा रखना चाहिए, साथ ही उन्हें यह भी समझना होगा कि अपनी क्षमता का प्रयोग करते समय अपनी जिम्मेदारी को हमेशा ध्यान में रखना होगा।

एक दक्ष प्रबंधक होने के साथ-साथ महात्मा गांधी एक विलक्षण रणनीतिकार भी थे। लोगों से संपर्क बनाने की उनकी क्षमता कमाल की थी और मीडिया के साथ भी उनका दोस्ताना संबंध था। उदाहरण के तौर पर हम, दांडी-यात्रा के प्रसंग की पड़ताल कर सकते हैं। अगर महात्मा गांधी चुपचाप दांडी पहुँच जाते तो उनकी सारी मेहनत बेकार हो सकती थी। वे अच्छी तरह जानते थे कि अपनी यात्रा का प्रचार-प्रसार बड़े पैमाने पर करते हुए वे अपने विचारों को जन-जन तक पहुँचा सकते थे और ब्रिटिश सरकार पर दबाव भी बना सकते थे। यही वजह थी कि उन्होंने मीडिया का ध्यान आकर्षित करते हुए अपने अनुयायियों के साथ दांडी-यात्रा की शुरुआत की थी। उन्हें मानव मनोविज्ञान की अच्छी जानकारी थी और वे जन-संपर्क के मामले में अपनी दक्षता का प्रयोग करना बखूबी जानते थे।

महात्मा गांधी के प्रपौत्र तुषार गांधी का कहना है कि महात्मा गांधी एक आदर्श मैनेजमेंट गुरु थे, जिन्होंने नए ब्रांडों का सृजन किया। उनके नेतृत्व में स्वदेशी आंदोलन शुरू होने के बाद ब्रांड के रूप में खादी के प्रति जनता की जागरूकता बढ़ती गई। उन्होंने विदेशी वस्तुओं की होली जलाने की प्रेरणा देते हुए खादी को 'सभी संप्रदायों का एकमात्र साधन' के रूप में प्रस्तुत किया। वे जनता के लिए हमेशा एक मंच तैयार करने में विश्वास रखते थे, ताकि लोग एक-दूसरे से जुड़ सकें और अपनी भलाई के लिए अपनी प्रतिभा का इस्तेमाल कर सकें। स्वदेशी, चंपारण और दांडी-यात्रा महात्मा गांधी के नेतृत्व में शुरू किए गए जागरूकता अभियान के ऐसे उदाहरण हैं, जिसके जरिए उन्होंने ब्रांडों के प्रति लोगों को आकर्षित किया।

वर्तमान युग के मैनेजरों के लिए महात्मा गांधी एक प्रेरक व आदर्श व्यक्तित्व की तरह हैं। महात्मा गांधी ने हमें सिखाया कि मैनेजर को किसी भी हालत में अपने आत्मविश्वास को कमजोर नहीं होने देना चाहिए और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मानसिक दृढ़ता को कायम रखना चाहिए। संसाधनों की कमी से वे सभी निराश नहीं हुए। वे जानते थे कि भारत को गुलाम बनानेवाले अंग्रेज तकनीकी साजो-सामान के साथ अत्यंत शक्तिशाली थे। इसीलिए परिस्थिति पर विजय प्राप्त करने के लिए उन्होंने खेल के बुनियादी नियम को ही बदल दिया। उन्होंने

हथियारों की ताकत पर भरोसा करने की जगह आम जनता के समर्थन की ताकत पर भरोसा किया। वे अनवरत नई-नई रणनीतियों की खोज करते रहे थे।

जिस तरह मैनेजरों को कंपनी के बाहर समस्याओं से जूझने के साथ-साथ कंपनी के अंदर भी चुनौतियों से जूझना पड़ता है, उसी तरह गांधीजी को भी कांग्रेस के भीतर के कुछ लोगों के विरोध और तिरस्कार का सामना करना पड़ा था। ऐसे कई लोग थे, जो अकसर उनकी योजनाओं के प्रति असहमति व्यक्त करते थे। ऐसे लोगों में जवाहरलाल नेहरू के पिता मोतीलाल नेहरू भी थे, जिन्होंने उन्हें एक लंबा पत्र लिखकर दांडी-यात्रा का विचार त्याग देने के लिए कहा था।

मोतीलाल नेहरू आशंकित थे कि दांडी-यात्रा नाकामयाब हो सकती थी और इसकी वजह से कांग्रेस को शर्मिंदगी का सामना करना पड़ सकता था। पत्र का जवाब महात्मा गांधी ने सिर्फ एक वाक्य लिखकर दिया —'करके देखो।' इससे जहाँ उनकी विलक्षण प्रबंधन क्षमता का परिचय मिलता है, वहीं प्रयोगधर्मिता के प्रति उनका दृढ़ आत्मविश्वास भी झलकता है। यह तो सभी जानते हैं कि उनकी दांडी-यात्रा को अपार सफलता मिली थी और ब्रिटिश सरकार हिलकर रह गईथी।

जहाँ महात्मा गांधी की प्रासंगिकता आज के विश्व में मैनेजमेंट गुरु के रूप में बढ़ गई है, वहीं कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिन्हें लगता है कि वर्तमान परिदृश्य में महात्मा गांधी के सभी सिद्धांतों को लागू कर पाना मुमकिन नहीं है। ऐसे लोगों का कहना है कि गांधीजी ने औद्योगिकीकरण का विरोध किया था और समाज पर पड़नेवाले इसके नकारात्मक परिणामों को लेकर लोगों को सावधान किया था। लेकिन ऐसा कहना उचित नहीं होगा कि गांधीजी पूरी तरह औद्योगिकीकरण के खिलाफ थे। वे पूँजीवादियों के दुश्मन भी नहीं थे। गांधीजी ने ट्रस्टीशिप की अनूठी अवधारणा समाज के सामने रखी थी।

यह अवधारणा पूँजीवादियों को प्रेरित करती है कि वे अपने धन के प्रति अपनी जवाबदेही को अच्छी तरह समझें और अपने धन का प्रयोग निर्धनों के उत्थान के लिए करें। ट्रस्टीशिप और कुछ नहीं, यह पूँजीवाद और साम्यवाद के बीच का रास्ता है। गांधीजी का मानना था कि अमीर जिस धन का अर्जन करते हैं, वे उस धन के न्यासी की तरह होते हैं और उन्हें अपने धन का इस्तेमाल समाज की भलाई के लिए करना चाहिए, ताकि समाज के निचले तबके के लोगों की मुश्किलें आसान हो सकें। यही कॉरपोरेट सामाजिक जिम्मेदारी का भी उद्देश्य है, जिसको लेकर आज के दौर में जागरूकता पैदा करने का प्रयास किया जा रहा है।

भारत सरकार के योजना आयोग के सदस्य के रूप में अपनी सेवा दे रहे बोस्टन कंसल्टिंग ग्रुप के अरुण मैरा का कहना है कि हम लोग अब तक पश्चिम के नेतृत्व का अंधानुकरण करने की कोशिश करते रहे हैं, लेकिन हाल के वर्षों में पश्चिम के ऐसे नेतृत्व पर भी सवालिया निशान लगाए गए हैं। इसलिए अब समय आ गया है कि भारत अपनी ही माटी के नेतृत्व की तरफ गौर करने की कोशिश करे। अगर महात्मा गांधी के नेतृत्व की शैली का प्रयोग कॉरपोरेट भारत में किया जाएगा तो संगठन के सबसे निचले पायदान का व्यक्ति भी खुद पर भरोसा रख पाएगा और संगठन के प्रति अपने योगदान की अहमियत को समझ पाएगा। गांधीजी का कार्य करने का तरीका ही ऐसा था कि उनके अनुयायी सीधे तौर पर लक्ष्य से जुड़ जाते थे।

एक मैनेजर के तौर पर महात्मा गांधी की भूमिका सचमुच असाधारण कही जा सकती है। उन्होंने दुनिया को सिखाया कि कंपनी का लक्ष्य वैयक्तिक हितों से काफी ऊपर होता है। बहुत कम लोगों ने इस बात को महसूस किया कि जब गांधीजी भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे, उस समय से विलक्षण प्रबंधकीय दक्षता का प्रयोग भी कर रहे थे। जिन लोगों ने ऐसी दक्षता को अपने जीवन में अपनाया, उन लोगों ने अपने-अपने क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलता हासिल की।

एक उदाहरण के तौर पर, हम विधु विनोद चोपड़ा की फिल्म 'लगे रहो मुन्ना भाई' की सफलता की चर्चा कर सकते हैं, जिस फिल्म का कथानक गांधीगीरी पर आधारित था। इस फिल्म को अनेक पुरस्कार मिले और देश-विदेश में इसे अपार लोकप्रियता हासिल हुई। पाँच दशक से ज्यादा समय गुजर गए, जब गांधीजी ने लोगों को सादगी और अहिंसा का संदेश दिया था। उनके जीते-जी जितने अनुयायी नहीं थे, उनके मरने के बाद आज तक उनके अनुयायियों और प्रशंसकों की संख्या में बेतहाशा बढ़ोतरी होती गई है। इतना ही नहीं, भारत और विदेशों के विश्वविद्यालय में गांधीजी की विचारधारा की पढ़ाई हो रही है। हार्वर्ड स्कूल ऑफ बिजनेस मैनेजमेंट ने तो उन्हें 'बीसवीं सदी का सर्वश्रेष्ठ मैनेजमेंट गुरु' घोषित कर दिया।

हॉर्ट माउथ में स्थित एक स्कूल ऑफ बिजनेस के विजय गोविंद राजन का कहना है, ''वर्तमान समय में कारोबार जगत् के नेताओं में जो भी खूबियाँ होनी चाहिए, वे सारी खूबियाँ गांधीजी के व्यक्तित्व में शामिल थीं। आज के दौर में चारों तरफ नकारात्मकता और विरोधाभास के दर्शन होते हैं। जरा एनरॉन, टाइको, वर्ल्डकॉम और हैवलेट पैकर्ड प्रकरणों को याद करके देखें। अब समय आ गया है कि कॉरपोरेट जगत् के नेता अपने जीवन में नैतिक आदर्शों को शामिल करें।''

माइंडट्री कंसल्टिंग के सी.ई.ओ. सुब्रतो बागची का कहना है, ''आधी शताब्दी पहले ही गांधीजी ने कह दिया था, अपने प्रतिद्वंद्वी का सम्मान करो। उन्होंने नैतिक लक्ष्यों का निर्धारण किया और अपरंपरागत स्रोतों से नए सबक सीखे। उन्होंने अपने विरोधियों का सम्मान किया और अपने आचरण में पारदर्शिता एवं सत्यनिष्ठा का प्रदर्शन किया। ये ऐसी खूबियाँ हैं, जो नेतृत्व के उच्च प्रदर्शन के लिए अनिवार्य हैं।''

भारत में एच. एस. बी. सी. की प्रमुख नैना लाल किदवई का कहना है कि जिस तरह मौजूदा समाज में गांधीजी के विचारों की प्रासंगिकता बनी हुई है, उसे देखते हुए उनकी महानता का अंदाजा लगाया जा सकता है। गांधीजी के सिद्धांतों को आसानी के साथ कारोबार की दुनिया में लागू किया जा सकता है। उनके अनेक ऐसे सिद्धांत हैं, जिन्हें व्यापारीगण अपनी सुविधा के अनुसार अपना सकते हैं। किदवई से जब गांधीजी के किसी प्रिय वाक्य को दोहराने के लिए कहा गया तो उन्होंने कहा, ''ग्राहक हमारे परिसर का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आगंतुक होता है।''

मैनेजमेंट विशेषज्ञों का मानना है कि जिस तरह कॉरपोरेट जगत् ज्यादा-से-ज्यादा गांधीवादी सिद्धांतों के प्रति आकर्षित हो रहा है, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि देश और कारोबारी जगत् के लिए यह शुभ संकेत की तरह है।

आई.आई.एस. के अध्यापक अनिल के. गुप्ते मानते हैं कि गांधीजी के विचारों को अपनाकर देशवासी आत्म-सम्मान के गुर सीख सकते हैं।

बजाज ऑटो के अध्यक्ष एवं सांसद राहुल बजाज का कहना है—''गांधीजी ने जमनालाल बजाज को अपना पाँचवाँ पुत्र बताया था। नेतृत्व की दक्षता के लिए अहिंसा का पाठ सर्वाधिक अनुकूल है। इसके साथ ही नैतिक होना जरूरी है। गांधीवादी सिद्धांतों को प्रशासन में शामिल करने की जरूरत है।''

❑

गांधीजी का ब्रांड चरखा

वैश्वीकरण के दौर में चरखे के व्यवसाय में उछाल के आँकड़े अविश्वसनीय एवं हास्यास्पद लग सकते हैं, लेकिन हकीकत को झुठलाया नहीं जा सकता। महात्मा गांधी के स्वरोजगार और स्वावलंबन के विचार का प्रतीक चरखा प्रौद्योगिकीय तकनीक और पाश्चात्य जीवन-शैली अपनाने की होड़ में हस्तक्षेप कर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है, यह हैरानी में डालनेवाली बात है। बाजार में चरखे की कामयाब दखल की खबर अहमदाबाद से है। यहाँ के साबरमती आश्रम के सचिव अमृत मोदी ने जानकारी दी है कि वित्तीय वर्ष 2010-11 में 3 लाख रुपए के चरखे बिके थे, वहीं 2011-12 में इनकी बिक्री बढ़कर 9 लाख रुपए हो गई। शायद इस बिक्री में उछाल की वजह यह है कि आज महात्मा गांधी को माननेवाले लोगों की संख्या दुनिया में बढ़ी है। महँगाई के मुश्किल और आजीविका की बढ़ती जटिलता के दौर में गांधी का अहिंसा, अपरिग्रह और सच्चाई का संदेश ज्यादा प्रासंगिक लग रहा है।

गुजरात के खादी ग्रामोद्योग मंडल ने सन् 2007-08 में 1.75 करोड़ रुपए के चरखे बेचकर एक कीर्तिमान स्थापित किया था। कुल मिलाकर चरखों की बिक्री लगातार बढ़ रही है, वह भी बिना किसी आधुनिक व्यावसायिक प्रबंधन के। ठेठ देशी संसाधनों से निर्मित इस उपकरण को माल बनाकर बेचने के लिए सुगठित अधढकी स्त्री देह का भी उपयोग नहीं किया गया। चरखे द्वारा खादी उत्पादन के सरोकार से जुड़ी यह खबर प्राकृतिक संपदा के यांत्रिक दोहन से लगातार असंतुलित हो रहे पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन को कायम रखने की दिशा में एक कारगर संकेत है; क्योंकि यांत्रिकीकरण, उपभोक्तावाद और बाजारवाद से उपजी भोगवादी प्रवृत्तियों ने सृष्टि को ही आसन्न संकटों के हवाले छोड़ दिया है। बढ़ते औद्योगिक उत्पादन के चलते जलवायु परिवर्तन और दुनिया में बढ़ते तापमान जैसे विनाशकारी अनर्थ पृथ्वी को प्रलय में बदलने के कारण गिनाए जा रहे हैं, उनसे निपटने में चरखा की अहम भूमिका सामने आ सकती है।

गांधीजी ने केंद्रीय उद्योग समूहों के विरुद्ध चरखे को बीच में रखकर लोगों के लिए यांत्रिक उत्पादन की जगह 'उत्पादन लोगों द्वारा हो' का आंदोलन चलाया था, जिससे एक बड़ी आबादीवाले देश में बहुसंख्यक लोग रोजगार से जुड़ें और बड़े उद्योगों का विस्तार सीमित रहे। इस दृष्टिकोण के पीछे महात्मा गांधी का उद्देश्य यांत्रिकीकरण से मानवमात्र को छुटकारा दिलाकर उसे सीधे स्वरोजगार से जोड़ना था, क्योंकि दूरदर्शी गांधीजी की अंतर्दृष्टि ने तभी अनुमान लगा लिया था कि औद्योगिक उत्पादन और प्रौद्योगिकी विस्तार में सृष्टि के विनाश के कारण अंतर्निहित हैं।

आज दुनिया के वैज्ञानिक अपने प्रयोगों से जल, थल और नभ को एक साथ दूषित कर देने के कारणों में यही कारण गिनाते हुए प्रलय की ओर कदम बढ़ा रहे इनसान को औद्योगिकीकरण घटाने के लिए आग्रह कर रहे हैं। लेकिन अभी इनसान की मानसिकता गलतियाँ सुधारने के लिए तैयार नहीं हो पाई है।

गांधीजी गरीब की गरीबी से कटु यथार्थ के रूप में परिचित थे। इस गरीबी से उनका साक्षात्कार उड़ीसा के एक गाँव में हुआ। वहाँ एक बूढ़ी औरत ने गांधीजी से मुलाकात की थी, जिसके पैबंद लगे वस्त्र बेहद मैले-कुचैले थे। गांधीजी ने शायद साफ-सफाई के प्रति लापरवाही बरतना महिला की आदत समझी। इसलिए उसे हिदायत देते हुए बोले, ''अम्मा, क्यों नहीं कपड़ों को धो लेती हो।''

बुढिया बेबाकी से बोली, ''बेटा, जब बदलने को दूसरे कपड़े हों, तब न धोकर पहनूँ।''

गांधीजी आपादमस्तक सन्न व निरुत्तर रह गए। इस घटना से उनके अंतर्मन में गरीब की दिगंबर देह को वस्त्र से ढकने के उपाय के रूप में 'चरखा' का विचार कौंधा। साथ ही उन्होंने स्वयं एक वस्त्र पहनने व ओढ़ने का

संकल्प लिया। देखते-देखते उन्होंने 'वस्त्र के स्वावलंबन' का एक पूरा आंदोलन ही खड़ा कर दिया। लोगों को तकली-चरखे से सूत कातने को प्रोत्साहित किया। सुखद परिणामों के चलते चरखा स्वनिर्मित वस्त्रों से देह ढकने का एक कारगर अस्त्र ही बन गया।

इधर वैश्विक अर्थव्यवस्था पैरोकार शासन-तंत्र कर्ज में डूबे और आत्महत्या कर रहे किसानों को उद्योग लगाने की सलाह देता है और खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश का मंत्र सुझाता है। यहाँ व्यावहारिक ज्ञान का संकट है। अब भला शासनतंत्र से कौन पूछे कि बदतर माली हालत के चलते आजीविका का संकट झेल रहा किसान बिना पूँजी और बिना किसी औद्योगिक स्थापना संबंधी ज्ञान के उद्योग कैसे लगाएगा। हाँ, चरखा चलाकर सूत कात सकता है, बशर्ते सरकार उसे खरीदने की गारंटी ले।

पिछले दो दशक के भीतर उद्योगों के सिलसिले में हमारी जो नीतियाँ सामने आई हैं, उनमें अकुशल मानव श्रम की उपेक्षा उसी तर्ज पर है, जिस तर्ज पर अठारहवीं सदी में अंग्रेजों ने ब्रिटेन में मशीनों से निर्मित कपड़ों को बेचने के लिए ढाका (बँगलादेश) के मलमल बुनकरों के हस्त उद्योग को हुकूमत के बल पर नेस्तनाबूद ही नहीं किया, उन्हें भूखों मरने के लिए भगवान् भरोसे छोड़ दिया। आज स्वतंत्र भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हित साधन को दृष्टिगत रखते हुए खुदरा व्यापार से मानव श्रम को बेदखल किया जा रहा है, वहीं विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाने के लिए कृषि भूमि हथियाकर किसानों को खेती से खदेड़ देने की मुहिम चल पड़ी है। जबकि होना यह चाहिए था कि हम अपने देश के समग्र कुशल-अकुशल मानव समुदायों के हित साधन का दृष्टिकोण सामने लाते।

गांधीजी की सोचवाली आर्थिक प्रक्रिया की स्थापना और विस्तार में न मनुष्य के हितों पर कुठाराघात होता है और न ही प्राकृतिक संपदा के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जबकि मौजूदा आर्थिक हितों के सरोकार केवल मुट्ठी भर लोगों के हित साधते हैं और इसके विपरीत मानव श्रम से जुड़े हितों को तिरस्कृत करते हैं। मानव समुदायों के बीच असमानता की खाई ऐसे ही उपायों से उत्तरोत्तर बढ़ती चली जा रही है।

चरखा और खादी परस्पर एक-दूसरे के पर्याय हैं। गांधीजी की शिष्या निर्मला देशपांडे ने अपने एक संस्मरण का उद्घाटन करते हुए कहा था—''नेहरू ने पहली पंचवर्षीय योजना का स्वरूप तैयार करने से पहले आचार्य विनोबा भावे को मार्गदर्शन हेतु आमंत्रित किया। राजघाट पर योजना आयोग के सदस्यों के साथ हुई बातचीत के दौरान आचार्य ने कहा कि ऐसी योजनाएँ बननी चाहिए, जिनसे हर भारतीय को रोटी और रोजगार मिले, क्योंकि गरीब इंतजार नहीं कर सकता। उसे अविलंब काम और रोटी चाहिए। आप गरीब को काम नहीं दे सकते, लेकिन गांधीजी का चरखा ऐसा कर सकता है। वाकई यदि पहली पंचवर्षीय योजना को अमल में लाने के प्रावधानों में चरखा और खादी को रखा जाता तो मौसम की मार और कर्ज का संकट झेल रहा किसान आत्महत्या करने को विवश नहीं होता।''

दरअसल आर्थिक उन्नति का अर्थ हम प्रकृति के दोहन से मालामाल हुए अरबपतियों-खरबपतियों की 'फोर्ब्स' पत्रिका में छप रही सूचियों से निकालने लगे हैं। आर्थिक उन्नति का यह पैमाना विकृत मानसिकता की उपज है, जिसका सीधा संबंध भोगवादी लोगों और उपभोगवादी संस्कृति से जुड़ा है, जबकि हमारे परंपरावादी आदर्श किसी भी प्रकार के भोग में अतिवादिता को अस्वीकार तो करते ही हैं, भोग की दुष्परिणति पतन में भी देखते हैं। अनेक प्राचीन संस्कृतियाँ जब उच्चता के चरम पर पहुँचकर विलासिता में लिप्त हो गईं तो उनके पतन का सिलसिला शुरू हो गया। मिस्र, रोमन, नंद और मुगल सभ्यताओं का यही हश्र हुआ। भगवान् कृष्ण के सगे-संबंधी जब दुराचार और भोग-विलास में संलग्न हो गए तो स्वयं भगवान् कृष्ण ने उनका अंत किया।

भूमंडलीकरण ने रोजगार के अवसर बढ़ाने की बजाय घटाए हैं। ऐसे में चरखे से खादी का निर्माण एक बड़ी आबादी को रोजगार से जोड़ने का काम कर सकता है। वर्तमान में 7,000 खादी लेआउट्स हैं। इनसे सालाना 50 करोड़ रुपए की खादी का निर्यात कर विदेशी पूँजी कमाई जाती है। यदि घरेलू स्तर पर ही बुनकरों को समुचित कच्चा माल और बाजार मुहैया कराए जाएँ तो खादी का उत्पादन और विपणन दोनों में ही आशातीत वृद्धि हो सकती है। इस तरह से बेरोजगारी की समस्या को एक हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। इस संदर्भ में गांधीजी कह चुके हैं कि भारत के किसान की रक्षा खादी के बिना नहीं की जा सकती है। गांधीजी की इस सार्थक दृष्टि का आकलन हम विदर्भ, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश और बुंदेलखंड में आत्महत्या कर रहे किसानों के प्रसंग से जोड़कर कर सकते हैं। भारत की विशाल आबादी मुक्त अर्थव्यवस्था से समृद्धिशाली नहीं हो सकती, बल्कि वैश्विक आर्थिकी से मुक्ति दिलाकर, विकास को समतामूलक कारकों से जोड़कर इसे सुखी और संपन्न बनाया जा सकता है। इस दृष्टि से चरखा एक सार्थक औजार के रूप में ग्रामीण परिवेश में ग्रामीणों के लिए एक नया अर्थशास्त्र रच सकता है।

❑

गांधी आज भी हैं!

कुछ समय पहले कहा जाता था कि गांधी के विचार सिर्फ किताबों तक सिमटकर रह गए हैं। नई पीढ़ी गांधी का सिर्फ नाम याद रखेगी। पर अब यह बात गलत साबित होती दिखाई दे रही है। आज जहाँ विश्व में हिंसा और आतंकवाद बढ़ रहा है, वहाँ गांधीवाद उसे खत्म करने के लिए एक प्रभावकारी विकल्प के रूप में उभरकर सामने आ रहा है। तकनीक से लेकर मैनेजमेंट तक गांधीजी के विचार उपयोगी साबित हो रहे हैं।

रामल्लाह में फिलिस्तीनी प्रधानमंत्री मोहम्मद अब्बास ने रिचर्ड एटेनबरो की फिल्म 'गांधी' में गांधी का किरदार निभानेवाले बेन किंग्स्ले के साथ 'गांधी' फिल्म देखी और फिलिस्तीन व इजरायल के बीच की समस्या को शांति से सुलझाने की बात की।

फिल्म 'लगे रहो मुन्ना भाई' में गांधी के विचारों से प्रभावित होकर लखनऊ में लोगों ने शराब की दुकानें बंद करवाने के लिए सबको गुलाब भेंट किए और शराबबंदी का आह्वान किया।

7 जनवरी, 2008 को नासिक की केंद्रीय जेल में एक कैदी लक्ष्मण तुकाराम गोले ने महात्मा गांधी की आत्मकथा 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' पढ़कर अपने अपराधों को कबूल कर लिया।

मिस्र के कई राजनीतिक दलों ने मिलकर गांधीवाद से प्रभावित होकर पूरी तरह अहिंसक 'काफिया' आंदोलन चलाया।

गांधीजी को अब दुनिया आशा की नजरों से देख रही है। उनके विचारों से पूरी दुनिया अपनी-अपनी समस्याओं का समाधान खोज रही है। उनके सत्य और अहिंसा के प्रयोग अपनाने में लोगों का रुझान तेजी से बढ़ रहा है। फिर चाहे वह तकनीक हो, लड़ाई हो या तीव्र प्रतिक्रिया, हर जगह गांधीजी का असर देखा जा रहा है। गांधीजी हमारे बीच नहीं हैं, पर उनकी बातें और सिद्धांत जीवंत हैं। ईमानदारी से अगर कहा जाए तो गांधीजी अभी जिंदा हैं—दुनिया के विचारों, कार्यों और बातों में।

युवाओं ने थामे अहिंसा के झंडे

आज हिंसा से त्रस्त पूरी दुनिया को अहिंसा ही एकमात्र रास्ता नजर आ रहा है। अनेक हिंसाग्रस्त इलाकों में युवा छात्र-छात्राएँ अहिंसा का प्रचार-प्रसार करने में जुटे हुए हैं। इसी का उदाहरण हैं 24 साल की अमेरिकी छात्रा रशेल कोटा। उन्होंने इजरायल की नीतियों के विरोध में गाजा पहुँचकर इजरायली सेना के समक्ष मानव शृंखला बनाई। वे खुद सेना के बुलडोजर के आगे खड़ी हो गईं।

जार्जिया की तलीबसी स्टेट यूनिवर्सिटी के छात्रों ने अहिंसक 'कामरा' आंदोलन चलाकर राष्ट्रपति एडवर्ड शेवरनात्जे को हटा दिया। यह आंदोलन 'गुलाबी क्रांति' के नाम से मशहूर हुआ। सर्बिया के राष्ट्रपति मिलोसेविक को हटाने के लिए यूक्रेन के युवाओं ने अहिंसक 'पोरा' आंदोलन चलाया और उन्हें सफलता मिली।

मैनेजमेंट गुरु के रूप में गांधीजी

आज मैनेजमेंट क्षेत्र के महारथी मान रहे हैं कि प्रबंधन के क्षेत्र में आनेवाले युवाओं के लिए गांधीजी, उनके सिद्धांतों और कार्यशैली को जानना जरूरी है। गांधीजी ने अंग्रेजों की गुलामी के दिनों में अपनी और देश की समस्याओं से निपटने के लिए जिस तरह से प्रबंधन की तकनीक का सहारा लिया, वह कमाल की है। गांधीजी ने देश को आजाद कराने के लिए चलाए गए आंदोलन के समय उपजी समस्याओं से लड़ने के लिए नए-नए तरीकों का इस्तेमाल किया—चाहे वह विदेशी कपड़ों की होली जलाना हो, सविनय अवज्ञा आंदोलन हो या फिर

वर्ष 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन। उनका हर काम नए तरीकों से लैस होता था। उनकी मदद से उन्होंने भारत को आजादी दिलाने में कामयाबी हासिल की।

आज भारत को दुनिया में सुपर पावर बनाने के लिए भी उन्हीं की तरह नए प्रयोग करने पड़ेंगे, क्योंकि वे तरीके आज भी प्रासंगिक हैं। उन्होंने परंपराओं को तोड़ा। उन्हें पता था कि अंग्रेजों के खिलाफ बल-प्रयोग की लड़ाई के बजाय आम लोगों के प्रतिकार की शक्ति का इस्तेमाल करना होगा। उन्होंने कभी संसाधनों के अभाव की शिकायत नहीं की। आज के युवाओं को भी अपने सीमित संसाधनों में ही सफलता को हासिल करना होगा।

मैनेजमेंट विशेषज्ञ व्यापार में गांधी की नैतिकता, ईमानदारी और सत्यता के गुणों को अपनाने की सलाह देते हैं। वे मानते हैं कि गांधीजी के नेतृत्व में कुछ खास बात थी। गांधीजी ने भारत की संस्कृति के अनुरूप ही आंदोलन चलाया। हमें भी प्रोडक्ट को समय, भाव और संस्कृति के अनुरूप ढालकर पेश करना होगा। गांधीजी अपने अनुयायियों की बात बहुत ध्यान से सुनते थे। इसलिए हमें भी अपने उपभोक्ता की समस्याओं को करीब से जानना चाहिए।

गांधीजी की नेतृत्व क्षमता गजब की थी। कल्पना कीजिए, अगर गांधीजी दांडी-यात्रा पर अकेले जाते तो उसका कोई खास असर नहीं होता। उन्होंने दांडी-यात्रा के लिए लोगों को अपने साथ जोड़ा। आज के युवाओं को गांधीजी की जन-संपर्क की इस खूबी को अपने जीवन में उतारना चाहिए।

सत्याग्रह भारत का सबसे पहला लोकप्रिय ब्रांड था। गांधीजी ने 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' में विज्ञापन दिया तथा लोगों से प्रस्तावित आंदोलन का नाम पूछा। उसमें लिखा था—नाम स्वीकार हुआ तो 'यंग इंडिया' का एक साल का अंक मुफ्त मिलेगा। एक गुजराती सज्जन ने आंदोलन का नाम 'सत्याग्रह' सुझाया, इस उदाहरण से छात्र सीख सकते हैं कि किस तरह नए उत्पाद की ब्रांडिंग की जाए और ब्रांडिंग के लिए जनता का फीडबैक कितना जरूरी है।

बोस्टन कंसल्टिंग ग्रुप के मुख्य कार्यकारी अधिकारी अरुण मारिया का कहना है कि व्यापार में हर किसी का सशक्तीकरण महत्त्वपूर्ण है—उत्पाद से लेकर उपभोक्ता तक। गांधीजी ने देश की सेवा के लिए भारत के लोगों को एक नया मंच दिया। हर व्यक्ति के लिए स्वतंत्रता-संग्राम में एक भूमिका तय की।

छाया गांधीगीरी का जादू

आज गांधीगीरी मात्र एक शब्द नहीं, आंदोलन बन गया है। मुन्ना भाई नामक किरदार ने जब 'लगे रहो मुन्नाभाई' में पहली बार इसका इस्तेमाल किया तो किसी ने सोचा नहीं होगा कि इस शब्द को इतनी शोहरत मिलेगी। इंटरनेट पर सबसे मशहूर वेबसाइट विकीपीडिया पर भी गांधीगीरी के विषय पर पृष्ठ प्रकाशित हैं।

चाहे पाकिस्तान हो या हिंदुस्तान, हर जगह लोग अपनी समस्याओं से निपटने के लिए गांधीगीरी का सहारा ले रहे हैं।

मुंबई सर्वोदय मंडल की न्यासी टी. आर. के. सौम्या का कहना है, ''देश भर की जेलों में अब कैदी गांधीजी की जीवनी की माँग कर रहे हैं। सर्वोदय मंडल की तरफ से महाराष्ट्र में जेल में रहनेवाले कैदियों के लिए 'गांधी शांति परीक्षा' का आयोजन किया जाता रहा है, ताकि कैदियों में भी गांधी और उनके काम के बारे में जागरूकता आ सके।''

निर्णय लेने की क्षमता

गांधीजी अपने सभी निर्णयों को सत्य की कसौटी पर कसकर देखते थे। दासता, अन्याय, दमन, हिंसा—इन सभी बुराइयों का वे विरोध करते थे और इन्हें असत्य का रूप मानते थे। किसी के लिए निजी जीवन का निर्णय

लेना एक बात हो सकती है और सामूहिक जीवन के लिए निर्णय लेना दूसरी बात हो सकती है। गांधीजी को एक बड़ी आबादी और एक बड़े आंदोलन के लिए निर्णय लेना पड़ रहा था। उनके निर्णय पर लाखों भारतीय नागरिकों का भाग्य और भारत की स्वतंत्रता का सवाल निर्भर कर रहा था।

इस अध्याय में गांधीजी की सुझाई गई कसौटी पर चर्चा की जा रही है। इनके जरिए लोकप्रिय नेतृत्व की प्रतिबद्धता, पारदर्शिता की असीम शक्ति का निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनके प्रयोग को समझा जा सकता है। इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में रुख कितना लचीला होना चाहिए और निर्णय लेने के लिए साहस का विकास किस तरह करना चाहिए।

सबसे निर्धन व्यक्ति को याद करें

''जब भी तुम्हें दुविधा महसूस हो, निम्नलिखित तरीके को आजमाओ।''

—अगस्त, 1947

एक अजनबी पत्र के लेखक ने गांधीजी से पूछा कि कठिन परिस्थितियों में दुविधा से उबरने के लिए उसे क्या करना चाहिए। गांधीजी ने उसे समाधान के रूप में एक चमत्कारी तरीका बताया। यह एक ऐसा कारगर तरीका है, जिसका प्रयोग किसी भी निर्णय या नीति का निर्धारण करते समय आसानी से किया जा सकता है। गांधीजी ने पत्र लेखक को सलाह दी—''जब भी दुविधा का अनुभव हो, तुम सबसे निर्धन और दुर्बल व्यक्ति के मुखड़े को याद करो, जिससे तुम पहले मिल चुके हो, फिर अपने आपसे पूछो कि तुम जो कदम उठाने जा रहे हो, क्या उसका कोई लाभ उस निर्धन व्यक्ति को मिल पाएगा?''

गांधीजी मानते थे कि किसी भी फैसले के दूरगामी प्रभाव का पहले से आकलन करना चाहिए और यह देखा जाना चाहिए कि कमजोर तबके के लोग उस फैसले से किस हद तक प्रभावित हो सकते हैं। गांधीजी की यह कसौटी मानवीय और विशिष्ट थी, यह महज विचारधारा का प्रतिरूप नहीं थी। गांधीजी मानते थे कि अगर किसी फैसले से समाज के सबसे कमजोर व्यक्ति की दशा में सुधार हो सकता है तो इसका मतलब है कि वैसे फैसले से समाज का प्रत्येक व्यक्ति लाभान्वित हो सकता है।

वैयक्तिक रूप से निर्णय लेने की प्रक्रिया के विकल्प के रूप में अकसर 'कंपनी की नीति' की दुहाई दी जाती है। अगर ग्राहक किसी तरह की शिकायत करता है तो उसकी शिकायत को नजरअंदाज करने के लिए 'कंपनी की नीति' का इस्तेमाल किया जाता है। इस तरह की नीति अपनाने से कंपनी की बदनामी होती है और उसे अनगिनत ग्राहकों से हाथ धोना पड़ता है। गांधीजी ने व्यक्तियों के संदर्भ में नीति का परीक्षण करने की सलाह दी थी। अगर बताई गई कसौटी पर कोई नीति खरी साबित होती है तो उसे अच्छी नीति का दर्जा दिया जा सकता है। अगर वह नीति कसौटी पर खरी साबित नहीं होती तो इसका अर्थ है कि नीति में परिवर्तन करने की आवश्यकता है। उन्होंने व्यक्तियों पर नीति को थोपने की कार्यशैली को खारिज कर दिया था।

लेनिन, माओत्से तुंग और स्तालिन जैसे नेता हमेशा नीति के लिए व्यक्ति को न्यौछावर करने के लिए तैयार थे। वैचारिक रूप से छेड़े गए युद्ध के समर्थन में स्तालिन ने कहा था, ''एक व्यक्ति की मौत ट्रेजडी कहलाती है, लाखों व्यक्ति की मौत सांख्यिकी कहलाती है।'' गांधीजी कभी भी अपनी नीति को सांख्यिकी का दर्जा देने के लिए तैयार नहीं थे, क्योंकि उनके लिए प्रत्येक मनुष्य के जीवन की अहमियत थी। एक रास्ता स्तालिन का है तो दूसरा रास्ता गांधी का। हमेशा इस बात को याद रखना चाहिए कि जो लोग आपके साथ कारोबारी रिश्ता रखते हैं, उन्हें भी विकल्प चुनने का अधिकार होता है।

नेतृत्व करनेवाला अकेला हो सकता है

''इस तरह की धारणा उचित नहीं है कि बहुसंख्यक के निर्णय को मानना अल्पसंख्यक की मजबूरी होती है।''

—'अहिंसक प्रतिरोध', हिंद स्वराज, 1909

कुछ सी.ई.ओ. निरंकुश होते हैं तो कुछ लोकतांत्रिक मिजाज के होते हैं। किसी तरह का अतिरेक होना नेतृत्व के लिए आदर्श गुण नहीं माना जा सकता। किसी भी संगठन के सदस्यों पर अधिकार थोपने का अर्थ है—उन्हें व्यक्ति की जगह कल-पुरजा समझ लेना। ऐसा करने पर जहाँ सदस्यों का मनोबल टूट सकता है, वहीं मानव संसाधन का समुचित उपयोग भी नहीं हो सकता। दो अधिकारियों के उदाहरण से हम इस बात को समझ सकते हैं। दोनों को समान वेतन दिया जाता है। एक अधिकारी अपनी प्रतिभा का 100 प्रतिशत प्रयोग करता है, दूसरा महज 10 प्रतिशत प्रयोग करता है। इनमें से कौन सा अधिकारी कंपनी के लिए अधिक मूल्यवान् समझा जाएगा? इसका उत्तर स्वयं-सिद्ध है। इतना तय है कि निरंकुश प्रबंधक अपनी मानव संपदा के मूल्यों के 90 प्रतिशत को न्योछावर कर देगा और अपनी मरजी से नीतियों व नियमों को लागू करेगा। वह किसी भी मामले में लचीले रुख का परिचय नहीं देगा। वह किसी भी कर्मचारी को वैयक्तिक रूप से अपनी प्रतिभा को व्यक्त करने या स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने की छूट नहीं देगा।

लोकतांत्रिक प्रबंधन का नेतृत्व संगठन के सदस्यों की मरजी पर आधारित होगा और उससे एक भिन्न प्रकार की गलती होगी, क्योंकि वह बहुमत की मरजी को ही सही मानने की भूल कर बैठेगा। क्या सभी कर्मचारियों को संतुष्ट रखना ही उसका उद्देश्य होना चाहिए? या किसी मुद्दे पर अल्पसंख्यकों की राय में तुलना में बहुसंख्यकों की राय को तरजीह देना उचित है?

अगर प्रबंधक के संदर्भ में पहला जवाब सही है तो हम यह पूछ सकते हैं कि कर्मचारियों को संतुष्ट रखना क्या किसी प्रबंधक का वैध लक्ष्य हो सकता है? क्या इस तरह मुनाफा हासिल किया जा सकता है, वह भी सर्वश्रेष्ठ तरीके से? इसका जवाब नकारात्मक ही होगा। अधिक वैध लक्ष्यों में ग्राहकों की संतुष्टि, गुणवत्ता युक्त वस्तुओं का उत्पादन और अंशधारकों के मूल्य में वृद्धि का उल्लेख किया जा सकता है। ये सारे ऐसे लक्ष्य हैं, जिनके जरिए उत्पादकता में बढ़ोतरी की जा सकती है, जो कर्मचारियों को प्रसन्न करने की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण बात हो सकती है।

किसी भी प्रतिष्ठान का विकास जब उत्पादक एवं लाभदायक संस्थान के रूप में किया जाता है तो कंपनी के सभी घटक—जिसमें कर्मचारी भी शामिल हैं, जिनकी जीविका कंपनी की सफलता पर निर्भर करती है—संतुष्ट होते हैं। इस तरह के मुनाफे को हासिल करने के लिए समय-समय पर सी.ई.ओ. को ऐसे फैसले लेने पड़ सकते हैं, जो उसके बहुसंख्यक कर्मचारियों की मरजी के प्रतिकूल भी हो सकते हैं।

इसका अर्थ स्पष्ट है। बहुसंख्यक के सामने सोच-विचार किए बिना आत्मसमर्पण कर देने में कोई समझदारी नहीं हो सकती। यह मानना भी उचित नहीं है कि अल्पसंख्यक की तुलना में बहुसंख्यक की राय ही हमेशा सही होती है। उदाहरण के तौर पर, हम पुराने जमाने की एक धारणा का उल्लेख कर सकते हैं, जब ज्यादातर लोग यही मानते थे कि पृथ्वी चपटी है।

लीडर को कोई भी फैसला लेने से पहले सभी पक्षों के हितों पर विचार कर लेना चाहिए। इसका अर्थ है कि उसे कभी-कभी अलोकप्रिय फैसले भी लेने पड़ सकते हैं। उसे बहुसंख्यक की राय को छोड़कर विशेषज्ञों की राय या अपने अनुभवों पर निर्भर रहना पड़ सकता है। अकसर कहा जाता है कि नेतृत्व करनेवाला अकेला होता है। इसका कारण आसान है—सटीक निर्णय की जिम्मेदारी एक व्यक्ति की अपनी जिम्मेदारी होती है।

पारदर्शिता की अहमियत

''कुछ भी गोपनीय तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। यह एक खुली जंग है। इस जंग में गोपनीयता एक पाप है।''

— 8 अगस्त, 1942 को कांग्रेस की बैठक को संबोधित करते हुए

आइडेंटिटी चोरी, ऑनलाइन धोखाधड़ी, पासवर्ड की चोरी और औद्योगिक जासूसी—कई व्यवसायों के लिए वर्तमान में सुरक्षा से संबंधित इस तरह की कई चुनौतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। व्यक्तियों की तरह व्यावसायिक प्रतिष्ठानों को भी प्रत्येक लेन-देन के मामले में एक हद तक गोपनीयता बरतना जरूरी होता है। लेकिन मैनेजमेंट की रणनीति के रूप में गोपनीयता का प्रतिकूल प्रभाव उत्पादकता पर पड़ता है। इसकी वजह से विश्वास डगमगा सकता है और संगठन के भीतर संदेह का वातावरण पैदा हो सकता है। इसके साथ ही कर्मचारियों का मनोबल भी कमजोर हो सकता है और संगठन के भीतर अपनी भूमिका को लेकर उनके मन में अनिश्चय की स्थिति पैदा हो सकती है।

इसके विपरीत, पारदर्शिता अपनाने से परस्पर विश्वास मजबूत होता है और संगठन के प्रत्येक सदस्य के मन में प्रतिबद्धता की भावना पैदा होती है। गांधीजी जो भी कदम उठाते थे, उसके बारे में अपने अनुयायियों को खुलकर बता देते थे। सविनय अवज्ञा के लिए उठाए गए उनके हरेक कदम की जानकारी उनके अनुगामियों को होती थी। अपनी लड़ाई में वे जिस पारदर्शिता का परिचय दे रहे थे, उसकी वजह से उनकी सफलता का मार्ग प्रशस्त होता चला गया था।

लेकिन क्या गोपनीयता से पूरी तरह मुक्त होना संभव हो सकता है?

संभवत: पूरी तरह ऐसा कर पाना संभव नहीं हो सकता। धोखाधड़ी से लेकर जासूसी तक कई ऐसे खतरे हैं, जिनसे बचाव करने के लिए कुछ क्षेत्रों में गोपनीयता बरतना अनिवार्य हो सकता है। कुछ क्षेत्रों में गोपनीयता सकारात्मक रूप से अपरिहार्य हो सकती है। उदाहरण के तौर पर, अनावश्यक विद्वेष और असंतोष को पनपने से रोकने के लिए ज्यादातर कंपनियाँ कर्मचारियों के वेतन के मुद्दे को गोपनीय बनाए रखना पसंद करती हैं और उन्हें एक-दूसरे के साथ वेतन की चर्चा नहीं करने की नसीहत देती हैं। लेकिन ऐसे कई संचालनात्मक क्षेत्र हैं, जहाँ वास्तव में गोपनीयता बरतने की कोई आवश्यकता नहीं होती।

बेहतर यही होगा कि आप अपनी नीतियों की समीक्षा करते हुए उन पहलुओं की पहचान करें, जहाँ पारदर्शिता का सहारा लिया जा सकता है। गोपनीयता पर आधारित नीतियाँ असल में सोच-विचार पर आधारित नहीं होतीं। हम सूचनाओं को सार्वजनिक करने का विवेकपूर्ण निर्णय लेने की जगह उन्हें गोपनीय बनाए रखना पसंद करते हैं। आप अपनी अपारदर्शी नीतियों और आदतों की वजह की पड़ताल कर सकते हैं। अगर वजह दमदार नहीं हो तो नीतियों को बदल डालें। ऐसी नीतियों को बदलकर आप बेहतर प्रदर्शन कर सकते हैं।

अपनी दृढ़ता को परिभाषित करें

मैं महान् उद्देश्यों के लिए भी अपनाई जानेवाली हिंसा का दृढ़ता के साथ विरोध करता हूँ। हिंसा की विचारधारा का मैं हरगिज समर्थन नहीं कर सकता।

—'यंग इंडिया', 11 दिसंबर, 1924

सन् 1917 की रूसी क्रांति के जरिए जार निकोलस द्वितीय को सिंहासन से उतार दिया गया और साम्यवादी सरकार का गठन किया गया। इस क्रांति के पीछे बोल्शेविक क्रांतिकारी थे। सन् 1924 में गांधीजी यह सूचना पाकर चिंतित हुए थे कि बोल्शेविक क्रांतिकारी अपने उद्देश्यों का समर्थन गांधीजी से करवाना चाहते थे। ''जो बोल्शेविक मित्र मेरा ध्यान आकर्षित करने की कोशिश कर रहे हैं, उन्हें यह समझना चाहिए कि भले ही मैं महान्

उद्देश्यों के प्रति सहानुभूति रखता हूँ, मगर मैं महान् उद्देश्यों के लिए भी अपनाई जानेवाली हिंसा का दृढ़ता के साथ विरोध करता हूँ।''

नेतृत्व करने के लिए समझौते करने की जरूरत होती है। जो नेता समझौते की संभावना के सभी दरवाजे बंद कर देता है और लचीले रुख का परिचय देने से इनकार कर देता है, उसे अपने उद्देश्य को हासिल करने में सफलता नहीं मिल सकती। इसके साथ-साथ यह भी जरूरी है कि प्रत्येक सी.ई.ओ. और प्रबंधक को उन क्षेत्रों की जानकारी होनी चाहिए, जहाँ वे किसी भी कीमत पर समझौता नहीं कर सकते। 'समझौता के लिए वर्जित' ऐसे क्षेत्रों की पहचान अहंकार के आधार पर या मनमाने तरीके से नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि संगठन की नीति और सिद्धांत के हक में ऐसा किया जाना चाहिए।

गांधीजी मानते थे कि पवित्र साध्य को हासिल करने के लिए अपवित्र साधन का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसे अपवित्र साधन पवित्र साध्य को भी भ्रष्ट बना सकते हैं। इसका अर्थ है कि वह बोल्शेविक क्रांति का हरगिज समर्थन नहीं कर सकते थे, क्योंकि उस क्रांति के लिए रक्तपात का सहारा लिया गया था। इसका अर्थ यह नहीं था कि वे बोल्शेविकों से सारे संबंध खत्म कर देना चाहते थे। वे अहिंसा के सिद्धांत के तहत अराजकतावादियों और हिंसा में विश्वास करनेवालों से भी संवाद स्थापित कर उन्हें सही रास्ते पर चलने की सलाह देना चाहते थे।

'समझौता के लिए वर्जित' अपने क्षेत्र में कभी समझौता न करें, मगर समझौता न करने का अर्थ संवाद की संभावना समाप्त कर देना न समझें।

अपनी बात मनवाने का साहस

''पिछले 20 सालों से हमने साहस नहीं खोने का सबक सीखा है, भले ही हमारी संख्या कम हो या लोग हमारा मजाक उड़ाएँ। हमने अपने विश्वास पर दृढ़ता के साथ अडिग रहना सीखा है।''

—8 अगस्त, 1942 को कांग्रेस की सभा में दिया गया भाषण

आपका काम आसान नहीं होता। आप उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर निर्णय लेना चाहते हैं। आप निर्णय लेने के लिए सूचनाओं, विशेषज्ञों की सलाह, अपनी बुद्धि, धारणा और अंतर्दृष्टि का सहारा लेते हैं। आप दूसरों के नजरिए को भी समझना चाहते हैं और संगठन के सदस्यों की सहमति भी चाहते हैं। आप न तो अविवेकी तानाशाह बनना चाहते हैं, न ही नासमझ लोकतांत्रिक नजर आना चाहते हैं। आप इस तरह की भ्रांति को बढ़ावा नहीं देना चाहते कि केवल आप ही सही हो सकते हैं; मगर आप बहुसंख्यक की राय की धारा में बहने के लिए भी तैयार नहीं होते।

जटिल व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के दूसरे लोगों की तरह गांधीजी को भी निर्णय लेने की प्रक्रिया में इस तरह की दुविधा से होकर गुजरना पड़ता था। उनके जीवनकाल में लोगों ने भारत के स्वशासन के अधिकार की उनकी माँग का विरोध किया था और स्वतंत्रता की माँग को लगभग नामुमकिन घोषित कर दिया था। अहिंसक प्रतिरोध के जिस तरीके को वे आजमा रहे थे, उसका मजाक उड़ाया गया था। जब इस तरह की कठिन चुनौती सामने हो तो संतुलन को कायम रख पाना आसान नहीं होता। जब सभी आपको गलत ठहराने की कोशिश कर रहे हों तो अपने विश्वास के प्रति अडिग रहना आसान नहीं होता। जब आप खुद को 'असहाय अल्पसंख्यक' की श्रेणी में अनवरत पाते हैं तो आप हताशा के गर्त में डूब भी सकते हैं। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति से निपटने के लिए गांधीजी ने 'दृढ़ता के साहस' को बनाए रखने की सलाह दी थी। यह दृढ़ता किसी भी लीडर के लिए अचूक हथियार साबित हो सकती है। इस औजार का उपयोग अच्छाई के लिए भी किया जा सकता है और बुराई के लिए भी

किया जा सकता है। जिस तरह बहुसंख्यक की धारा के विपरीत किसी वैध एवं मूल्यवान् धारणा पर दृढ़ता के साथ विश्वास बनाए रखने की जरूरत होती है, उसी तरह एक भ्रामक या विध्वंसक धारणा पर भी दृढ़ता के साथ विश्वास बनाए रखने की जरूरत पड़ सकती है। विचार पर दृढ़ता के साथ कायम रहने के लिए लीडर का दक्ष और सावधान होना जरूरी होता है। जिस तरह मूर्तिकार अपनी मूर्ति की कल्पना पहले से करते हुए छेनी व हथौड़े का इस्तेमाल कर मूर्ति तैयार करता है, उसी तरह लीडर को भी अपने उद्देश्यों और लक्ष्यों की स्पष्ट रूपरेखा तैयार करनी चाहिए।

संदेह साहस का दुश्मन होता है, मगर इसके जरिए निर्णय लेने की प्रक्रिया में सहायता मिल सकती है। जो कुशल निर्णय लेनेवाले लीडर होते हैं, वे निर्णय लेने की प्रक्रिया को तीन चरणों में विभाजित कर संदेह और साहस के बीच संतुलन कायम करते हैं।

पहले चरण में लीडर मुद्दे को लेकर विभिन्न नजरियों के साथ तथ्यों का संग्रह करते हैं। वे बहुसंख्यक की राय जानने के साथ-साथ अल्पसंख्यक की राय भी जान लेते हैं। वे आलोचना एवं असंतोष का स्वागत करते हैं और आलोचना करनेवाले को कभी दंडित नहीं करते। वे बहस करने के लिए तत्पर रहते हैं और विरोध का साहसपूर्वक सामना करते हैं। इस चरण में संदेह प्रमुख वाहक की भूमिका निभाता है।

दूसरे चरण में क्रम विकास की प्रक्रिया शुरू होती है। लीडर जुटाए गए तथ्यों और विचारों पर अच्छी तरह गौर करते हैं। इस चरण में वे परामर्श लेने के लिए अपने सूत्रों के पास नए सिरे से जा सकते हैं। इस चरण के अंत तक वे अपने निर्णय की रूपरेखा तैयार कर लेते हैं।

तीसरे चरण में निर्णय की घोषणा की जाती है। जरूरत पड़ने पर निर्णय की व्याख्या की जाती है और निर्णय को लागू कर दिया जाता है। इस चरण में लीडर संदेह को ताक पर रख देते हैं, जिस संदेह का लाभ वे पहले चरण में उठा चुके होते हैं और अपनी धारणा के प्रति दृढ़ता व्यक्त करते हैं। इस चरण में अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक विचारों में फर्क करने का अवकाश नहीं रह जाता। जैसे ही निर्णय तीसरे चरण में पहुँच जाता है, तब संदेह या असंतोष के लिए कोई जगह बची नहीं रहती। लीडर उत्साहपूर्वक निर्णय पर अमल करने के लिए कदम आगे बढ़ाता है और संगठन के सभी सदस्यों के सहयोग व समर्थन की अपेक्षा करता है।

समय को मददगार बनाएँ

''मैं अपेक्षा नहीं करता कि एक ही झटके में मेरे नजरिए को स्वीकार किया जाए।''

—हिंद स्वराज, 1909

कारोबारी संवाद डिजिटल रफ्तार से होता है। एक जमाना था, जब फोन कॉल्स का तुरंत जवाब देना जरूरी समझा जाता था, मगर अब वाइसमैन का चलन शुरू हो चुका है। ई-मेल और एस.एम.एस. को लटकाना आसान नहीं है। हमारे ऊपर अनवरत निर्णयों और सूचनाओं का दबाव बना रहता है। समय की किल्लत हर आदमी महसूस करता है। लोग हमसे तुरंत जटिल सवालों के जवाब की अपेक्षा रखते हैं। दूसरी तरफ, हम भी दूसरों से ऐसी ही अपेक्षा रखते हैं।

कारोबारी जगत् में जो असाधारण रफ्तार नजर आ रही है, उसके पीछे आधुनिक प्रौद्योगिकी का विशेष योगदान है। जिस जमाने में लंबी दूरी तक संवाद कायम करने का एकमात्र साधन पत्र होता था, तब प्रबंधक और सी.ई.ओ. के पास पर्याप्त बेशकीमती समय होता था। पत्र लिखने और भेजने की प्रक्रिया में पर्याप्त समय की आवश्यकता होती थी। प्रौद्योगिकी की दृष्टि से इस तरह की जो सीमा थी, उसकी वजह से पत्र लिखनेवाले को

सोचने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता था। डिजिटल प्रौद्योगिकी ने संवाद की गति को तीव्र बना दिया, मगर अतिरिक्त समय के लाभ से वंचित भी कर दिया।

जब कोई निर्णय अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो, तब संवाद की रफ्तार के साथ बह जाना उचित कदम नहीं माना जा सकता। कहावत है कि दुश्मन की तुलना में दोस्त हमेशा लाभदायक साबित होते हैं। इसीलिए समय को दुश्मन बनाने की जगह दोस्त बनाने में अधिक समझदारी है। गांधीजी ने अपने विचारों के समर्थन में जनमत तैयार करने और सामाजिक परिवर्तन करने के लिए समय को अपने मित्र की तरह इस्तेमाल किया। वे किसी तरह की जल्दबाजी में नहीं थे। वे चाहते थे कि लोग उनके विचारों पर आराम से मनन करें, बहस करें, असहमति जाहिर करें और अच्छी तरह समझने के बाद अपनाएँ। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में उन्होंने हमेशा समय का प्रयोग एक मित्र के रूप में किया।

वर्तमान युग में संचार क्रांति ने संवाद की प्रक्रिया को तीव्र बना दिया है। मगर हमें हमेशा याद रखना चाहिए कि प्रौद्योगिकी को विचारों के अधीन रहना चाहिए, विचारों को प्रौद्योगिकी के अधीन नहीं रहना चाहिए।

गांधीजी मानते थे कि भारत की समस्याओं का तत्काल समाधान करना जरूरी था। वे मानते थे कि होम रूल के बिना गुजरनेवाला एक-एक दिन भारत के लिए तकलीफ और अन्याय का दिन था, जब देशवासियों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। इसके बावजूद अपने संघर्ष को अंजाम तक पहुँचाने के लिए वे किसी तरह की जल्दबाजी में नहीं थे, क्योंकि वे सार्थक और ठोस परिणाम हासिल करने के लिए संघर्ष कर रहे थे। आज के दौर में ज्यादातर लोग समय कम होने की शिकायत करते हैं। ऐसे दबाव के चलते हम अपनी रचनात्मक क्षमता का ठीक से सदुपयोग नहीं कर पाते। वैसी स्थिति में हमारे मन में अपने ऊपर दबाव डालनेवालों के प्रति और समय के प्रति भी झुँझलाहट का भाव पैदा होने लगता है। ऐसी अनुभूतियाँ नकारात्मक परिणाम ही पैदा कर सकती हैं।

जो दक्ष सी.ई.ओ. होते हैं, वे झुँझलाने की जगह समय पर भरोसा रखते हैं। वे प्रौद्योगिकी का दास बनने की जगह उसका इस्तेमाल औजार के तौर पर करते हुए समय को नेतृत्व की प्रक्रिया में मददगार बना लेते हैं।

❑

गांधीजी के आर्थिक विचार आज के संदर्भ में

विश्व आज पर्यावरणीय विभीषिकाओं, आतंकवादी हिंसा, कुपोषण से होनेवाली मृत्यु से लेकर प्रचुरता से उत्पन्न समस्याओं का सामना कर रहा है। समूचा विश्व, चाहे वह समृद्ध उत्तर हो या विकासशील दक्षिण, एक अंधी दौड़ में लगा हुआ है। विश्व के मानचित्र पर एक-दूसरे से अनजान दो अलग-अलग प्रकार की दौड़ हो रही है। एक दौड़ उन लोगों की है, जो संपन्न हैं, पर कुछ और पाने की लालसा लिये दौड़ में लगे हैं। दूसरी दौड़ उन लोगों की है, जो दो जून की रोटी के लिए, अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए जूझ रहे हैं। ऐसे ही लोगों के लिए गांधीजी के विचारों—'अपरिग्रह' और 'स्वराज' का महत्त्व बढ़ जाता है। गांधीजी का विचार था कि इन सिद्धांतों के फलस्वरूप प्रत्येक राज्य सत्ता से स्वतंत्र होकर अपने जीवन पर नियंत्रण कर सकेगा। साथ ही, गाँव और ग्रामसभाएँ आत्मनिर्भर व स्वावलंबी हो सकेंगी।

लगभग एक शताब्दी पहले गांधीजी ने कहा था कि ''हमारी धरती के पास प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता के लिए तो बहुत कुछ है, पर किसी के लालच के लिए कुछ नहीं।''

इस बात में कोई संदेह नहीं कि उनके ये विचार आज भी प्रासंगिक हैं।

गांधीजी का मंत्र था कि जब भी कोई काम हाथ में लो, यह ध्यान में रखो कि उससे सबसे गरीब और कमजोर व्यक्ति को क्या लाभ होगा। यदि हम स्वराज के व्यापक लक्ष्य को प्राप्त करना और समावेशी विकास चाहते हैं तो हमें गांधीजी के इस मंत्र को अपने जीवन का आदर्श बनाना होगा।

मानवमात्र की खुशी ही गांधीजी की मूल कसौटी थी। उनका विचार था कि प्रगति को मानवीय प्रसन्नता के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। वे समृद्ध समाज के ऐसे आधुनिक दृष्टिकोण में विश्वास नहीं करते थे, जिसमें भौतिक विकास को ही प्रगति की मूल कसौटी माना जाता है। वे बहुजन सुखाय-बहुजन हिताय और सर्वोदय के सिद्धांतों में विश्वास करते थे। स्वराज के बारे में उनकी संकल्पना एक ऐसे समाज के बारे में थी, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को सम्मानपूर्वक जीवन बिताने और विकास के लिए समान अवसर उपलब्ध हों। उन्होंने एक ऐसे समाज का विचार किया, जिसमें आर्थिक प्रगति और सामाजिक न्याय हाथ से हाथ मिलाकर चल सकें।

प्रसिद्ध गांधीवादी और पूर्व प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने अपने एक लेख 'गांधीजी और व्यक्ति की नियति' में लिखा है कि गांधीजी ने शारीरिक बल या सैन्य शक्ति के मुकाबले में खड़े मनुष्य की अजेय आत्मा की शक्ति से विश्व का परिचय कराया था। उन्होंने भौतिक मूल्यों के विरुद्ध नैतिक मूल्यों की शक्ति तथा स्वार्थ और लालच के विरुद्ध सेवा एवं त्याग की शक्ति का परिचय कराया। उन्होंने हमें सत्य के सौंदर्य और मानवीय आत्मा की उत्कृष्टता का पाठ पढ़ाया।

गांधीजी न तो भौतिक समृद्धि के विरुद्ध थे और न ही उन्होंने सभी परिस्थितियों में मशीनों के उपयोग को नकारा। उनका कहना था कि मशीनों से सभी के समय और श्रम में बचत होनी चाहिए। वे नहीं चाहते थे कि मनुष्य मशीनों का दास बनकर रह जाए या वह अपनी पहचान ही खो दे। वे चाहते थे कि मशीनें मनुष्य के लिए हों, न कि मनुष्य मशीन के लिए हो।

गांधीजी ने कहा था, ''आर्थिक समानता अहिंसक स्वतंत्रता की असली चाबी है। शासन की अहिंसक प्रणाली कायम करना तब तक संभव नहीं है जब तक अमीरों और करोड़ों भूखे लोगों के बीच की खाई बनी रहेगी। नई दिल्ली के महलों और श्रमिकों एवं गरीबों की दयनीय झोंपड़ियों के बीच समानता स्वतंत्र भारत में एक दिन भी नहीं टिक पाएगी; क्योंकि स्वतंत्र भारत में गरीबों को भी वही अधिकार होंगे, जो देश के सबसे अमीर आदमी को प्राप्त होंगे।''

आजकल अत्यधिक उपभोग की अवधारणा को जिस तरह बढ़ावा दिया जा रहा है और अपनाया जा रहा है, वह समस्त मानव समाज को उपलब्ध नहीं हो सकता और जहाँ यह उपलब्ध भी है, वहाँ भी लोग कोई ज्यादा खुश और स्वस्थ नहीं हैं। इससे अलग प्रकार के सामाजिक संकट और विकार पैदा हुए हैं।

इसके अलावा, इससे पृथ्वी की पारिस्थितिकी और पर्यावरण विनाश के कगार पर आ खड़े हुए हैं। यह एक और गंभीर चिंता का विषय है।

❑

प्रबंधन कला और महात्मा गांधी

दुनिया भर के कारोबारी जगत् के अग्रणी नेताओं ने एक मत से स्वीकार कर लिया है कि भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी मैनेजमेंट के विलक्षण गुरु थे और उनके बताए गए रास्ते पर चलकर कारोबार को कामयाब बनाया जा सकता है। भारत की स्वतंत्रता के लिए आंदोलनों का नेतृत्व करते हुए गांधीजी ने मैनेजमेंट की जो ठोस परिस्थितियाँ तैयार की थीं, वे आज के कॉरपोरेट जगत् के लिए भी अत्यंत उपयोगी साबित हो सकती हैं। वर्तमान समय में गांधीजी को केवल राजनेता के रूप में नहीं देखा जा रहा है, बल्कि मैनेजमेंट गुरु के रूप में उनका पुनराविष्कार किया जा रहा है। उन्हें एक दक्ष रणनीतिकार और असाधारण नेता के रूप में देखा जा रहा है तथा कारोबारी जगत् के हितों के लिए उनके विचारों को अचूक मंत्र माना जा रहा है। भारत के साथ ही दुनिया के विभिन्न देशों में गांधी के विचारों के प्रति लोगों का आकर्षण बढ़ता जा रहा है।

ग्रो टैलेंट इंडिया कं. लि. की कंसल्टिंग सर्विसेज के वाइस प्रेसीडेंट शहबीर मर्चेंट का कहना है, ''गांधीजी के जीवन से कॉरपोरेट जगत् के लिए अचूक रणनीतियों के रूप में दृष्टि (भारत की स्वतंत्रता) और मूल साधन (ईमानदारी व अहिंसा) की प्रेरणा ली जा सकती है।'' एक दक्ष योजनाकार के तौर पर गांधीजी इस तरह की दृष्टि तैयार करना जानते थे, जिसके साथ जनता आसानी के साथ जुड़ जाती थी।

नेतृत्व कला को मैनेजमेंट का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू माना जाता है। इस मामले में गांधीजी का कोई जवाब नहीं था। उन्होंने स्वयं को जनसाधारण का हिस्सा बना लिया था। उन्होंने आम आदमी की तरह वेशभूषा अपनाई थी और उनकी जीवन-शैली भी आम लोगों जैसी ही थी। ऐसा करते हुए उन्होंने आम भारतीयों का विश्वास और सम्मान हासिल कर लिया था।

लाखों भारतीय उनकी पुकार सुनकर उनका अनुसरण करने के लिए तैयार हो जाते थे। उनके आह्वान पर लोग खादी के वस्त्र तैयार करने लगे, विदेशी कपड़ों की होली जलाने लगे और कानून को तोड़ते हुए नमक बनाने लगे। आम जनता ने अहिंसा का पालन करते हुए पुलिसिया दमन का सामना किया, कारावास में रहना मंजूर किया। गांधीजी ने अपने उद्देश्यों को हासिल करने में जिस तरह सफलता हासिल की, जिस तरह सत्याग्रह को अस्त्र बनाकर उन्होंने विदेशी शासक को झुकने के लिए मजबूर कर दिया, जिस तरह उन्होंने अपने आंदोलन की योजना बनाई और उन पर अमल किया, उनको देखते हुए बिना शक कहा जा सकता है कि उन्हें मैनेजमेंट की दक्षता हासिल थी।

गांधीजी ने देश के दूर-दराज के इलाकों की यात्राएँ कीं। यात्राओं के जरिए वे स्वतंत्रता के अपने लक्ष्य को जन-जन के हृदय तक पहुँचाना चाहते थे। मौजूदा दौर के कॉरपोरेट जगत् के नीति-नियंता गांधीजी से सबक सीख सकते हैं कि अपने संगठन का कायाकल्प करने की योजना तैयार करते समय उन्हें भविष्य के बारे में सोचना चाहिए और अपनी योजना को साकार करने के लिए ठोस मूल्यों को निर्धारित करना चाहिए। उन्हें गांधीजी की तरह अपनी दृष्टि को अपने सहकर्मियों के साथ बाँटना चाहिए।

अधिकतर कॉरपोरेट योजनाएँ बोर्ड रूम की चारदीवारी के भीतर सोची जाती हैं और उन्हें अंतिम रूप दिया जाता है। जो कर्मचारी परिवर्तन के वास्तविक वाहक होते हैं, उन्हें योजना की प्रक्रिया में शामिल करने की जरूरत महसूस नहीं की जाती। मर्चेंट का कहना है, ''हर तरह के परिवर्तन के लिए जरूरी है कि भविष्य की योजना के बारे में सभी कर्मचारियों को अवगत कराया जाए और मूल्यों को अच्छी तरह परिभाषित किया जाए।''

गांधीजी की सबसे बड़ी खूबी यह थी कि वे आसानी से लोगों के साथ घुल-मिल जाते थे। रैलियों, धरना, पदयात्राओं और अहिंसक प्रतिरोध के कार्यक्रमों में गांधीजी जनसाधारण से जुड़ने के लिए चलते-चलते बातचीत

करने का तरीका अपनाते थे। मर्चेंट का कहना है, ''सी.ई.ओ. को अपने मातहतों के साथ लागत घटाने और फिजूलखर्ची रोकने की बात करने के बाद बिजनेस क्लास में यात्रा नहीं करनी चाहिए, न ही पाँच-सितारा होटलों में ठहरना चाहिए। परिवर्तन प्रबंधन के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए सी.ई.ओ. को अपनी कथनी और करनी के बीच समानता रखनी चाहिए।''

अरिंदम चौधरी ने अपनी पुस्तक 'काउंट योर चिकंस बिफोर दे हैच' में गांधीजी की नेतृत्व कला पर विस्तार से रोशनी डालते हुए लिखा है कि किस तरह गांधीजी के सिद्धांतों पर कॉरपोरेट जगत् अमल कर सकता है। उन्होंने लिखा है कि गांधीजी के नेतृत्व की शैली 'अनुयायियों पर केंद्रित' थी। वे रणनीति तैयार करने से पहले परिस्थिति का विश्लेषण करना जरूरी समझते थे।

''गांधीजी ने परिस्थितियों के आधार पर नेतृत्व की शैली निर्धारित करने का उदाहरण सामने रखा था। जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में थे, तब उन्होंने सूट और टाई पहनकर अपना आंदोलन शुरू किया था। वे जब भारत आए तो उन्होंने खादी को अपनाकर बड़े पैमाने पर अहिंसक आंदोलन की शुरुआत की।''

भारत में कॉरपोरेट मैनेजमेंट के क्षेत्र में गांधीजी को एक आदर्श के रूप में देखा जा रहा है। भारत में जनमे मैनेजमेंट गुरु सी.के. प्रह्लाह का कहना है कि भारतीय कॉरपोरेट जगत् को नए सिरे से गांधीजी के विचारों पर गौर करना चाहिए। गांधीजी के नेतृत्व के अनुभव से सबक लेकर कॉरपोरेट जगत् नेतृत्व के क्षेत्र में काफी लाभान्वित हो सकता है।

नई दिल्ली में प्रवासी भारतीय दिवस पर आयोजित कार्यक्रम को संबोधित करते हुए सी.के. प्रह्लाद ने कहा, ''गांधीजी के विचार वर्तमान भारत के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक हैं, क्योंकि भारत सकल घरेलू उत्पाद के मामले में 8-10 फीसदी विकास दर हासिल करने के लिए प्रयत्न कर रहा है। मैं नहीं जानता कि 10 फीसदी विकास दर हासिल कर पाना किस तरह मुमकिन हो सकता है या किस तरह हर साल एक करोड़ रोजगार का सृजन किया जा सकता है। मगर हमारा लक्ष्य यही नहीं होना चाहिए। हमें नए मार्गों की खोज करनी चाहिए और ऐसा करना हमें गांधीजी ने सिखाया है—लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए। हमें साहस के साथ साधनों की खोज नए सिरे से करनी चाहिए।''

जब सभी प्रचलित विधियाँ नाकाम साबित हो रही थीं, तब गांधीजी ने हालात का सामना करने के लिए नई विधियों की खोज की थी। ''उन्होंने परंपराओं को तोड़ा था। वे जानते थे कि अंग्रेजों के साथ बल-प्रयोग के जरिए मुकाबला नहीं किया जा सकता। इसीलिए उन्होंने लड़ने के तरीके को बुनियादी रूप से बदलने का निर्णय लिया। उन्होंने आम जनता की शक्ति का सामूहिक रूप से प्रयोग करने की रणनीति बनाई। उन्होंने देश भर के नागरिकों को स्वतंत्रता के लक्ष्य को हासिल करने के लिए एकजुट होकर संघर्ष करने की प्रेरणा दी। संस्थाओं की किल्लत से उन्होंने कभी परेशानी महसूस नहीं की। उन्होंने 'पूर्ण स्वराज' के लक्ष्य पर अपना ध्यान केंद्रित रखा। इस तरह उन्होंने जनता को प्रेरित करने की रणनीति को अंजाम दिया।'' प्रह्लाद ने कहा।

'स्मार्ट मैनेजमेंट' की प्रबंधक संपादक डॉ. गीता पीरामल का मानना है कि गांधीजी असाधारण रणनीतिकार, नेता और शोमैन थे। उनका जन-संपर्क प्रभावशाली था और मीडिया के साथ उनके बेहतर संबंध थे।'' उदाहरण के तौर पर, दांडी मार्च को देखा जा सकता है। अगर गांधीजी अकेले उस यात्रा पर निकलते तो उसका वांछित परिणाम सामने नहीं आ सकता था। वे जानते थे कि उन्हें एक ऐसा कार्यक्रम करना है, जिसका प्रचार पूरी दुनिया में हो। यही वजह है कि उन्होंने अनुयायियों को अपने साथ लेकर यात्रा निकाली और अपनी लोकप्रियता का इस्तेमाल अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए किया। मानव मनोविज्ञान की उन्हें गहरी समझ थी और जनता के साथ संबंध कायम करने के लिए वे अपनी इस क्षमता का सशक्त तरीके से इस्तेमाल करते थे।''

गांधीजी के प्रपौत्र तुषार गांधी का कहना है, ''गांधीजी मैनेजमेंट गुरु थे। उन्होंने अपने ब्रांडों का सृजन किया था। स्वदेशी आंदोलन के जरिए उन्होंने खादी को लोकप्रिय बनाया था और विदेशी वस्त्रों की होली जलाकर स्वदेशी को विकल्प के रूप में अपनाने की प्रेरणा दी थी। वे आम लोगों को एक-दूसरे से जुड़ने के लिए मंच तैयार करते थे और फिर लोगों की क्षमता का प्रयोग अपने आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए करते थे। स्वदेशी, चंपारण और दांडी मार्च ऐसे उदाहरण हैं, जिनसे हम गांधीजी की अद्‌भुत योजना बनाने और फिर कार्यान्वयन करने की उनकी दक्षता को समझ सकते हैं।''

गांधी शांति प्रतिष्ठान के एक कार्यक्रम में अपने प्रपितामह के बारे में भाषण देते हुए तुषार गांधी ने कहा कि जब गांधीजी ने दांडी-यात्रा की योजना बनाई थी, तब कांग्रेस के वरिष्ठ सहयोगियों ने उनकी इस योजना का विरोध किया था। जब गांधीजी ने दांडी-यात्रा करने और नमक बनाने की घोषणा की थी, तब ब्रिटिश सरकार को उनकी यह घोषणा हास्यास्पद लगी थी। ब्रिटिश सरकार ने सोचा था कि यह एक मजाकिया तमाशा होगा। यही सोचकर सरकार ने यात्रा को रोकने का कोई निर्णय नहीं लिया था। कांग्रेस के कई नेता इस योजना से सहमत नहीं थे। मोतीलाल नेहरू ने पत्र लिखकर गांधीजी से अनुरोध किया था कि वे अपनी इस योजना को स्थगित कर दें, क्योंकि यह योजना सफल नहीं होने वाली थी और नाकामी के चलते कांग्रेस को शर्मिंदगी का सामना करना पड़ सकता था। पत्र का जवाब गांधीजी ने महज एक पंक्ति लिखकर दिया था—'करके देखो।'

जब गांधीजी ने दांडी मार्च निकालकर प्रतीकात्मक रूप से नमक बनाया तो समूचे देश में हलचल मच गई थी। इस घटना ने ब्रिटिश प्रशासन को हिलाकर रख दिया था। दांडी मार्च का गहरा प्रभाव देशवासियों पर पड़ा था। हजारों लोगों ने नमक बनाकर नमक कानून को भंग करना शुरू कर दिया था। गांधीजी के अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई थी और विदेशों में भी इस घटना की चर्चा होने लगी थी।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में दांडी मार्च एक निर्णायक मोड़ साबित हुआ था। मार्च की सफलता के कुछ घंटों बाद ही ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस के नेताओं को गिरफ्तार करने का आदेश दिया था। जब पुलिस मोतीलाल नेहरू को गिरफ्तार करने पहुँची तो उन्होंने तैयार होने के लिए थोड़ा समय माँगा। पुलिस के साथ जेल रवाना होने से पहले मोतीलाल नेहरू ने गांधीजी को एक तार भेजा, जिसमें लिखा था—'करने से पहले ही देख लिया।'

गांधीजी को मैनेजमेंट गुरु माननेवाले कुछ लोग यह भी मानते हैं कि उनके सभी विचारों को वर्तमान समय में अपनाना संभव नहीं है। उदाहरण के तौर पर, वे बताते हैं कि गांधीजी औद्योगिकीकरण का विरोध करते थे, जिसका नकारात्मक प्रभाव समाज पर पड़ सकता है। मगर हकीकत यह है कि गांधीजी औद्योगिकीरण का पूरी तरह विरोध नहीं करते थे और वे पूँजीपतियों के दुश्मन भी नहीं थे।

गांधीजी अकसर कहते थे कि कई पूँजीपति उनके मित्र हैं, जिनमें जमनालाल बजाज और घनश्यामदास बिड़ला प्रमुख थे। उन्होंने ट्रस्टीशिप की अवधारणा रखी थी और धनवानों को अपनी संपत्ति का इस्तेमाल जन-कल्याण के लिए करने की प्रेरणा दी थी।

'सूर्या रोशनी' के अध्यक्ष बी.डी. अग्रवाल का कहना है, ''गांधीजी का चरखा नई प्रौद्योगिकी के विरुद्‌ध नहीं था, बल्कि वह स्वावलंबन का प्रतीक था।''

❑

कुशल मैनेजमेंट गुरु

शैक्षणिक आधुनिकता के सबसे बड़े भारतीय प्रतीक महात्मा गांधी थे। वे इतने कुशल मैनेजमेंट गुरु थे कि उनका मुकाबला आज के मैनेजमेंट के बड़े-से-बड़े संस्थान भी नहीं कर सकते। उनके पास एक ऐसा गुरुमंत्र था कि वे जो कहते और करते, लोग उस पर अपने आप चलने लगते थे। उन्होंने सबसे पहले मैनचेस्टर के बने कपड़ों का विरोध करके औद्योगिक सभ्यता को पहली भारतीय और सांस्कृतिक चुनौती दी थी। 'स्वदेशी' उनके मैनेजमेंट पाठ्यक्रम का पहला अध्याय था।

इसी स्वदेशी के अंदर से उन्होंने खोजा था एक डिजाइनर पाठ्यक्रम। उनका यह नया डिजाइन था—चरखा। इस चरखे की स्वावलंबी ताकत से उन्होंने एक नए वस्त्र की डिजाइन बनाई, जिसे 'खादी' नाम दिया गया। गांधी खादी वस्त्र के प्रथम डिजाइनर बन गए और उस समय के भारत में जिसने भी गांधी को अपनाया, उसने चरखे को स्वत: अपना लिया। यहाँ तक कि नेहरू जैसे आधुनिकतावादी ने भी चरखे पर सूत कातना शुरू कर दिया। इस तरह बिना किसी औद्योगिक या आई.टी. कंपनी में प्लेसमेंट के गांधीजी ने एक ऐसे रोजगार का डिजाइन तैयार किया, जो घर का हर सदस्य कर सकता था और जिसके लिए न कोई एंट्रेंस परीक्षा थी और न किसी औद्योगिक मालिक का पे पैकेज।

गांधी के पाठ्यक्रम का दूसरा भाग था—कुटीर उद्योग। उन्होंने ग्रामीण और गरीब लोगों के लिए स्थानीय स्तर पर रोजगार पैदा करनेवाले कुटीर उद्योग का पक्ष लेकर पारंपरिक भारतीय कुटीर व्यवसायों को पुनर्जीवित करने की कोशिश की। जो लोग चटाई बनाना, कुम्हारी करना, लोहारी या सुतारी करना, हथकरघों पर कपड़ा बुनने का संस्कार छोड़ चुके थे, गांधी ने उन्हें याद दिलाया कि पुरखों के उद्योग में इतना दम है कि देश का कोई आदमी भूखा नहीं मर सकता। घर बैठे कमाई का ऐसा मैनेजमेंट गांधीजी ही सिखा सकते थे।

गांधीजी पर बेहद चर्चित और प्रशंसित उपन्यास 'पहला गिरमिटिया' के लेखक गिरिराज किशोर ने उनका विश्लेषण करते हुए लिखा है—''महात्मा गांधी के जीवन के तीन पक्ष हैं—एक मोहनिया पक्ष, दूसरा मोहनदास पक्ष, तीसरा महात्मा गांधी पक्ष। हर आदमी के जीवन में ऐसा विभाजन होता है; परंतु किसी भी महान् व्यक्ति के जीवन के विकास के संदर्भ में ये पक्ष महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। कृष्ण के जीवन में भी इसी तरह कान्हा या गोपाल पक्ष, कृष्ण पक्ष, योगिराज कृष्ण पक्ष थे।

''बैरिस्टरी से लेकर दक्षिण अफ्रीका से लौटने तक उनका मोहनदास रूप है या गांधी भाई रूप। बीच-बीच में उनका मोहनिया रूप भी आता रहता है। कभी शेख मेहताब के माध्यम से, कभी कस्तूर के माध्यम से, कभी बा और बापू के माध्यम से और कभी उनकी याद के जरिए। गांधीजी को हम जिस भी रूप में देखना चाहें, उस रूप में सबसे अलग और प्रभावी दिखते हैं।''

यही वजह है कि गांधी अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा के भी आदर्श हैं और चीन जैसा भारत का पड़ोसी भी उन्हें अपने यहाँ सम्मान देता है। यहाँ बता दें कि बीजिंग में महात्मा गांधी ही इकलौते भारतीय नेता हैं, जिनकी प्रतिमा सार्वजनिक स्थल पर सरकार की ओर से लगाई गई है।

प्रोफेसर यशपाल का कहना है कि गांधीजी अपने शब्दों से नहीं बल्कि अपनी जिंदगी से शिक्षा देते थे। उन्होंने शब्दों से किसी को कुछ सिखाने की कोशिश नहीं की। वे जो कहना चाहते थे, अपने कार्यकलापों से करके दिखा देते थे। उनके शब्दों के साथ जिंदगी जुड़ी हुई थी।

महात्मा गांधी के रहने के तरीके से शिक्षा मिलती है। उनकी जिंदगी और रहने के तरीके में बड़ा समन्वय था। इनके जरिए वे सबकुछ कह जाते थे। बड़ी-बड़ी बातें करना उनकी आदत में शुमार नहीं था। उनका एक वाक्य

लीजिए, जिसमें उन्होंने कहा—'जहाँ सत्य है, वहाँ भगवान् है।' यह सुनने में बड़ा साधारण लगता है। लेकिन ध्यान से देखें तो समझ में आएगा कि उन्होंने कितनी बड़ी बात कह दी। इन शब्दों के माध्यम से उन्होंने जीवन का पूरा दर्शन उड़ेल दिया।

महात्मा गांधी ने बताया कि सीखना सिर्फ किताबें पढ़ने से नहीं होता, जिंदगी से जुड़ने से भी होता है। यही कारण है कि उनकी छोटी-छोटी बातें भी बड़ी मानी जाती हैं। वे सिद्धांतों में विश्वास नहीं करते थे, बल्कि जिंदगी में उसे करके दिखाने में विश्वास करते थे।

उनका कहना था—''जीवन से जुड़ जाओ, उद्देश्य अपने आप निकल आएगा।'' उद्देश्य का तरीका आपके काम करने के तरीके से निकलता है। नमक आंदोलन से उन्होंने बहुत कुछ सीखा। इसी तरह अन्य आंदोलनों से वे बहुत कुछ सीखते रहते थे।

आजकल हर कोई एक सवाल पूछता है—इस काम से क्या फायदा होगा? लेकिन महात्मा गांधी ने यह सवाल तो कभी पूछा नहीं। वे कहते थे कि कुछ करने के लिए सबसे अधिक गरीब व्यक्ति से पूछिए कि उसे क्या चाहिए, आपके सवाल का जवाब इसी में छिपा है। वे गरीबों और असहाय लोगों की मदद को तैयार रहते थे और इस तरह से सभी को प्रेरित करते थे। महात्मा गांधी सच्चे गुरु थे, जो सोच बदलने के तरीके में विश्वास करते थे। वे कर्म में विश्वास करते थे, न कि वचन में। सारी दुनिया में ऐसे गुरु विरले ही होंगे।

अंग्रेजी के लोकप्रिय उपन्यासकार चेतन भगत का कहना है कि गांधीजी ने जितनी सरल भाषा में कठिन-से-कठिन विषयों पर लेख लिखे, वे वाकई तारीफ के काबिल हैं। उनकी लेखनी का समाज पर काफी प्रभाव पड़ा। उन्होंने भारतीयों को स्वतंत्रता के लिए तो प्रेरित किया ही, साथ ही समाज में फैली कुरीतियों पर भी गहरे प्रहार किए।

हिंदू-मुसलिम एकता पर उन्होंने जो लिखा, वह आज भी प्रासंगिक और प्रेरणा लेने लायक है।

गांधीजी एक बेहतरीन सी.ई.ओ. थे। एक योग्य सी.ई.ओ. की तरह वे भविष्य की तसवीर पेश कर देते थे और उसे अपने लोगों के सामने रखते थे। एक बढ़िया सी.ई.ओ. की निशानी है कि वह भविष्य में झाँक सके। गांधीजी में यह गुण भरपूर था।

वे मूल्यों में विश्वास करते थे। इनका उन्होंने कभी साथ नहीं छोड़ा। वे साधारण लोगों से लेकर स्वतंत्रता-संग्राम के बड़े नेताओं तक को इनके लिए प्रोत्साहित करते थे। यह एक अच्छे सी.ई.ओ. का गुण है। गांधीजी का आध्यात्मिक नेतृत्व गजब का था। वे उस हर समाज के सांस्कृतिक पहलुओं और फर्क को समझते थे, जिनसे उन्हें काम लेना होता था या जिनसे उन्हें जुड़ना होता था। उन्हें मानवीय मनोविज्ञान की गहरी समझ थी। और यह एक सफल सी.ई.ओ. की बेहतरीन निशानी है।

वे कम्युनिकेशन और जनसंपर्क में सबसे आगे थे। वे अपनी बात कहने के लिए अपने वाक्य-कौशल का पूरा इस्तेमाल करते थे। उनका मीडिया से बहुत बढ़िया तालमेल था। इसलिए अंग्रेजों के जमाने में भी उनके कार्यक्रमों को काफी लोकप्रियता मिली। इसका सबसे अच्छा उदाहरण दांडी मार्च था। मीडिया के सही इस्तेमाल से उन्होंने अपनी पूरी बात कह दी और लोगों को आगे आने के लिए प्रेरित किया। उनमें उच्च श्रेणी के सी.ई.ओ. का एक बड़ा गुण यह था कि वे विवादों का प्रबंधन दक्षतापूर्वक करते थे।

वे लोगों को हमेशा उनके अंतिम लक्ष्य के बारे में बताते थे। वे अपने लोगों को भविष्य की एक बड़ी तसवीर दिखाते थे, फिर उन्हें उसके बारे में आश्वस्त करते थे। लक्ष्य बताना और उसे पाने के बारे में विश्वास के साथ बताना बड़ी बात है। दुनिया के सफलतम सी.ई.ओ. की यही तो पहचान रही है। गांधीजी खुद आगे बढ़कर कोई

भी काम पहले करते थे, यानी दूसरों से कहने से पहले खुद करके आश्वस्त हो जाते थे। दुनिया के जितने सफल सी.ई.ओ. हुए हैं, उन सबकी सफलता का राज यही था।

❑

बीसवीं सदी के सबसे बड़े मैनेजमेंट गुरु

लगे रहो मुन्नाभाई' के रिलीज होने के बाद से इस देश में गांधी दर्शन या गांधीगीरी की चर्चा ज्यादा ही तेज हो गई है। यह चर्चा देश तक ही सीमित नहीं है, हार्वर्ड स्कूल ऑफ बिजनेस मैनेजमेंट में भी महात्मा गांधी को बीसवीं सदी के सबसे बड़े मैनेजमेंट गुरु के रूप में स्वीकार किया गया है।

महात्मा गांधी के दर्शन में सात सामाजिक बुराइयों की व्याख्या है। जैसे सिद्धांत-विहीन राजनीति, बाहरी प्रसन्नता, काम की कमाई, चरित्र-रहित ज्ञान, अनैतिक व्यापार, अमानवीय विज्ञान और समर्पण-रहित धर्म। गांधीजी ने कहा था—''हम विरोधियों को सिर्फ प्रेम के सहारे जीत सकते हैं। घृणा हिंसा का अव्यक्त रूप है। घृणा से नुकसान घृणा करनेवाले का होता है, न कि घृणित का।

''हम भीतर की घृणा को उसी प्रकार दूर कर सकते हैं, जैसे अँधेरे को दूर करते हैं। जिस प्रकार अँधेरे को हटाने के लिए प्रकाश की जरूरत होती है, उसी प्रकार घृणा रूपी अँधेरे को हटाने के लिए हृदय में प्रेम की भावना का होना जरूरी है। हम किसी अजनबी से घृणा नहीं कर सकते। घृणा उसी के प्रति होती है, जिससे कभी प्रेम रहा हो। अत: घृणा कुछ और नहीं, बल्कि किसी व्यक्ति के प्रति मन में प्रेम की भावना को समाप्त करने की क्रिया है और इसे पुन: प्रेम की धारा प्रवाहित करके ही दूर किया जा सकता है।''

गांधीजी के विचारों को संक्षेप में सत्य, अहिंसा, सर्वोदय और सत्याग्रह जैसे चार शब्दों या पदों के जरिए समझा जा सकता है। इन्हीं चार शब्दों को गांधीगीरी का चार स्तंभ माना जाता है। पतंजलि के योग सूत्र के अनुसार, सच्चाई वहीं है जहाँ विचार, कर्म और वचन में एकरूपता हो। इसी प्रकार अहिंसा से आशय सिर्फ शारीरिक ही नहीं, बल्कि मानसिक तौर पर भी सकारात्मक विचार रखने से है। जैन धर्म का तो मुख्य सिद्धांत ही यही है। हम अहिंसावादी तभी हो सकते हैं, जब हमारे कर्म सत्यता पर आधारित हों।

'भगवद्गीता' में कहा गया है कि कलियुग में लोभ सबसे बड़ी समस्या होगी। लोभ में सबसे बड़ी बुराई यही है कि इसका कोई ओर-छोर नहीं होता। आकांक्षाओं की पूर्ति जितनी होती जाती है, लोभ उतना ही बढ़ता जाता है। इसी समस्या से छुटकारा पाने के लिए गांधीजी ने सर्वोदय की अवधारणा को जन्म दिया। सर्वोदय का शाब्दिक अर्थ ही है—सर्वकल्याण। विनोबा भावे ने भी जिंदगी भर इस सिद्धांत की वकालत की। इस सिद्धांत में हमारे वेदांतों का सार है।

सर्वोदय की अवधारणा को विकसित करने के लिए गांधीजी ने ट्रस्ट की वकालत की। उनका सिद्धांत इस बात पर आधारित था कि धनी व्यक्ति अपनी संपत्ति ट्रस्ट बनाकर रखें और उस ट्रस्ट से उतना ही लें जितने की उन्हें जरूरत हो, बाकी हिस्सा समाज-कल्याण के लिए उपयोग होने दें।

सर्वोदय दर्शन में विश्वास के कारण गांधीजी वास्तविकता के तीन आयाम—सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् में भी विश्वास करते थे। उनका मानना था कि सत्यता की भावना से दुनिया को बल मिलता है और इसी से सबका कल्याण होता है। सत्यनिष्ठ दुनिया में ही सुंदरता हो सकती है और इसी दुनिया में लोगों को आंतरिक खुशी मिल सकती है।

सत्याग्रह भी गांधीजी का अहम औजार था। यह मूल रूप से सत्य और अहिंसात्मक कार्यों पर आधारित था। इसके तहत असहयोग और भूख हड़ताल जैसे तरीके अपनाए जाते थे। यह जन-साधारण में सकारात्मक विचार बनाने का सबसे तेज तरीका था। लेकिन आज हम इन सिद्धांतों को भूल चुके हैं, जीवन-शैली बदल चुके हैं।

इसी बदली जीवन-शैली की वजह से कई प्रकार की विकृतियाँ और समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। गांधीजी के रास्ते आज भी उतने ही कारगर हैं जितने बीसवीं सदी में थे।

❑

आज भी प्रासंगिक हैं गांधीजी के विचार

जिस व्यक्ति ने अपने जीवन को मानव समाज और देश को समर्पित कर अहिंसा की ताकत का मूल्य समझाया, आखिर उसकी सोच, दर्शन और सिद्धांत क्या थे? समाज-रचना की तकनीक क्या थी? इन सबको जानने के लिए सबसे पहले हमें 'गांधीवाद' जैसे शब्द से बचना होगा, क्योंकि वाद में जड़ता होती है।

इसके लिए गांधीजी के विचार को जानना जरूरी होगा। गांधी दर्शन के मूल में सत्य, अहिंसा, सादगी, अस्तेय, अपरिग्रह, श्रम और नैतिकता है, जहाँ से स्थानीय स्वशासन, स्वावलंबन, स्वदेशी विकेंद्रीकरण, ट्रस्टीशिप, परस्परालंबन, सह-अस्तित्व, शोषण-मुक्त व्यवस्था और सहयोग, सहभाव एवं समानता पर आधारित समाज व्यवस्था का अनुभव होता है।

किसी से भी पूछने पर सबसे पहले यही सुनने को मिलता है कि गांधीजी को सत्याग्रह के लिए जाना जाता है। दरअसल गांधीजी के सत्याग्रह का व्यापक अर्थ है अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न, दमन करनेवाली जनद्रोही भ्रष्ट व शोषक व्यवस्थाओं से असहयोग तथा समाज में शुभ चिंतन और कर्म करनेवाले लोगों एवं संगठनों के बीच समन्वय।

जिन ब्रह्मा, विष्णु, महेश या राम-कृष्णादि के आयामों को हम सामान्यत: पुराण या मिथक जानते-समझते हैं, वे दरअसल सृष्टि, प्रकृति अथवा मानव जीवन से जुड़े आधारभूत नियम व सत्य हैं। इन्हें हमारे पूर्वजों ने गंभीर निरीक्षण से अर्जित किया था और बहुधा कूट-जटिल, अलंकृत या प्रतीकात्मक भाषा-पद्धति में इसलिए व्यक्त किया था, ताकि वे सामूहिक अवचेतन में अटके रहें, समय का लंबा अंतराल बीत जाने पर भी मनुष्य के लिए उनके मूल संदेश या आशय को ग्रहण करना संभव हो जाए।

ऐसे ही एक मिथक पर बीसवीं सदी में 'सत्य के प्रयोग' अथवा 'आत्मकथा' के नाम से गांधीजी ने सत्य, अहिंसा, ईश्वर के मर्म को समझने-समझाने के लिए विचार किया था। उसका प्रकाशन भले ही सन् 1925 में हुआ, पर उसमें निहित बुनियादी सिद्धांतों पर वे बचपन से चलने की कोशिश करते आए थे। बेशक इस क्रम में मांसाहार, बीड़ी पीने, चोरी करने, विषयासक्त रहने जैसी कई आरंभिक भूलें भी उनसे हुईं और बैरिस्टरी की पढ़ाई के लिए विदेश जाने पर भी अनेक भ्रमों-आकर्षणों ने उन्हें जब-तब घेरा; लेकिन अपने पारिवारिक संस्कारों, माता-पिता के प्रति अनन्य भक्ति, सत्य, अहिंसा तथा ईश्वर को साध्य बनाने के कारण गांधीजी उन संकटों से उबरते रहे।

उनकी पुस्तक से अधिक उदाहरण देना जरूरी नहीं है। उसके प्रकाशन के काफी पहले से वे न केवल महात्मा मान लिये गए थे, बल्कि एक अवतारी, चमत्कारी, मिथकीय अस्तित्व की भाँति जनमानस में प्रतिष्ठित भी हो गए थे।

गांधीजी ने कहा था, ''नैतिक और सामाजिक उत्थान को ही हमने अहिंसा का नाम दिया है। यह स्वराज का चतुष्कोण है।''

मूल रूप से गांधीजी की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था करुणा, प्रेम, नैतिकता, धार्मिकता एवं ईश्वरीय भावना पर आधारित है। उन्होंने नर सेवा को ही नारायण सेवा मानकर दलितोद्धार एवं दरिद्रोद्धार को अपने जीवन का ध्येय बनाया। वे शोषण-मुक्त, समता-युक्त, ममतामय, परस्पर स्वावलंबी, परस्पर पूरक व परस्पर पोषक समाज के प्रबल हिमायती थे। उनका मानना था कि राजसत्ता और अर्थसत्ता के विकेंद्रीयकरण के बिना आम आदमी को

सच्चे लोकतंत्र की अनुभूति नहीं हो सकती। सत्ता का केंद्रीयकरण लोकतंत्र की प्रकृति से मेल नहीं खाता। उनकी ग्राम-स्वराज की कल्पना भी राजसत्ता के विकेंद्रीयकरण पर आधारित है।

वर्तमान युग में गांधीजी के विचारों की प्रासंगिकता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि उनका चित्र यूरोप के कई देशों सहित फिलिस्तीन, दक्षिण अफ्रीका और अमेरिका की मुद्राओं पर भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है।

इटली के राजनीतिक दल रैडिकली इटालियानी के ध्वज पर गांधीजी का चित्र विराजमान है। इस दल की 60 वर्षीया कुँवारी महिला नेता एमा बॉनिनो पिछले तीन दशकों से गांधीवाद की प्रबल समर्थक हैं और गांधीवाद के साथ ही जीवन-निर्वाह करने का भरसक प्रयत्न करती हैं।

एक ओर जहाँ बीसवीं सदी के सभी महान् राजनीतिक धुरंधर विश्व-पटल से गायब होते जा रहे हैं या यों कहें कि उनका पदार्थीकरण हो रहा है या फिर वे संन्यास ले चुके हैं तो दूसरी ओर गांधीजी की राजनीतिक विरासत अक्षुण्ण बनी हुई है—देश में भी और देश से दूर अन्य देशों में भी।

❑

जो कमजोर हैं, उनका साथ दें

गांधीजी का यह प्रण था कि जब तक मेरे देश की जनता गरीबी से ऊपर उठकर एक सम्मानपूर्ण जीवन जीने के काबिल नहीं हो जाएगी, मैं मात्र एक छोटी सी धोती पहनूँगा।

देखा गया है कि समर्थ के साथ सब होते हैं, असमर्थ के साथ कोई नहीं। इसका एकमात्र कारण यही है कि सामर्थ्यवान् व्यक्ति से हमारे स्वार्थ सिद्ध होते हैं, जबकि कमजोर आदमी भला हमारे किस काम आ सकता है! लेकिन सब यही सोच लें तो फिर संसार कैसे चलेगा? जिसे मदद चाहिए, उस तक ही मदद न पहुँच पाए तो फिर भला कहाँ पाई जाएगी इनसानियत या मानवीयता, जिसकी दुहाई हम अकसर देते हैं! वह तो केवल शब्दकोश तक सिमटकर रह जाएगी। कोई किसी की मदद नहीं करेगा। एक ऐसे स्वार्थी समाज का उदय हो जाएगा, जो केवल मतलब के लिए एक-दूसरे को पहचानेगा।

समय सदा सबका एक-सा नहीं रहता। जो आज समर्थ है, कल असमर्थ हो सकता है। धनवान् निर्धन हो सकता है। ऐसी स्थिति की कल्पना कीजिए। कौन मुसीबत के समय किसी का साथ देगा?

गांधीजी ने गरीब को 'दरिद्र नारायण' की संज्ञा दी है। कमजोर की सहायता करना साक्षात् ईश्वर को पूजने के समान है। यही संदेश स्वामी विवेकानंद ने दिया था।

उत्तरी बिहार का चंपारण घोर गरीबी से घिरा हुआ इलाका था। जमींदारों द्वारा गरीब किसानों का शोषण चरम सीमा पर था। तब वहाँ के एक प्रतिनिधिमंडल ने गांधीजी से मिलकर चंपारण आने हेतु निवेदन किया।

गांधीजी ने कस्तूरबा के साथ चंपारण का व्यापक दौरा किया। महिलाओं की साड़ियाँ मैली-कुचैली थीं।

बा ने पूछा, ''तुम लोग अपनी साड़ियाँ धोतीं क्यों नहीं?''

तब एक महिला उन्हें अपनी झोंपड़ी में ले गई, जिसमें कुछ नहीं था। केवल उसकी बहनें अधनंगी अवस्था में बैठी थीं।

महिला ने कहा, ''हम सबके बीच केवल एक ही साड़ी है। जो भी बाहर जाती है, उसे ही पहनकर जाती है। शेष को झोंपड़ी में रुकना पड़ता है। यही हमारी गरीबी है। यदि आप हमें साड़ी देंगी तो हम पहनना व धोना दोनों काम कर सकेंगे।''

बा ने यह बात गांधीजी को बताई। उन्होंने उन बहनों को तीन साड़ियाँ भेंट कीं। लेकिन इस घटना ने गांधीजी को भीतर तक हिला दिया।

उसी दिन के बाद उन्होंने तय किया कि वे अपनी जरूरत तथा वस्त्र कम करेंगे। गांधीजी ने उसके बाद से कम कपड़ेवाली घुटने के ऊपर तक पहनी जानेवाली छोटी धोती को सदा के लिए अंगीकार कर लिया। वे अब लाखों निर्धन, असहाय व कमजोर तबके की जनता का एक अंग बन गए।

उनका यह प्रण था कि जब तक मेरे देश की जनता गरीबी से ऊपर उठकर एक सम्मानपूर्ण जीवन जीने के काबिल नहीं हो जाएगी, मैं मात्र एक छोटी सी धोती पहनूँगा। उन्होंने कमजोर लोगों से जुड़ा अपना यह प्रण मरते दम तक निभाया। यही भाव जब हम अपने जीवन में अपनाएँगे तो हमारा जीवन भी धन्य हो उठेगा—

दीनहि सबको लखत है, दीनहि लखे न कोय।
जो कोई दीनहि लखै, दीनबंधु सम होय॥

❑

सुधारों पर भरोसा रखें

समय परिवर्तनशील है उसके साथ स्वयं में सुधार लाकर रूढ़ियों को तोड़ना हर एक के लिए बेहद आवश्यक है। जो यह नहीं कर पाता, वह अतीत में जीता है। जीवन के सुचारु व सफल संचालन के लिए हमारी नजर भविष्य पर होनी चाहिए तथा उसके लिए वर्तमान की पुरानी रूढ़िवादी परंपराओं को तोड़ना हर एक की नैतिक जिम्मेदारी है।

पर लोग तथा समाज क्या कहेगा, इसका डर हमें कोई भी गैर-पारंपरिक कदम उठाने से सदा रोकता है। इसमें डर जैसी कोई बात नहीं। एक बार साहस करके उसकी परिधि से बाहर निकलेंगे तो पाएँगे कि अनेक लोग आपके प्रशंसक ही नहीं, बल्कि अनुगामी बन चुके हैं।

महात्मा गांधी सादगीपूर्ण वैवाहिक अनुष्ठान के हिमायती थे। जमनालाल बजाज उनके लिए पुत्र के समान थे। मारवाड़ी समाज आमतौर पर धनाढ्य होता है तथा शादी-ब्याह के अवसर पर खुलकर खर्च करता है। लेकिन जमनालाल बजाज ने गांधीजी की राय मानकर अपनी पुत्री कमला का विवाह गांधीजी द्वारा संचालित गुजरात विद्यापीठ के छात्र रामेश्वर नेवरिया के साथ बगैर किसी दिखावे या तड़क-भड़क के बहुत साधारण तरीके से किया।

गांधीजी ने तब कहा, ''गीता में कहा गया है—'महाजनो येन गत: स पंथ:' अर्थात् जिस ओर महान् लोग जाते हैं, वही रास्ता बन जाता है। रामेश्वर व कमला बुद्धिमान हैं। उन्हें पता है कि शादी आमोद-प्रमोद या मनोरंजन का साधन नहीं है। वह तो उच्च आदर्शों का स्वयं में अनुभव का मार्ग है। पत्नी पति की न तो शारीरिक और न नैतिक रूप से दास या गुलाम है। वह तो उसकी मित्र तथा साथी है। मेरा आशीर्वाद है कि दोनों अपने अभिभावकों का नाम रोशन करते हुए पूरे विश्वास व श्रद्धा के साथ देश की सेवा करें।''

सन् 1932 के बाद गांधीजी ने केवल अंतर्जातीय यानी सवर्ण और हरिजन विवाह-समारोहों में हिस्सा लिया। ये शादियाँ आश्रम में भी संपन्न हुईं।

सुधार के प्रति समर्पण ही आपकी आत्मा को शुद्ध करता है। कुरीतियों की बेड़ी से जकड़ी व्यवस्थाओं को तोड़कर आप न केवल वर्तमान बल्कि आगे आनेवाली कई पीढ़ियों को फायदा पहुँचाते हैं। याद रखिए, बुराई को जड़ से खत्म करने के लिए किसी-न-किसी एक को आगे आना ही होगा। फिर यह एक आप क्यों नहीं बनते? एक बार कोशिश करके तो देखिए, फिर देखेंगे कि कितने लोग आपके साथ खड़े होकर आपका मनोबल बढ़ाते हैं। यही है सुधारवाद का सिद्धांत।

गांधीजी ने कहा था, ''सेवा एक अच्छा कर्म है, लेकिन उसके लिए आचरण में निष्ठा, समर्पण और लगन होनी चाहिए। मन में सेवा का अहंकार नहीं, भाव होना चाहिए, तब यह प्रार्थना के समकक्ष हो जाती है।''

अपने आप में सुधार लाकर रूढ़ियों को तोड़ना आवश्यक है। जीवन के सुचारु रूप से संचालन के लिए हमारी नजर भविष्य पर होनी चाहिए।

❑

सीखने की कोई उम्र नहीं होती

सीखने के प्रति दुराग्रह न रखकर हम स्वयं का ही भला करते हैं। अच्छी सीख से हमारा ज्ञान तो बढ़ता ही है, साथ ही दृष्टिकोण भी उदार होता है। दिल और दिमाग खुला रखने से बड़ा कोई लाभ नहीं है।

सीखने की कोई उम्र नहीं होती। हर एक से हर उम्र में कुछ-न-कुछ सीखा जा सकता है, बशर्ते उसके लिए मन में जगह हो और लगन सच्ची हो। अमूमन अपने को ज्ञानी समझने के झूठे अहंकार के तहत आदमी अपनी बात को तो श्रेष्ठ समझता ही है, दूसरों से कभी कोई सीख न लेने की जिद भी मन में रखता है।

अज्ञान को भी एक शक्ति के रूप में इस्तेमाल कीजिए। इससे आपकी जिज्ञासा के दरवाजे अपने आप खुल जाएँगे तथा ज्ञान की किरणें आपके अंदर प्रवेश कर सकेंगी।

सन् 1934 में गांधीजी ने खादी के प्रचार-प्रसार हेतु कर्नाटक स्थित कुर्ग का प्रवास किया। एक जनसभा में गोरम्मा ने अपने गहने इस प्रयोजन हेतु दान किए। इसे देखकर एक दूसरी महिला ने भी अपनी सोने की चूडियाँ उन्हें भेंट कर दीं। उसका पति पास खड़ा यह सब देख रहा था।

गांधीजी ने उससे पूछा, ''क्या तुम सोने की चूडियों के इस दान से सहमत हो?''

पति ने कहा, ''हाँ, मैं सहमत हूँ। पत्नी ने चूडियाँ मेरी सहमति से दी हैं। मैं अपनी सहमति से कैसे इनकार कर सकता था! आखिरकार चूडियाँ तो उसी की थीं न।''

गांधीजी ने कहा, ''हर पति इतना बुद्धिमान नहीं होता।''

फिर अचानक पूछ लिया, ''तुम्हारी उम्र कितनी है?''

पति ने उत्तर दिया, ''30 वर्ष।''

गांधीजी ने कहा, ''तुम्हारी उम्र में मैं इतना बुद्धिमान नहीं था। आज मैंने तुमसे देश-प्रेम एवं परोपकार की नई इबादत सीखी है।''

सीखने के प्रति दुराग्रह न रखकर हम स्वयं का ही भला करते हैं। अच्छी सीख से हमारा ज्ञान तो बढ़ता ही है, साथ ही दृष्टिकोण भी उदार होता है। दिल और दिमाग खुला रखने से बड़ा अन्य कोई लाभ नहीं है। अच्छी बातें आपके जीवन में बहुत फायदेमंद होती हैं। लोग आपसे परहेज करने के बजाय आपको पसंद करने लगते हैं। यहीं से शुरू होता है सफलता का सफर।

सन् 1929 में जे.सी. कुमारप्पा मात्र 30 वर्ष के थे। उन्होंने अमेरिका व इंग्लैंड में अर्थशास्त्र का अध्ययन किया था तथा बंबई में प्रैक्टिस कर रहे थे। वे अपनी थीसिस गांधीजी को दिखाना चाहते थे, लेकिन उनकी व्यस्तता के मद्देनजर उनके सचिव प्यारेलाल को अपनी पुस्तक सौंप दी।

आश्चर्य तो तब हुआ जब उन्हें प्यारेलाल ने पत्र द्वारा साबरमती आश्रम में 9 मई, 1929 को दोपहर 2.30 बजे मिलने का आमंत्रण भेजा।

कुमारप्पा समय से आधा घंटे पूर्व पहुँच गए। उन्होंने देखा कि एक बुजुर्ग पेड़ के नीचे बैठकर चरखे पर सूत कात रहे थे। उन्हें नहीं मालूम था कि यही व्यक्ति गांधी हैं और वे उन्हें मनोयोगपूर्वक काम करते हुए देखते रहे।

दोपहर ठीक 2.30 बजे गांधीजी ने पूछा, ''तुम ही कुमारप्पा हो?''

कुमारप्पा आश्चर्यचकित हो गए। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि इतना बड़ा आदमी इतना छोटा काम भी अपने हाथ से कर सकता है।

गांधीजी ने उन्हें एक कुरसी दी, लेकिन कुमारप्पा उनके साथ जमीन पर ही बैठे, हालाँकि यह उनके लिए आसान काम नहीं था।

गांधीजी ने कहा, ''तुम्हारा कार्य बहुत अच्छा है।''

कुमारप्पा बेहद खुश हो गए। उन्होंने गांधीजी के आंदोलन में शरीक होने की इच्छा जताई। गांधीजी ने उन्हें काका कालेलकर के पास भेजा, जो उस समय गुजरात विद्यापीठ के कुलपति थे।

उसी दिन से कुमारप्पा ने न केवल खादी धारण की, बल्कि आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत भी लिया। वे गांधी दर्शन के वाहक बन गए।

गांधीजी के विचारों की कालजयिता

कभी स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि अगर कभी वेदांत लौटकर आया तो वह अमेरिका में आएगा। ऐसा इसलिए कि भौतिक समृद्धि सहित सभ्यता के हर चरण के चरम पर पहुँच जाने के बाद ही उसके हृदय में परम लक्ष्य व शांति की लालसा जागेगी और वह इसे स्वीकृत कर सकेगा। मगर निस्संदेह आज अमेरिका ही नहीं, समस्त विश्व एक आंतरिक बेचैनी एवं अधूरेपन से गुजर रहा है और शांति की एक शीतल छाँव का आकांक्षी है; मगर अध्यात्म के सिद्धांतों को आत्मसात् करने के लिए शायद अभी पूर्णत: परिपक्व नहीं हुआ है और तभी ऐसे में उभरता है एक ऐसा नाम, जो इन सिद्धांतों की एक व्यावहारिक अभिव्यक्ति है—'महात्मा गांधी'।

एक आम आदमी किस तरह स्वयं में आत्मिक और आंतरिक विकास सुनिश्चित कर सकता है, इसका एक ऐसा व्यावहारिक उदाहरण है गांधीजी का जीवन, जिसका कोई भी अनुकरण कर सकता है। इसलिए आज समस्त विश्व में ही गांधीजी के विचारों को समझने, आत्मसात् करने या व्यवहार में उतारने के कई उदाहरण सामने आ रहे हैं, यहाँ तक कि 'मरा-मरा' कहनेवाले भी 'राम-राम' कहने को बाध्य हो गए हैं, मगर वाल्मीकी बनने के लिए उनमें सच्चा आत्मिक आग्रह भी होना आवश्यक है।

आप गांधी-विरोधी भी हों, मगर उनसे अछूते नहीं रह सकते। हाल के दिनों में धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक लगभग हरेक स्वरूपों में ही गांधीजी की बनाई लकीर पर चलने की कोशिश करते दिखना इस उप-महाद्वीप में गांधीजी की अपार जन-स्वीकार्यता को ही दरशाता है।

गांधीजी अपनी स्वीकार्यता, सार्वभौमिकता के लिए किसी सरकारी कर्मकांड या किसी के समर्थन या आह्वान के मोहताज नहीं हैं। उनके विचारों को नए परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास कर हम उन पर उपकार नहीं करनेवाले, बल्कि उन विचारों तक हमारी निर्बाध उपलब्धता सुनिश्चित कर उन्होंने आनेवाली पीढ़ियों को उपकृत किया है।

आज गांधीजी के विचारों को धरती पर उतारनेवाले कई युवा और संगठन निस्स्वार्थ भाव से गाँवों में जाकर उनके आदर्श ग्राम के स्वप्न को धरती पर उतारने का प्रयास कर रहे हैं। गांधीजी की आत्मा और उनका आशीर्वाद उन निस्स्वार्थ कर्मचारियों के बीच ही विद्यमान है।

अहिंसा के पुजारी एक व्यक्ति की मृत्यु के बाद भी लोग उसे सकारात्मक या नकारात्मक किसी भी पक्ष में भूलते नहीं और उनके समकालीन या पूर्व अथवा बाद में बने कट्टरपंथी संगठनों से अपेक्षित संख्या में जुड़ते नहीं तो कहीं-न-कहीं उस दुबले-पतले, इकहरे आदमी में कुछ तो बात रही होगी। शायद तभी आज कहीं दुनिया की बड़ी कंपनियाँ उन्हें सबसे बेहतर सी.ई.ओ. के रूप में देखती हैं तो सर्वशक्तिमान देश के मुखिया उनके सान्निध्य की आकांक्षा रखते हैं।

❑

मितव्ययिता और अपरिग्रह के सूत्र

''सांसारिक वस्तुओं के उपभोग और स्वामित्व से कौन दूर रह सकता है? लेकिन जीवन का रहस्य इसमें है कि उनकी कमी कभी न खले।''

गांधीजी के जीवन और दर्शन में मितव्ययिता और अपरिग्रह के सर्वश्रेष्ठ सूत्रों का सार मिलता है। उन्होंने अपने जीवन के हर पक्ष में सादगी और मितव्ययिता को अपनाया और इन्हीं के कारण उनका जीवन एक अनुकरणीय उदाहरण है।

गांधीजी के जैसा जीवन जीनेवाला और कोई व्यक्ति दोबारा न होगा। अपनी मृत्यु के समय वे उसी दरिद्र-नारायण की प्रतिमूर्ति थे, जिनके कल्याण के लिए उन्होंने अपने शरीर को भी ढकना उचित नहीं समझा। उनके जीवन-प्रसंग युग-युगों तक सभी को प्रेरणा देते रहेंगे।

अपने अंतिम दिनों में गांधीजी के पास कुल जमा दस-बारह वस्तुएँ ही रह गई थीं, जो उनके निजी उपयोग में आती थीं। ये थीं उनका चश्मा, घड़ी, चप्पलें, लाठी और खाने के बरतन। अपना घर और फार्म आदि वे बहुत पहले ही लोक को अर्पित कर चुके थे।

यह तो हम जानते ही हैं कि गांधीजी का जन्म धनाढ्य परिवार में हुआ था और उन्हें वे सभी सुख-सुविधाएँ मिलीं, जो आज भी अधिकांश भारतीयों को दुर्लभ हैं। उन दिनों कानून की पढ़ाई के लिए लंदन जाने में कई सप्ताह लग जाते थे। बचपन में धन-संपत्ति के बीच पले-बढ़े मोहनदास ने जीवन के हर मोड़ पर सबक सीखे और अंततः स्वयं को व्यय और अर्जन के जंजाल से मुक्त कर दिया। जिस अवस्था में युवाओं को नित-नूतनता आकर्षित करती है, उसमें उन्होंने कठोरतापूर्वक न केवल स्वयं को बल्कि अपने सान्निध्य में आनेवाले हर व्यक्ति को सादगीपूर्ण जीवन जीने के लिए तैयार किया था। इसके महत्त्वपूर्ण सूत्र ये थे —

1. कम संचित करें

अपने पहनने के दो जोड़ी कपड़ों और बनाने-खाने के बरतनों के अलावा उन्होंने किसी चीज की चाह नहीं की। उन्हें प्रतिदिन कई उपहार मिलते थे, जिन्हें वे दूसरों को दे देते थे या उनकी नीलामी कर देते थे। हमारे लिए आज यह संभव नहीं है कि हम भी अपनी आवश्यकताओं को इतना कम कर लें। फिर भी, कम वस्तुओं का संचय ही संतुष्टिकारक होता है। आवश्यकता से अधिक वस्तुओं को ऐसे व्यक्तियों को दे देना चाहिए, जिन्हें उसकी आवश्यकता है या जो उन्हें खरीद नहीं सकते।

हम सभी अपने संचय को बढ़ाने और उसे व्यवस्थित रखने में बहुत सी ऊर्जा और बहुत सारा समय लगाते हैं। कम वस्तुओं को रखने और उनकी देखभाल करने से जीवन सरल व सहज हो जाता है।

2. सादा भोजन करें

गांधीजी को कभी भी मोटापे के डर ने नहीं सताया। वे अपना शाकाहारी भोजन स्वयं उगाते और बनाते थे। धातु के एक ही पात्र में वे भोजन करते थे। भोजन के पहले और बाद में वे प्रार्थना भी करते थे।

3. सादे वस्त्र पहनें

गांधीजी के सारे वस्त्रों में कपड़ा तो कम होता था, पर उनका संदेश बड़ा था। जब वे लंदन में ब्रिटिश सम्राट् से मिलने गए, तब भी उन्होंने छोटी धोती और शॉल पहना हुआ था। इस बारे में एक पत्रकार ने उनसे पूछा,

''मिस्टर गांधी, सम्राट् से मिलते समय आपको यह नहीं लगा कि आपने वास्तव में लगभग कुछ नहीं पहना हुआ था?''

गांधीजी ने इसका उत्तर दिया, ''नहीं, सम्राट् ने इतने वस्त्र पहने थे, जो हम दोनों के लिए पर्याप्त थे।''

सादे-सरल वस्त्रों में जो गरिमा है, वह दिखावटी और तड़क-भड़कवाले डिजाइनर कपड़ों में नहीं है।

4. तनाव मुक्त जीवन जिएँ

गांधीजी को कभी किसी ने तनावग्रस्त नहीं देखा। कई अवसरों पर वे विवादग्रस्त और व्यथित जरूर हुए, लेकिन दु:ख के क्षणों में उन्होंने आत्ममंथन और प्रार्थना का ही सहारा लिया।

गांधीजी वैश्विक स्तर के नेता थे। भले ही वे किसी राजनीतिक पद पर कभी नहीं रहे। करोड़ों व्यक्ति आज भी उन्हें पूजते हैं और उनके प्रति असीम श्रद्धा रखते हैं। अपने सरल जीवन में उन्होंने किसी भटकाव या वचनबद्धता को नहीं आने दिया। बच्चों के साथ समय बिताने के लिए वे अपनी राजनीतिक बैठकें भी निरस्त कर दिया करते थे।

गांधीजी के आसपास हर समय उपस्थित रहनेवाले लोग उनकी हर जरूरत और सुविधा का ध्यान रखते थे; लेकिन उन्होंने हमेशा अपने हाथों से ही सभी काम करने को तरजीह दी। आत्मनिर्भरता उनके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण सद्गुण था।

5. अपने जीवन को अपना संदेश बनाएँ

गांधीजी बहुत अच्छे लेखक और प्रभावशाली वक्ता थे, पर निजी माहौल में वे शांत ही रहा करते थे और उतना ही बोलते थे जितना जरूरी हो।

सहज-सरल जीवन जीने की योग्यता ने गांधीजी को सदैव महान् उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए गतिमान रखा। जनता और विश्व के प्रति प्रतिबद्धताएँ उनकी प्राथमिकता थीं।

अपने जीवन में सरलता को उतारकर देखें। आप पाएँगे कि आपके लिए समय और ऊर्जा में बढ़ोतरी हो रही है। इससे आपको अवसर मिलेगा कि आप परिपूर्ण और प्रेरणास्पद जीवन जी सकें।

❑

गांधीजी के गुरु मंत्र

गांधीजी ने जहाँ अपने देशवासियों को विदेशी शासन से मुक्ति दिलाने के लिए जन-आंदोलन का सक्रिय नेतृत्व किया, वहीं उन्होंने व्यक्तिगत तथा राजनीतिक इन दोनों अर्थों में स्वराज की परिकल्पना की और मनन तथा परीक्षण के द्वारा ऐसे जीवन-दर्शन को विकसित करने की कोशिश की, जिसका स्थायी महत्त्व है। सामाजिक समस्याओं के जो समाधान उन्होंने सुझाए, वे इतने सरल थे कि लोग अकसर चकित रह जाते थे और बहुत से लोग उनके सफल होने में संदेह करते थे।

हालाँकि गांधीजी का दृष्टिकोण आदर्शवादी था, फिर भी अपने आदर्शों को मूर्त रूप देने में वे अत्यंत व्यावहारिक थे। सत्य तथा अहिंसा जैसे आधारभूत सिद्धांतों में सतत विश्वास रखते हुए भी वे उनको लागू करने में निरंतर परीक्षण व प्रयोग करते थे और उनको व्यवहार की कसौटी पर कसते थे।

उनके विचारों के संबंध में अगर कोई बात कही जा सकती है तो यही कि वे अपने समय से आगे हैं।

गांधीजी के लिए ईश्वर कोई बाह्य सत्ता नहीं, बल्कि वह मानव हृदय में हमेशा विद्यमान रहता है। सारे ब्रह्मांड का परिचालन करनेवाले एक चेतन सत्य में विश्वास के बिना जीवन की पूर्णता असंभव है। ईश्वर में विश्वास के बिना मनुष्य महासागर से अलग एक बूँद के समान है, जिसका विनाश अवश्यंभावी है। यदि हम चेतन ईश्वर में विश्वास करते हैं तो हमारा कल्याण होगा। जो चीज मनुष्य को सही काम करने के लिए प्रेरित करती है, वही ईश्वर है। विश्व में जो कुछ भी चेतन तत्त्व है, उनका योग ईश्वर है।

गांधीजी की शक्ति का सबसे बड़ा स्रोत ईश्वर में उनका यही पूर्ण विश्वास था। उनका विश्वास था कि मैं ईश्वर के हाथों में एक छोटा सा उपकरण हूँ और ईश्वर ही जानते हैं कि मुझसे कैसे और क्या काम लिया जाए। उनको जितनी भी परीक्षाओं से गुजरना पड़ा, उससे उनका ईश्वर में विश्वास दृढ़तर होता गया। वे कहते थे, ''ऐसा कभी नहीं हुआ कि ईश्वर ने मेरी पुकार न सुनी हो। जेलों में कठिन परीक्षा की घड़ियों में जब चारों ओर अंधकार प्रतीत होता था, उस समय मैंने उसे अपने सबसे निकट पाया है। मुझे अपने जीवन में एक भी ऐसा क्षण याद नहीं है, जब मुझे ऐसा लगा हो कि ईश्वर ने मेरा हाथ छोड़ दिया है।''

गांधीजी के दो मूल सिद्धांत—सत्य और अहिंसा—उनके एक-एक विचार, शब्द तथा कर्म में पूर्ण रूप से व्यक्त होते हैं। सत्य में अपनी पूर्ण निष्ठा को शब्दों में व्यक्त करके ही वे चुप नहीं बैठे। मन-कर्म-वचन से उन्होंने सत्य की साधना की और विश्व के समक्ष यह घोषित किया कि सत्य ही ईश्वर है। यद्यपि अपने देश को वे जी-जान से प्यार करते थे, तथापि उसकी भी स्वतंत्रता वे सत्य की बलि देकर नहीं चाहते थे। ''भारत सत्य की बलि देकर स्वतंत्रता प्राप्त करे, इसकी अपेक्षा मैं यही पसंद करूँगा कि वह नष्ट हो जाए।''

सत्य तथा अहिंसा एक-दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जैसे सत्य का पूर्ण रूप से पालन किए बिना अहिंसा की सिद्धि नहीं हो सकती, वैसे ही सत्य के साधन को अहिंसा का मार्ग अपनाना अनिवार्य होता है।

उन्होंने इस सिद्धांत को बिलकुल अस्वीकार कर दिया कि साध्य की प्राप्ति के लिए कोई भी साधन उचित है। भावना की पवित्रता ही काफी नहीं है, साधनों का पवित्र होना भी जरूरी है। जिस अहिंसा का गांधीजी ने जीवन भर उपदेश दिया और उस पर सफलतापूर्वक अमल किया, उसे वे निर्बलता या लाचारी नहीं समझते थे। अहिंसा वीरता की पराकाष्ठा है। उसमें कायरता या निर्बलता के लिए कोई स्थान नहीं है। वे कायरता की अपेक्षा हिंसा को ज्यादा अच्छा समझते हैं, क्योंकि एक हिंसापूर्ण व्यक्ति से यह आशा की जा सकती है कि वह किसी दिन अहिंसक बन जाएगा, पर एक कायर से ऐसी आशा कदापि नहीं की जा सकती।

उनके जीवन तथा शिक्षाओं से जो बातें हमें सीखनी हैं, वे यह हैं कि किसी भी व्यक्ति को दूसरे के प्रति बुरी या शत्रुतापूर्ण भावना नहीं रखनी चाहिए। किसी भी व्यक्ति को शत्रु नहीं समझना चाहिए। उसके अंदर जो बुराई है, उसके विरुद्ध हमें संघर्ष करना चाहिए और उसको समाप्त कर देना चाहिए।

गांधीजी व्यक्ति की नैतिकता तथा समाज एवं राष्ट्र की नैतिकता में कोई फर्क नहीं मानते थे। यदि व्यक्तियों के बीच हिंसा अच्छी नहीं है तो राष्ट्रों के बीच भी उतनी ही बुरी है। सत्याग्रह में, जो सत्य और अहिंसा पर आधारित है, अत्याचारी या विरोधी को कोई हानि नहीं पहुँचाई जाती। विजय होने पर न तो हार का लांछन और न जीत का दर्प अनुभव किया जाता है।

गांधीजी का प्रेम तथा कष्ट सहने की शक्ति में सचमुच गहरा विश्वास था। अपने विरोधी के दृष्टिकोण को अपने अनुरूप बनाने का सबसे अधिक अच्छा व प्रभावकारी तरीका है समझा-बुझाकर तथा शराफत के साथ उसके विचारों को बदलना, न कि जोर-जबरदस्ती करके। अत: सत्य के प्रचार के लिए दूसरों को दंडित करना गलत होगा। पर जिस कार्य को हम ठीक समझते हैं, उसके लिए स्वयं कष्ट सहना उचित होगा। जब कोई व्यक्ति स्वयं कष्ट सहन करता है तो वह अपने विचारों के प्रति ईमानदारी का परिचय देता है। इस तरीके का एक और लाभ यह है कि यदि हम गलती पर हैं तो इससे हमें गलती को सुधारने में मदद मिलती है। अत: अहिंसा का तरीका जनतंत्र का तरीका है।

हिंसा के अंतर्गत कोई वास्तविक सुरक्षा नहीं होती। उसमें या तो शस्त्रीकरण की होड़ लग जाती है अथवा ज्यादा शक्तिशाली सशस्त्र गुटों पर निर्भरता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अहिंसा के अंतर्गत जो शक्ति आती है वह कष्ट सहन करने की इच्छा से आती है और वह भौतिक साधनों पर निर्भर नहीं रहती। छोटे-से-छोटा सामाजिक समूह भी, चाहे वह कितना ही असहाय प्रतीत होता हो, इस शक्ति को प्राप्त कर सकता है।

जिस तरह हिंसा के प्रशिक्षण में जान लेने की कला सीखनी पड़ती है, उसी तरह अहिंसा के प्रशिक्षण में जान देने की कला सीखनी होती है। जिस तरह युद्ध का लक्ष्य होता है प्रतिपक्षी को दंडित करना, जिससे वह भय के कारण विजेता की इच्छा का पालन करे, उसी तरह सत्याग्रह का लक्ष्य होता है गलत कार्य करनेवाले का हृदय-परिवर्तन करना और एक नई व ज्यादा न्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था की स्थापना के लिए उसका समर्थन प्राप्त करना। ''अहिंसक लड़ाई का लक्ष्य हमेशा समझौता होता है, न कि यह कि विजेता विजित पर अपनी शर्तों को लादे या प्रतिपक्षी को नीचा दिखाया जाए।''

एक अहिंसक सेना में वे सब लोग शामिल हो सकते हैं, जो अहिंसा के फलितार्थों को स्वीकार करते हैं और उनका पालन करने का अधिकाधिक प्रयत्न करते हैं। ''ऐसी सेना कभी नहीं हारेगी, जो पूर्ण रूप से अहिंसक लोगों की बनी हो। वह ऐसे लोगों को लेकर बनाई जाएगी, जो अहिंसा का ईमानदारी के साथ पालन करने का प्रयास करेंगे।''

गांधीजी को अपने द्वारा संगठित सत्याग्रह आंदोलनों के समय एक विशाल देश में चारों ओर फैले हुए स्त्री-पुरुषों का नेतृत्व करना पड़ा। उन्हें नियंत्रित करना तथा अहिंसा के पथ पर चलने के लिए प्रशिक्षित करना सरल काम नहीं था। फिर भी जिस तरह उन्होंने गांधीजी के मार्गदर्शन के अनुकूल आचरण किया, वह एक अचंभे की बात है।

सत्य और अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह इस मायने में नई चीज है कि सामाजिक तथा राजनीतिक अन्यायों को दूर करने के लिए बड़े पैमाने पर उसके प्रयोग का प्रयास मानव इतिहास में पहली बार किया गया। उसके परीक्षण की व्यापकता को देखते हुए उसकी कुछ अवस्थाओं या स्थानों में गलतियाँ होना अनिवार्य था। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि यह परीक्षण ही असफल हो गया और इसे छोड़ देना चाहिए।

गांधीजी ने कहा था, ''मेरा जीवन एक अनिवार्य इकाई है और मेरे सारे कार्यकलाप एक सूत्र में गुँथे हैं और उस सबका स्रोत मानवता के प्रति मेरा असीम प्रेम है।'' तुच्छ-से-तुच्छ जीवन को अपने बराबर समझकर प्यार करते हुए गांधीजी न तो कोई देवता और न कोई पैगंबर होने का दावा करते थे। वे केवल एक विनम्र सत्यान्वेषी थे और सत्य को प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध थे। उनका जीवन सत्य की प्राप्ति के लिए—अमूर्त सत्य नहीं बल्कि ऐसा सत्य, जिसका आचरण व्यवहार में हो सकता है—एक अनवरत साधना थी। ''और मैं अपनी साधना में अपने सभी साथी साधकों पर पूर्ण रूप से भरोसा करके उन्हें अपनी सारी बातें बतलाता हूँ, ताकि मैं अपनी गलतियों को जान सकूँ और उन्हें सुधार सकूँ।''

उनकी समूची जीवन-यात्रा सत्य की ओर कठिनाइयों से भरी हुई चढ़ाई थी। हर कदम पर उनकी दृष्टि व्यापक होती गई और अंततः वे अतिमानव से प्रतीत होने लगे। यदि उनके जीवन तथा विचारों ने लाखों-करोड़ों स्त्री-पुरुषों को प्रेरणा दी है तो इसका कारण यह था कि उनका जीवन एक खुली किताब की तरह था। उनके जीवन में कोई गुप्त बात नहीं थी और न वे ऐसी बातों को प्रोत्साहन ही देते थे।

अटूट सत्यानुराग उनके जीवन का सबसे बड़ा आग्रह था। और इसी से वे लोगों के दिल व दिमाग पर इतना गहरा प्रभाव डालने में सक्षम हो सके। इसी सत्यानुराग के कारण वे साधन की पवित्रता पर जोर देते थे और इसी वजह से वे पूर्व निर्धारित लक्ष्यों से चिपके नहीं रहते थे। उसी अनुराग के कारण वे अपनी हिमालय से बड़ी अथवा तिल-सी छोटी गलतियों को भी सार्वजनिक रूप से स्वीकार कर लेते थे।

असत्य का एक रूप है अन्याय। ''यही कारण है कि सत्य के प्रति लगाव की वजह से मैं राजनीति के क्षेत्र में उतरा हूँ। और मैं बिना किसी हिचक के, और फिर भी पूर्ण विनम्रता के साथ, कह सकता हूँ कि जो लोग यह कहते हैं कि धर्म का राजनीति से कोई संबंध नहीं है, वे धर्म का अर्थ नहीं समझते।''

गांधीजी के लिए धर्म एवं नैतिकता में कोई अंतर नहीं था। वे दोनों एक ही थे। ऐसा होना स्वाभाविक था, क्योंकि गांधीजी मुख्यतः एक कर्मयोगी थे। धार्मिक कार्यकलाप को जीवन के अन्य कार्यकलापों से अलग नहीं किया जा सकता।

''यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने धर्म के प्रति जितना आदर-भाव रखता है उतना ही वह दूसरे धर्मों के प्रति भी रखे, क्योंकि धर्मों का उद्देश्य एक-दूसरे के बीच अलगाव नहीं, बल्कि एकता उत्पन्न करना है।''

गांधीजी ने कहा था कि सत्य किसी एक ही धार्मिक ग्रंथ की संपत्ति नहीं है।

गांधीजी का हिंदुत्व रामायण के नीतिशास्त्र तथा उपनिषदों एवं भगवद्गीता के तत्त्व पर आधारित था। इन्हीं बुनियादी शिक्षाओं के अनुरूप उन्होंने अपने जीवन को ढाला। उनका मत था कि अच्छे कामों से बुद्धि शुद्ध होती है, जिसके फलस्वरूप ईश्वर का दर्शन होता है। ''मैं मानवता की सेवा के माध्यम से ईश्वर का दर्शन करने का प्रयास कर रहा हूँ; क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि ईश्वर न तो आकाश में है, न पाताल में, बल्कि वह सब में व्याप्त है।''

यद्यपि गांधीजी सच्चे हिंदू थे, तथापि उन्होंने अन्य धर्मों के ग्रंथों का आदर के साथ अध्ययन किया। इसलाम के भ्रातृभाव की तरह 'सरमन ऑन द माउंट' की उच्च नैतिकता भी उनके जीवन का एक अंग बन गई थी। और इसी तरह बौद्ध धर्म का प्रेम, विनय तथा शांति का संदेश भी।

सभी धर्म सार्वभौम हैं—इस सत्य की उन्होंने बारंबार घोषणा की और इस सत्य पर उन्होंने अपने जीवन में सचमुच अमल किया और उसे सही सिद्ध कर दिया।

परिणामतः उन्हें 'धर्म-परिवर्तन' के प्रयासों से घृणा थी। उन्होंने कहा, ''हमें हिंदू को बेहतर हिंदू बनने में, मुसलमान को बेहतर मुसलमान बनने में तथा ईसाई को बेहतर ईसाई बनने में अवश्य सहायता करनी चाहिए। हमें

अपने अंदर इस छिपे हुए दंभ को निकाल देना चाहिए कि हमारा धर्म ज्यादा सच्चा है और दूसरे का कम। अन्य सब धर्मों के प्रति हमारा रुख बिलकुल स्पष्ट तथा ईमानदारी का होना चाहिए।''

गांधीजी का विश्वास था कि प्रार्थना धर्म की आत्मा तथा सार है। अत: प्रार्थना मानव जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग होना चाहिए, क्योंकि यही एक माध्यम है, जिससे हमारे दैनिक जीवन में अनुशासन व संतुलन आता है।

कष्ट-पीड़ित जनता के प्रति गांधीजी की करुणा के पीछे न तो बड़प्पन या मेहरबानी का भाव था और न भावुकता का। गांधीजी की यह करुणा आम जनता के साथ उनके पूर्ण तारतम्य से उत्पन्न हुई थी, जिसका परिणाम यह हुआ कि ये उनकी निरंतर चिंता करते तथा उनके लिए कार्य करते रहे।

उनका यह पूर्ण विश्वास था कि गरीबी अधिकांश लोगों की किस्मत में अनिवार्य रूप से नहीं लिखी हुई है। उनका आदर्श यह था कि संपत्ति का वितरण उसके उत्पादकों में न्यायपूर्वक किया जाना चाहिए। कोई भी ऐसा किसान या श्रमिक नहीं होना चाहिए, जिसे जीवन की आवश्यक वस्तुएँ—रोटी, कपड़ा और मकान उपलब्ध न हो। साधारण जनता को ये आवश्यक वस्तुएँ अवश्य मिलनी चाहिए।

वे किसी भी प्रकार के शोषण के खिलाफ थे। वे अपने चारों ओर जो आर्थिक विषमता तथा सामाजिक अन्याय देखते थे, उसको दूर करने के लिए उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी।

उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी कि मैं विदेशी तथा देशी पूँजीवाद में किसी तरह का अंतर नहीं मानता। चूँकि वे अहिंसा में पूर्ण आस्था रखते थे, अत: वे पूँजीपतियों का अस्तित्व मिटाने के विरुद्ध थे। फिर भी, वे पूर्ण रूप से यह मानते थे कि शोषण समाप्त होना ही चाहिए। यह तभी संभव है, जबकि पूँजीपति अपने को श्रमिकों का ट्रस्टी समझे।

उनके अनुसार, ''श्रमिक अपनी मिलों के वैसे ही मालिक हैं जैसे कि हिस्सेदार, और जब मिल मालिक यह समझने लगेंगे कि श्रमिक भी मिल के उतने ही मालिक हैं जितने कि वे स्वयं, तब उनके बीच कोई झगड़ा नहीं रह जाएगा।'' वे लोगों की स्थिति में समानता लाना चाहते थे। ''श्रमिक वर्ग को इधर कई शताब्दियों से पृथक् तथा निम्न स्थिति में रखा गया है। उसको यह समझना चाहिए कि श्रम भी पूँजी है। जब श्रमिक समुचित रूप से शिक्षित व संगठित हो जाएँगे और अपनी ताकत को समझने लगेंगे, तब उन्हें पूँजी की ताकत द्वारा दबाया नहीं जा सकेगा।''

उनका मत था कि चूँकि पूँजी तथा श्रम एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं, अत: उनमें संघर्ष का कोई प्रश्न नहीं उठता। आवश्यकता इस बात की है कि पूँजीपति श्रमिकों पर रोब न जमाएँ।

यदि धनिक पूँजीपति न्यासी की तरह नहीं काम करते और गरीब श्रमिकों का शोषण करते ही रहते हैं, तो क्या किया जाए? इसका सही व अचूक उत्तर है— सत्याग्रह। अहिंसक तरीके से पूँजीपति नहीं, बल्कि पूँजीवाद नष्ट होगा; क्योंकि पूँजीपति अपने को उन लोगों का न्यासी समझेगा जिन पर वह अपनी पूँजी के निर्माण, संरक्षण तथा वृद्धि के लिए निर्भर है।

गांधीजी का मत था कि दान या खैरात लेनेवाले तथा देनेवाले दोनों का नैतिक पतन होता है।

गांधीजी यंत्रों के खिलाफ नहीं थे। वे मशीनों के पीछे पागल होने के खिलाफ थे। वे कहते थे, ''मैं विज्ञान के ऐसे हर आविष्कार की प्रशंसा करूँगा, जो सबके लिए हितकर हो।'' पर वे ऐसे यंत्रों के खिलाफ थे, जिनसे श्रमिक बेकार हो जाते हैं और शक्ति थोड़े से ही लोगों में केंद्रित हो जाती है। वे मशीनों की अंधाधुंध वृद्धि के खिलाफ थे। 'मशीनों की दिखावटी विजय' से वे प्रभावित नहीं होते थे।

किंतु वे सार्वजनिक उपयोग की उन वस्तुओं के लिए, जो मानव श्रम से नहीं तैयार की जा सकतीं, भारी मशीनों की आवश्यकता अवश्य समझते थे। लेकिन समाजवादी होने के नाते वे इस बात पर जोर देते थे कि उन सब भारी उद्योगों का, जिनमें बहुत बड़ी संख्या में लोग काम करते हैं, या तो राष्ट्रीयकरण होना चाहिए या राज्य द्वारा उनका नियंत्रण होना चाहिए। वे जनता के हित के लिए चलाए जाने चाहिए।

''ईश्वर ने मनुष्य को काम करके पेट भरने के लिए बनाया और कहा कि जो लोग बिना काम किए खाना खाते हैं, वे चोर होते हैं।'' रस्किन की 'अन टू दिस लास्ट' नामक पुस्तक पढ़ने के बाद गांधीजी ने जो धारणा बनाई थी वह टॉलस्टॉय के 'श्रम द्वारा रोटी' संबंधी लेखों से पुष्ट हो गई। इनके पक्ष में और प्रमाण उन्हें श्रीमद्भगवद्गीता के तीसरे अध्याय में मिला, जिसमें कहा गया है कि जो व्यक्ति बिना यज्ञ किए खाता है वह चोरी का भोजन करता है। गांधीजी ने इसकी व्याख्या यह की कि प्रस्तुत संदर्भ में 'यज्ञ' का अर्थ शारीरिक श्रम या 'श्रम द्वारा रोटी' ही हो सकता है। सभी मनुष्यों को, चाहे उनकी जो भी रुचि-शक्ति तथा योग्यता हो, 'श्रम द्वारा रोटी' कमाने के सिद्धांत का पालन अवश्य करना चाहिए। यह जीवन का नियम है और व्यक्ति के स्वास्थ्य, सुख तथा संतोष के लिए आवश्यक है। उनका कहना था कि हमारी बहुत सी वर्तमान सामाजिक बुराइयों का कारण यह है कि हम इस नियम का पालन नहीं करते। गांधीजी ने वचन तथा कार्य के जरिए श्रम के महत्त्व पर जोर दिया और वे किसी भी ऐसे श्रम को, जो सामाजिक दृष्टि से उपयोगी होता है, नीचा नहीं समझते थे।

हालाँकि गांधीजी समूची मानवता के प्रति सद्भावना रखते थे, फिर भी अपनी जन्मभूमि के प्रति उनका विशेष लगाव था। भारत उन्हें इसलिए प्रिय था, क्योंकि उसने युगों से कुछ सनातन सत्यों को व्यक्त किया है।

गांधीजी इस देश को एकता के सूत्र में बाँधनेवाले महान् राष्ट्रनायक थे। उन्होंने कहा कि यहाँ रहनेवाले लोग चाहे जिस धर्म के अनुयायी हों, सबका घर भारत ही है, सब इसके बराबरी के साझीदार हैं। यहाँ की महान् परंपराओं के सभी समान उत्तराधिकारी हैं। सबके अधिकार, सबके कर्तव्य समान हैं। धर्म ईश्वर और मनुष्य के बीच की व्यक्तिगत वस्तु है। सभी लोग पहले और अंत में भारतीय हैं, चाहे उनका निजी धर्म कुछ भी हो।

गांधीजी ने स्पष्ट चेतावनी दी कि प्रांतों के भाषावाद पुनर्गठन को भारत की जीवंत एकता के मार्ग में बाधक नहीं बनना चाहिए। ''यदि प्रत्येक प्रांत अपने आपको एक अलग प्रभुसत्ता-संपन्न इकाई मानने लगेगा तो भारत की स्वतंत्रता का कोई मतलब ही नहीं रह जाएगा, बल्कि उसकी स्वतंत्रता के साथ-साथ उन इकाइयों की भी स्वतंत्रता समाप्त हो जाएगी।'' बाहर की दुनिया हमें गुजराती, मराठी, तमिल आदि के रूप में नहीं बल्कि भारतीय के रूप में जानती है। इसलिए हमें विभाजक और विभेदकारी तत्त्वों को दृढ़ता से निरुत्साहित करना चाहिए और अपने को भारतीय समझना तथा भारतीयों की तरह व्यवहार करना चाहिए।

उन्हें स्वस्थ ढंग की प्रांतीयता स्वीकार थी, अन्यथा अलग-अलग राज्यों का कोई मतलब ही नहीं था। ''लेकिन हमारी प्रांतीयता को संकुचित और एकांगी नहीं होना चाहिए। उसे संपूर्ण देश के हित का साधक होना चाहिए, क्योंकि आखिरकार ये प्रांत देश के हिस्से ही तो हैं। प्रांत जो कुछ भी करे, वह संपूर्ण राष्ट्र के गौरव के निमित्त होना चाहिए।''

गांधीजी देश के करोड़ों लोगों की गरीबी व दुर्दशा देखकर व्यथित थे और उन्होंने अपनी सारी शक्ति उनकी अवस्था सुधारने में लगा दी। वे चाहते थे कि इस देश के करोड़ों लोगों के जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी होनी चाहिए और स्वतंत्र भारत में उत्तम जीवन बिताने के अवसर एवं स्वतंत्रता के वरदान सबको समान रूप से मिलने चाहिए।

गांधीजी का निश्चित मत था कि भारत शहरों में नहीं, गाँवों में बसता है। किसानों में उनकी अडिग आस्था थी। वे उन्हें धरती के सपूत और लोकतंत्र के आधार-स्तंभ मानते थे।

गांधीजी शहरों की तेजी से होनेवाली वृद्धि और विकास को देखकर बहुत चिंतित थे। इसे वे अस्वस्थ प्रवृत्ति मानते थे। शहरों को गाँवों का शोषण करते देखकर वे बहुत दु:खी होते थे और सीधे-सादे ग्रामीण जनों के प्रति शहरों में पले बुद्धिजीवियों की दंभपूर्ण करुणा को देखकर उनका मन बहुत व्यथित होता था। उनका दृढ़ विश्वास था कि अगर भारत को सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त करनी है तो यह स्वीकार करना होगा कि जनसाधारण शहरों में नहीं, गाँवों में; महलों में नहीं, झोंपड़ियों में ही रहेगा। ''करोड़ों लोग शहरों और महलों में कभी भी एक-दूसरे के साथ शांति से नहीं रह सकेंगे। उस अवस्था में तो उन्हें हिंसा और असत्य का ही सहारा लेना होगा।'' सत्य और अहिंसा पर ग्राम्य जीवन की सादगी के बीच ही पूर्णत: अमल किया जा सकता है।

गांधीजी के अनुसार, हमारे देश की विशालता, इसकी इतनी बड़ी आबादी, इसकी भौगोलिक स्थिति और जलवायु—सबने इसे ग्रामीण सभ्यता के ही उपयुक्त बनाया है। आज इस सभ्यता में अनेक दोष हैं, लेकिन ये ऐसे हैं जिन्हें दूर करने के लिए यदि कटिबद्ध होकर प्रयत्न करना है तो नई पीढ़ी के अधिक शिक्षित लोगों को ग्राम्य जीवन अपनाना होगा और ग्रामीणों को सिखाना होगा कि वे अपने स्वास्थ्य की रक्षा कैसे कर सकते हैं, अपने समय तथा धन का सदुपयोग कैसे कर सकते हैं। हम वर्षों से उनका शोषण करते रहे हैं। फलत: हमारे गाँव आज बरबाद हो गए हैं। भारत के प्रत्येक देशभक्त के सामने आज यही कर्तव्य है कि वह गाँवों की इस बरबादी को रोके, दूसरे शब्दों में यह कि वह भारतीय गाँव का पुनर्निर्माण करे, ताकि सबके लिए गाँवों में रहना सहज संभव हो सके।

उन्होंने बड़ी व्यथा के साथ देखा कि ग्रामीण लोग भी—ग्रामीणों में जो लोग पढ़े-लिखे हैं, वे भी—शहरी जीवन के प्रलोभन में पड़ गए हैं और गाँवों को छोड़कर शहरों में जा रहे हैं। इसलिए उन्होंने अपना ध्यान ग्रामीण शिल्प उद्योग के पुनरुद्धार पर केंद्रित किया, ताकि गाँव आत्मनिर्भर बन सके। उनका विचार था कि ग्रामीण लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शहरों पर नहीं, बल्कि गाँवों पर ही निर्भर रहना सीखें।

उन्होंने स्पष्ट देखा कि शहरों में जो धन-वैभव है, वह गरीब ग्रामवासियों के शोषण का परिणाम है। ''मैं खुद ही ग्रामीण हूँ, इसलिए मैं गाँवों की दशा से भलीभाँति परिचित हूँ। मैं ग्राम अर्थशास्त्र को जानता हूँ। आपसे सच कहता हूँ कि ऊपरवालों का भार नीचेवालों को कुचल रहा है। सबसे जरूरी बात यही है कि उनके कंधों से अपना यह भार उतार लीजिए।''

इसीलिए उन्होंने चरखा और खादी को इतना अधिक महत्त्व दिया। चरखा कुछ लोगों को शायद हास्यास्पद आर्थिक साधन प्रतीत हो। यदि गांधीजी ने भारतीय ग्रामवासियों की जीविका के लिए चरखे को एकमात्र साधन बनाया होता तो यह हास्यास्पद भी हो सकता था; लेकिन उन्होंने ऐसा कभी नहीं कहा। उनका उद्देश्य चरखे को कृषि के सहायक उद्योग के रूप में उसके प्राचीन स्थान पर पुन: प्रतिष्ठित करना था, ताकि जब खेती-बारी का काम न चल रहा हो, तब लोग कताई का काम करें। गांधीजी ने कहा कि चरखे के बल पर ग्रामवासी अपनी स्वल्प आय में कुछ वृद्धि कर सकते हैं और अपने कपड़ों के खर्च में कुछ बचत भी।

अंग्रेजों के भारत में आने से पहले कताई उद्योग सारे देश में फल-फूल रहा था; किंतु अंग्रेजों ने यहाँ आकर अपने आर्थिक स्वार्थ से प्रेरित होकर उसे नष्ट कर दिया। गांधीजी अब उस कुटीर उद्योग का पुनरुद्धार करना चाहते थे। गांधीजी के लिए यह पुनरुद्धार एक भूले-बिसरे और पुराने धंधे को पुनर्जीवित करना नहीं था। इसे तो वे एक स्वाभाविक, व्यावहारिक और सुलभ धंधा मानते थे, जिसके द्वारा करोड़ों लोग अपनी आय में वृद्धि कर सकते थे और साथ ही देश के धन को बाहर जाने से रोक सकते थे।

''मेरे लिए तो खादी भारतीय मानवता की एकता, इसकी धार्मिक स्वतंत्रता एवं समानता का प्रतीक है, और इसलिए जवाहरलाल नेहरू के काव्यमय शब्दों में खादी भारत की स्वतंत्रता की वरदी है।''

सच्ची स्वतंत्रता के फल का उपभोग करने के लिए हमें आत्मानुशासन के मर्म को समझना चाहिए। आत्मानुशासन सामूहिक स्वतंत्रता की पहली शर्त है। अनुशासन, सहिष्णुता और एक-दूसरे के प्रति सम्मान के भाव के बिना लोकतांत्रिक जीवन-पद्धति असंभव है।

''सबसे सच्ची और पूर्ण स्वतंत्रता वही है, जिसमें सबसे अधिक अनुशासन और विनम्रता है। जन्मजात लोकतंत्रवादी जन्मजात अनुशासनवादी भी होता है।''

गांधीजी वैयक्तिक स्वतंत्रता का महत्त्व स्वीकार करते थे। परंतु उनका कहना था कि मनुष्य चूँकि एक सामाजिक प्राणी है, इसलिए उसे अपनी इस स्वतंत्रता का प्रयोग बहुत ही संयम के साथ करना चाहिए। वैयक्तिक स्वतंत्रता के नाम पर अराजकता और उच्छृंखलता बिलकुल गलत और लोकतंत्र के विरुद्ध है। यह तो स्वतंत्रता के विनाश का रास्ता है।

''यदि हम लोकतंत्र की सच्ची भावना का विकास करना चाहते हैं तो असहिष्णुता को सर्वथा त्याग देना होगा। असहिष्णुता का मतलब कि हमें अपने उद्देश्य की सच्चाई में विश्वास नहीं है। असहिष्णुता तो स्वयं ही एक प्रकार की हिंसा है और सच्ची लोकतांत्रिक भावना के विकास में बहुत बड़ी बाधा है। हमें अपने विरोधी की बात सुनने को सदा तत्पर रहना चाहिए। यह तो आवश्यक है ही कि हम अपने विश्वासों और मान्यताओं के अनुसार निर्भर होकर काम करें; किंतु हमें अपना दिमाग बराबर खुला रखना चाहिए और अपनी धारणा गलत सिद्ध हो तो इसे स्वीकार करने से हिचकना नहीं चाहिए। इस प्रकार दिमाग को बराबर खुला रखने से हमारे अंदर जो सत्य है, उसे बल मिलता है और यदि उसमें कोई दोष होता है तो वह दूर हो जाता है।''

गांधीजी के जीवन और उनके विचारों का सारी दुनिया के लिए महत्त्व है। उनकी शक्ति धार्मिक व नैतिक शक्ति थी और उन्होंने मनुष्य की अंतरात्मा को जाग्रत् किया। उन्होंने धर्म, राष्ट्र या जातियों के बीच कोई भेद नहीं किया। वे एक महान् विश्व-प्रेमी थे।

❑

गांधीजी के जीवन-प्रसंगों में प्रतिबिंबित मैनेजमेंट सूत्र

ईश्वर में आस्था

गहरी अँधेरी रात थी, मोहनदास को बहुत डर लग रहा था। उसे हमेशा जब अँधेरा होता तब भूतों से डर लगता था। जब भी वह अँधेरे में अकेला होता, उसे इस बात का डर रहता कि भूत इस अँधेरे में किसी कोने में छिपा है और वह किसी भी समय उछलकर उसके ऊपर आ सकता है। रात इतनी गहरी थी कि अपने खुद के हाथ को भी देख पाना कठिन था।

मोहन को उस कमरे से दूसरे कमरे में जाना था। कमरे से जैसे ही बाहर की ओर उसने कदम बढ़ाया, उसके दिल की धड़कनें काफी तेज हो गईं। घर की बूढ़ी सेविका दरवाजे के पास खड़ी थी।

''बेटे, क्या बात है?'' उसने हँसते हुए पूछा।

''दाई, मैं डर रहा हूँ।'' मोहन ने कहा।

''मेरे बच्चे, तू डर रहा है; पर किससे डर रहा है?'' बूढ़ी सेविका ने पूछा।

''देखो, यहाँ कितना अँधेरा है!'' मोहन डरी और सहमी हुई आवाज में बोला, ''मुझे भूतों का डर है।''

दाई ने प्यार से उसके सिर को सहलाया और कहा, ''मेरी बात सुनो, जब भी तुम्हें डर लगे, भगवान् राम को याद करना, तुम्हारे पास किसी भी भूत के आने की हिम्मत नहीं होगी। तुम्हारे सिर का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा। राम तुम्हारी रक्षा करेंगे।''

रंभा नामक दाई के शब्दों से मोहन को हिम्मत मिली। राम को याद करते हुए वह कमरे से बाहर आया।

उस दिन के बाद न तो मोहन को डर लगा और न उसने अपने को अकेला महसूस किया। अब वे सभी खतरों से सुरक्षित थे।

इस विश्वास ने गांधीजी के हृदय में गहराई तक जड़ें जमा ली थीं, जिसने गांधीजी को जीवन भर शक्ति प्रदान की। उस समय भी जब हत्यारे की गोली से उनके शरीर के प्राण निकल रहे थे, राम का नाम उनके होंठों पर था।

नकल से इनकार

मोहनदास बचपन में बहुत शरमीले स्वभाव के थे। जैसे ही स्कूल में छुट्टी की घंटी बजती, वह अपनी किताबें समेटते और सीधे घर की ओर तेजी से चल पड़ते; जबकि दूसरे बच्चों में से कुछ खेलने में और कुछ खाने-पीने में व्यस्त हो जाते। मोहन के मन में एक भय था, दूसरे बच्चे उन्हें रोककर, उनका मजाक उड़ाकर अपना मनोरंजन कर सकते थे।

एक दिन विद्यालय निरीक्षक मि. गिल्स मोहन के स्कूल का निरीक्षण करने आए। उन्होंने अंग्रेजी के पाँच शब्द बच्चों से लिखने के लिए बोले। मोहन ने चार शब्द तो सही लिखे, लेकिन पाँचवाँ शब्द गलत था। मोहन के कक्षा अध्यापक ने निरीक्षक के पीठ पीछे मोहन को इशारा करते हुए कहा कि अपने पड़ोसी लड़के के द्वारा लिखे गए शब्दों को देखकर उस पाँचवें शब्द को ठीक कर लो। परंतु मोहन ने मन में इशारे को मानने से मना कर दिया। कक्षा के सभी बच्चों ने सभी पाँच शब्दों को ठीक-ठीक लिखा, किंतु मोहन के केवल चार शब्द ही ठीक थे।

निरीक्षक के चले जाने के बाद कक्षा के अध्यापक ने इसके लिए मोहन को डाँटा कि, ''मैंने तुम्हें अपने पड़ोसी लड़के की अभ्यास-पुस्तिका देखकर ठीक करने के लिए कहा था, फिर भी तुमने उसे ठीक क्यों नहीं किया?''

सभी बच्चे मोहन की इस नासमझी पर हँस पड़े।

उस शाम जब वे स्कूल से घर आए, अपने उस काम से असंतुष्ट और अप्रसन्न नहीं थे; क्योंकि वे जानते थे कि उन्होंने जो किया है, वही सही है। परंतु उन्हें यदि दु:ख था तो इस बात का कि अध्यापक के द्वारा नकल करने के लिए कहना क्या सही बात थी।

पश्चात्ताप

एक बार मोहन ने कुसंग में पड़कर पैसा खर्च कर डाला। उनके पास पैसा नहीं था। यह सोचकर कि बाद में दे दिया जाएगा, वह इस पैसे के देनदार बन गए।

उन्होंने बहुत सोचा, किंतु उनकी समझ में नहीं आया कि इन उधार के पैसों को किस तरह चुकाया जाए।

जब उनकी समझ में कोई उपाय नहीं आया तो उन्होंने हारकर सोने का एक गहना घर से चुरा लिया और उधार चुका दिया। इसके बाद उन्हें अपने उस कार्य से बहुत कष्ट हुआ। उन्होंने यह निश्चय किया कि वह अपने पिता को अपनी गलती के बारे में बता देंगे।

मोहन ने उन्हें एक पत्र लिखा और अपने अपराध को स्वीकार कर लिया। इससे उनके पिता अत्यंत प्रभावित हुए और उनकी आँखों में आँसू आ गए। इसके बाद मोहन ने निश्चय किया कि वह कभी चोरी नहीं करेंगे और हमेशा सच बोलेंगे। जीवन में अंतिम समय तक उन्होंने सत्य का साथ नहीं छोड़ा।

समय का मूल्य

मोहनदास बचपन से ही दृढ़ निश्चयी थे। एक बार ऐसा हुआ कि राजकोट में स्कूल के खेल के मैदान में वह देर से पहुँचे। खेल समाप्त हो गए थे और उनके सभी साथी खेल के मैदान से जा चुके थे।

दूसरे दिन प्रधानाध्यापक ने उनसे पूछा, ''तुम कल खेल में सम्मिलित क्यों नहीं हुए?''

मोहन ने कहा, ''सर, मेरे पास घड़ी नहीं है। आसमान में बादलों के कारण सूर्य के छिपे होने और रोशनी के अभाव में मैं समय का सही अनुमान नहीं लगा सका, इसलिए खेल के मैदान में देर से पहुँचा। जब मैं वहाँ पहुँचा तो सभी वहाँ से जा चुके थे।''

प्रधानाध्यापक बहुत बिगड़े और उन्होंने कहा, ''तुम झूठ बोलते हो।''

मोहनदास पर इस बात का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। हालाँकि उन्होंने झूठ नहीं बोला था, लेकिन समय पर न पहुँच सकने के कारण उन पर झूठ बोलने का आरोप लगा। उसी समय उन्होंने मन-ही-मन निश्चय किया कि अब आगे वे हमेशा समय का ध्यान रखेंगे और उन्होंने अपने इस निश्चय का पालन जीवन भर किया।

झूठ न बोलने का प्रण

बचपन से ही मोहनदास एक सीधे-सादे विद्यार्थी थे। उनकी माता का उनके चरित्र पर बहुत प्रभाव था। वे सदैव सत्य बोला करते थे।

एक दिन मोहनदास को अपने विद्यालय पहुँचने में देर हो गई। शिक्षक ने पूछा, ''मोहनदास, तुम्हें आने में देर क्यों हुई?''

मोहनदास ने मार पड़ने के डर से कहा, ''सर, मेरे पिताजी की तबीयत खराब हो गई है। मैं उनके लिए दवा लेने चला गया था, इसलिए मुझे देर हो गई।'' शिक्षक ने सोचा, यह बालक सदैव सच बोलता है, इसलिए ऐसा ही होगा।

मोहनदास जब स्कूल से घर पहुँचे तो उन्हें मालूम हुआ कि उनके पिता वास्तव में बीमार पड़े हैं। उन्हें आश्चर्य हुआ कि जब वे सुबह विद्यालय के लिए चले थे, तब पिताजी ठीक थे। उन्हें एकाएक यह क्या हो गया?

उन्होंने अपने पिता से कहा, ''पिताजी, आपकी तबीयत कैसे खराब हो गई?''

उनके पिता बोले, ''पता नहीं बेटा! दोपहर को एकदम घबराहट हुई और बुखार चढ़ आया।''

यह सुनकर मोहनदास सोच में पड़ गए। उन्हें अपने शिक्षक को बताई गई झूठी बात याद हो आई। मोहनदास को बहुत ग्लानि हुई। उन्होंने पहली बार झूठ बोला था। ईश्वर ने उन्हें झूठ बोलने का दंड पिता को बीमार करके दे दिया। उनका दिल पश्चात्ताप से व्याकुल होने लगा। वे तुरंत अपने पिता के पास गए और अपने मन की बात बता दी।

उनके पिता बोले, ''तुमने अपने गुरु से झूठ बोला है। जाओ, उनसे ही क्षमा माँगो।''

दूसरे दिन मोहनदान विद्यालय समय से पहले पहुँचे और अपने शिक्षक से झूठ बोलने की बात बता दी।

शिक्षक ने कहा, ''तुमने दंड के डर से झूठ बोला, यह ठीक नहीं किया। परंतु यदि तुम सच्चे मन से पश्चात्ताप कर रहे हो तो मैं तुम्हें क्षमा कर दूँगा। किंतु वचन दो कि कभी भी असत्य का सहारा नहीं लोगे।''

मोहनदास ने तब प्रण किया कि प्राण भले चले जाएँ, परंतु वे कभी झूठ नहीं बोलेंगे। जीवनपर्यंत उन्होंने इस वचन का पालन किया।

आदर्श मानव

काका कालेलकर गांधीजी के अधिक घनिष्ठ थे। उनसे किसी विदेशी ने पूछा, ''गांधीजी का देश के हर वर्ग पर इतना प्रभाव किन कारणों से पड़ा?''

काका ने कहा, ''वे अपना जीवन संयम के साथ जीते हैं। जो मन में है, वही उनकी बातों में है। वे अपने क्रिया-कलापों को सार्वजनिक हित में लगाए रहते हैं। वे वही कहते हैं, जो करते हैं। इसीलिए वे दुनिया भर में असंख्य लोगों के लिए एक अच्छे और सच्चे मनुष्य की तरह अनुकरण करने योग्य हैं।''

मैनेजमेंट गुरु बनने के लिए ये मूल सिद्धांत हैं, जिन्हें गांधीजी ने सदैव अपनाया।

मानवीय एकता के समर्थक

वर्ष 1936 में गांधीजी छुआछूत निवारण हेतु देशभर में यात्राएँ कर रहे थे। उड़ीसा के एक कस्बे में वे ठहरे हुए थे।

वहाँ पंडितों का एक दल उनसे शास्त्रार्थ करने आ गया। वे कह रहे थे, ''शास्त्र में छुआछूत का समर्थन है।''

गांधीजी ने पंडितों की मंडली को सम्मानपूर्वक बिठाया और कहा, ''पंडितजनो, मैंने शास्त्र तो पढ़ा नहीं, इसलिए आपसे हार मान लेता हूँ; पर यह विश्वास करता हूँ कि संसार के सब शास्त्र मिलकर भी मानव एकता के सिद्धांत को झुठला नहीं सकते।

''मानवता एक तरफ और आपके शास्त्र एक तरफ। मेरा धर्म तो यही है कि छुआछूत बंद हो। और मरते दम तक मैं इस पर अडिग रहूँगा।''

उनकी स्पष्ट अभिव्यक्ति सुनकर लज्जित पंडित-मंडली उनकी बात का कोई उत्तर न देकर वापस लौट गई।

अतिथि सद्भावना

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी ने किसी प्रसंग में चौदह दिन का जल-उपवास किया। चार दिन बीतने पर उनके एक जर्मन साथी केलनबेक का तार मिला कि मैं अमुक गाड़ी से आपकी देखभाल के लिए आ रहा हूँ।

गांधीजी उपवास के पाँचवें दिन अपने साथियों सहित 3 मील चलकर स्वागत के लिए स्टेशन पहुँचे और उन्होंने कहा, ''आपकी सद्भावना के लिए मेरे मन में जो कृतज्ञता उपजी, यह उसी की परिणति है, जो मुझे ताकत भी दे सकी और यहाँ तक खींच लाई।''

श्रम का मूल्य

बापू के पैरों में बिवाई फट गई थी। बा गरम पानी से उसे धो रही थीं। पानी बेकार न जाने पाए, इसलिए बापू की हिदायत के अनुसार उसे इधर-उधर नहीं, पौधों में ही डालती थीं।

पैरों को धोने के बाद बा ने उस दिन पानी गुलाब के पौधों में डाला।

बापू बहुत देर तक गुलाबों को नकारात्मक दृष्टि से देखते रहे। बा ने कारण पूछा तो बापू ने कहा, ''सुंदर होते हुए भी यह फूल मुझे काँटों जैसे ही लगते हैं। इनके स्थान पर यदि साग-सब्जी उगाई गई होती तो उससे किसी का पेट तो पलता, श्रम का कुछ सार्थक परिणाम तो हाथ आता।''

करुणा और प्रेम

साबरमती आश्रम की बात है। एक दिन रात को चोर आ गया। चोर नासमझ था, नहीं तो आश्रम में चुराने के लिए भला क्या था!

संयोग से कोई आश्रमवासी जाग गया। उसने धीरे से कुछ और लोगों को जगा दिया। सबने मिलकर चोर को पकड़ लिया और एक कोठरी में बंद कर दिया।

व्यवस्थापक ने सुबह यह खबर बापू को दी और चोर को उनके सामने पेश किया। बापू ने निगाह उठाकर उसकी ओर देखा। वह नौजवान सिर झुकाए आतंकित खड़ा था कि बापू उससे नाराज हैं और हो सकता है कि उसे पुलिस को सौंप दें।

बापू ने जो किया, उसकी तो उसने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की होगी।

बापू ने उससे पूछा, ''क्यों, तुमने नाश्ता किया?''

कोई उत्तर न मिलने पर उन्होंने व्यवस्थापक की ओर प्रश्न भरी मुद्रा में देखा।

व्यवस्थापक ने कहा, ''बापू, यह तो चोर है! नाश्ते का सवाल ही कहाँ उठता है।''

बापू का चेहरा गंभीर हो गया। दु:ख भरे स्वर में बोले, ''क्यों, क्या यह इनसान नहीं है? इसे ले जाओ और नाश्ता कराओ।''

व्यवस्थापक जिसे चोर मानकर लाए थे, अब वह एक क्षण में इनसान बन गया था। उसकी आँखों से प्रायश्चित्त के आँसू बह रहे थे।

सद्भावना का मंत्र

एक बार गांधीजी कहीं पदयात्रा पर जा रहे थे। उनके साथ बहुत सारे लोग चल रहे थे। उन्हीं में एक कुष्ठ रोगी भी था, जिसे देखकर लोग मुँह बना रहे थे। अत: वह बेचारा संकोच के मारे एकदम पीछे चल रहा था।

सब लोग तो बहुत तेजी से चल रहे थे, अत: गांधीजी के साथ सभी काफी आगे निकल गए; पर कुष्ठ रोगी घाव के कारण अधिक नहीं चल सका और रास्ते में ही घाव से व्याकुल होकर बैठ गया। किसी ने उसकी ओर ध्यान भी नहीं दिया और न ही गांधीजी से इस संबंध में कुछ कहा। परंतु इतनी भीड़ के बावजूद बापू का ध्यान कुष्ठ रोगी की ओर था।

थोड़ी दूर जाने पर जब उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो उन्हें वह नहीं दिखाई पड़ा। अत: अन्य लोगों से आगे बढ़ने के लिए कहकर वे पीछे लौट पड़े। थोड़ा पीछे जाने पर उन्हें एक पेड़ के नीचे पीड़ा से कराहता वह रोगी दिखा। गांधीजी तुरंत उसके पास गए और बोले, ''भाई, मुझे माफ करना। तेज चलने के कारण मैंने तुम्हारे कष्ट

की ओर ध्यान नहीं दिया; लेकिन कम-से-कम तुम तो मुझे आवाज देकर रोक लेते, ताकि मैं तुम्हारे साथ धीरे-धीरे चलता।''

गांधीजी की बात सुनकर वह भाव-विह्वल होकर रोने लगा। उसने कहा, ''आप जैसे महात्मा की दया से ही तो हम पापी भी समाज में स्थान पा सके हैं। वरना...''

गांधीजी ने उसे आगे बोलने नहीं दिया और कहा, ''नहीं भाई! न मैं कोई महात्मा हूँ और न तुम्हारे ऊपर दया ही कर रहा हूँ, बल्कि इनसान होने के नाते एक इनसान के प्रति केवल अपने कर्तव्य का पालन कर रहा हूँ।''

ऐसा कहकर गांधीजी ने अपनी धोती फाड़कर उस घाव पर पट्टी बाँध दी और फिर उसे सहारा देकर पदयात्रा पर निकल पड़े।

गांधीजी की कुष्ठ रोगी के प्रति ऐसी सद्भावना देख अपनी ही धुन में आगे बढ़ जानेवाले लोगों की गरदन शर्म से झुक गई।

पर्यावरण-प्रेम

गांधीजी को प्रकृति और पर्यावरण से भी बड़ा प्रेम था। वे फुरसत के क्षणों में जंगल में जाकर उसकी शोभा को देखते। कई बार उन्होंने जंगल में पहुँचकर नीम, आम और चंदन के बीज बोए। वे हमेशा प्रकृति को हँसते-मुसकराते देखना चाहते थे।

वे जब यरवदा जेल में थे तो किसी कारणवश उन्हें नीम की दातून मिलनी बंद हो गई। इस पर काका कालेलकर ने कहा, ''बापू, यहाँ तो नीम के अनेक पेड़ हैं। मैं आपको प्रतिदिन दातून ला दिया करूँगा, आप परेशान न हों।''

फिर दूसरे दिन वे चार-पाँच दातून ले आए। उन्होंने एक दातून के एक छोर की कूची बनाई। उसे प्रयोग में लाने के बाद बापू बोले, ''अब इसका कूचीवाला भाग काट डालो और इसकी फिर नई कूची बना दो।''

यह सुनकर काका कालेलकर विस्मय के साथ बोले, ''लेकिन बापू, यहाँ तो प्रतिदिन नई दातून आसानी से मिल सकती है।''

बापू बोले, ''यह तो मैं भी जानता हूँ, लेकिन हमें इसका अधिकार नहीं है। जब तक एक दातून बिलकुल सूख न जाए, हम उसे कैसे फेंक सकते हैं। प्रकृति को व्यर्थ में नष्ट नहीं करना चाहिए। प्रकृति को सुरक्षित रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है।''

महात्मा बनने के उपाय

गांधीजी के आश्रम में सफाई और व्यवस्था का काम हर आदमी को करना आवश्यक था। एक बार समाज-सेवा के प्रति समर्पित बालक उनके आश्रम में आकर रहने लगा। सफाई और व्यवस्था के काम उसे भी दिए गए। उन्हें वह लगन के साथ करता भी रहा। जो उससे कहा गया, उसे उसने जीवन का अंग बनालिया।

जब आश्रम में रहने का समय पूरा हुआ तो गांधीजी से उसने भेंट की और कहा, ''बापू, मैं महात्मा बनने के गुण सीखने आया था, पर यहाँ तो सफाई व्यवस्था के साधारण काम ही करने को मिले। महात्मा बनने के लिए न तो कोई बात बताई गई और न उसका अभ्यास कराया गया।''

बापू ने सिर पर हाथ फेरा, समझाया और कहा, ''बेटे, तुम्हें यहाँ जो संस्कार मिले हैं, वे सब महात्मा बनने के लिए हैं। जिस लगन से सफाई तथा छोटी-छोटी बातों में व्यवस्था से जुड़कर बुद्धि का विकास कराया गया, वही बुद्धि मनुष्य को महामानव बनाती है।''

शालीनता

गांधीजी बंगाल के गवर्नर के.सी. साहब से मिलने गए। जब गांधीजी बात करने के बाद अपने निवास की तरफ जाने लगे, तब गवर्नर बापू को पहुँचाने राजभवन में नीचे तक आए और उनको कार तक पहुँचाया गया। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। उस समय गवर्नर का पद व गरिमा बहुत अधिक थी और यह अत्यंत आश्चर्य की बात थी कि गवर्नर ने स्वयं गांधीजी को नीचे तक छोड़ा था। इसका कारण यह था कि गांधीजी जिससे भी मिलते थे, उस पर उनकी शालीनता का अमिट प्रभाव पड़ता था।

उस दिन के.सी. साहब ने अद्‌भुत दृश्य देखा। उनकी कोठी के सभी सेवक, जो लगभग 200 थे, सभी नीचे हॉल में हाथ जोड़े गांधीजी के दर्शन के लिए खड़े थे। उन सभी के कपड़े भी ठीक नहीं थे। उन्हें इस तरह की वेशभूषा में लाट साहब के सामने जाने का साहस नहीं था। किंतु उन्होंने कभी सोचा भी न था कि गवर्नर साहब गांधीजी के साथ नीचे आ जाएँगे। जब इन लोगों ने गांधीजी को गवर्नर साहब के साथ देखा तो वे सभी घबरा गए।

के.सी. साहब को भी उन्हें देखकर बड़ी हैरानी हुई। उन्होंने राजभवन के सेवकों की ओर हाथ उठाकर कहा, ''मिस्टर गांधी, यह देखिए, मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैंने इन लोगों को यहाँ इकट्‌ठा होने के लिए नहीं कहा।''

उन सेवकों में हिंदू और मुसलमान दोनों ही थे।

छोटी बातों का महत्त्व

यह घटना सन् 1945 की है। जब गांधीजी गवर्नर के.सी. साहब से मिलने गए थे। तब गांधीजी के मित्र सतीश बाबू ने उनसे कहा कि आलू बोने का समय एक हफ्ते बाद समाप्त हो जाएगा, किंतु आलू के बीज किसानों को उपलब्ध नहीं हो पा रहे हैं। आलू के बीज पर कंट्रोल था और वे बाजार में नहीं मिलते थे।

व्यापारियों ने अधिक पैसा कमाने के लिए आलू के बीजों को जमा करके रोक लिया था।

जब गांधीजी को यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने यह विचार नहीं किया कि इतनी छोटी सी बात को गवर्नर साहब को क्यों लिखा जाए। वे गरीबों और किसानों की समस्या को इतना महत्त्व देते थे कि उन्हें यह बात छोटी और मामूली नहीं लगी। उन्होंने तुरंत गवर्नर के.सी. साहब को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने कहा कि आलू बोनेवालों की सहायता की जाए तो अच्छा होगा।

जब गवर्नर को गांधीजी का पत्र मिला तो उन्हें अत्यंत आश्चर्य हुआ। फिर भी, गांधीजी की बात को वे कैसे टाल सकते थे!

उन्होंने तुरंत अपने सेक्रेटरी से कहा कि आलू के बीजों का प्रबंध आज ही कर दिया जाए, क्योंकि इसकी वजह से मिस्टर गांधी परेशान हैं।

सचिव ने तुरंत एक अन्य अधिकारी को बुलाया और कहा कि आलू के बीज के वितरण का प्रबंध किया जाए। जब गांधीजी को यह बात मालूम हुई तब वे बहुत प्रसन्न हुए।

हरिजन बालक का दान

यह घटना उस समय की है, जब गांधीजी जबलपुर में एक बड़ी सभा में छुआछूत निवारण के लिए और अस्पृश्य भाइयों को स्नेह के साथ अपनाने के लिए भाषण देने आए थे।

भाषण समाप्त होने के बाद चंदा माँगने की बारी आई। सभा में आए लोग दिल खोलकर रुपया-पैसा और गहने-जेवर दान करने लगे।

उसी समय एक हरिजन बालक डरते-डरते मंच पर पहुँचा। वह बापू के एक सहयोगी एवं साथी के पास गया।

बापू के साथी ने पूछा, ''बेटे, क्या चाहते हो?''

बालक बोला, ''मैं बापू को कुछ भेंट देना चाहता हूँ।''

बापू के साथी ने मुसकराते हुए पूछा, ''बेटे, तुम क्या भेंट लाए हो?''

बालक ने जेब से काँच की एक गोली निकाली और बापू के साथी की ओर बढ़ा दी।

बापू ने काँच की गोली लेकर उसे उलट-पुलटकर देखा, इसके बाद जोर से हँस पड़े।

बालक सहम गया कि कहीं बापू ने गोली लेने पर बुरा तो नहीं माना। पर उसके पास देने के लिए इसके अलावा कुछ भी नहीं था। यह गोली उसके लिए अत्यंत प्रिय वस्तु थी।

लड़के ने डरते हुए बापू की ओर देखा। धीमी और सहमी आवाज में कहा, ''मेरे पास पैसे नहीं हैं।''

बापू ने प्यार से उसकी पीठ थपथपाई और कहा, ''पैसे नहीं हैं तो क्या हुआ, यह गोली पैसे से कम नहीं है।''

बालक का चेहरा खुशी से खिल उठा।

भूल सुधार

दिसंबर 1938 में सेवा ग्राम में स्काउटों की कवायद का कार्यक्रम रखा गया था। बापू के हाथों झंडा फहराया जाना था। झंडा फहराते समय बापू ने देखा कि झंडे के प्रतीक के साथ अंग्रेजी में लिखा गया था।

बापू ने कहा, ''मैं यह तो समझ ही नहीं सकता। अंग्रेजी भाषा ने हमारे दिल व दिमाग में ऐसा स्थान प्राप्त कर लिया है कि हम अपने झंडे के संबंध में भी अंग्रेजी के बिना काम नहीं चला सकते। यदि हम हिंदी में लिखते तो क्या इस झंडे का महत्त्व कम हो जाता? मुझे यदि मालूम होता कि झंडे पर अंग्रेजी में लिखा है तो मैं यहाँ आना स्वीकार ही न करता। मेरी बात समझ में आ गई हो तो अभी से यह भूल सुधार कर लो और हिंदी में लिखवा लो।''

सरलता

गांधीजी महान् नेता थे। उनका जीवन बिलकुल सादा व सरल था। वे कभी अपने आपको बहुत बड़ा या महान् व्यक्ति नहीं समझते थे।

एक बार गांधीजी पूर्वी बंगाल की यात्रा पर थे। एक दिन उन्हें नाव से लोहागंज जाना था, अत: नाव का प्रबंध किया गया। नाव एक जमींदार की थी। गांधीजी मालीकुंडा से लोहागंज चले। मार्ग में उस जमींदार का घर भी पड़ता था। गांधीजी का उस कस्बे में रुकने का कोई कार्यक्रम नहीं था। गाँव के समीप जब नाव आई तो वह जमींदार नदी के किनारे हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

गांधीजी ने नाव रुकवाई और पूछा, ''क्या बात है?''

इस पर वह बोला, ''घर की कुछ महिलाएँ आपके दर्शन करना चाहती हैं। यदि आप घर चलें तो बहुत अच्छा होगा।''

गांधीजी के साथ जा रहे एक व्यक्ति को यह बात अच्छी नहीं लगी। वह तपाक से बोला, ''आप लोगों ने पहले अनुमति क्यों नहीं ली? ऐसे हर जगह नाव रोकना और हर किसी से मिलना गांधीजी के लिए संभव नहीं। गांधीजी बहुत बड़े नेता हैं। वे बहुत व्यस्त हैं, इसलिए मिलने नहीं आ सकते।''

यह सुनकर गांधीजी मुसकराए और बोले, ''नहीं भाई, नहीं, मुझे मिलने में आपत्ति नहीं। यदि मेरे ही देश की महिलाएँ मुझसे मिलना चाहती हैं तो मैं क्यों न मिलूँ? उसमें मान-सम्मान का प्रश्न ही नहीं है।''

ऐसा कहकर गांधीजी ने नाव रुकवाई और महिलाओं से मिलने गए।

उनकी सरलता देखकर सब आश्चर्यचकित रह गए।

त्याग

कर्नाटक के उडुपी नामक स्थान पर पहुँचने पर गांधीजी के स्वागत में एक मानपत्र पढ़ा गया।

वह मानपत्र हिंदी में था। उसे एक छोटी सी लड़की ने पढ़ा। उसका नाम था निरुपमा। निरुपमा ने उसे इतने सही ढंग से पढ़ा कि बापू अत्यंत प्रसन्न हुए। उन दिनों कर्नाटक में हिंदी का प्रचार बहुत कम था।

निरुपमा मानपत्र पढ़ चुकी तो बापू की दृष्टि उसके गहनों की ओर गई। उन्होंने कहा, ''बेटी, क्या तुम अपने कुछ गहने मुझे दोगी?''

निरुपमा संकोच में पड़ गई। वह कुछ न बोली। पर बापू तो उससे गहना चाहते थे। उन्होंने फिर गहनों को माँगा। निरुपमा ने बेमन से अपनी चूडियाँ और हार उतारकर दे दिया।

बापू ने देखा कि निरुपमा खुशी से दान नहीं कर रही है और उसके चेहरे पर उदासी है। वे उसके माता-पिता से बोले, ''निरुपमा का मन गहनों में लगा है, इसलिए मैं इन्हें नहीं लूँगा।''

और उन्होंने हार व चूडियाँ निरुपमा के माता-पिता को दे दीं।

घर आकर माता-पिता ने कहा, ''तुमने थोड़े से गहनों के लिए गांधीजी को निराश कर दिया।''

निरुपमा को लगा कि उससे बहुत बड़ी भूल हुई है। उसे बापू के माँगने पर एक-दो क्या सभी गहने दे देने चाहिए थे। वह माता-पिता के साथ बापू के पास वापस गई। उसने अपनी चूडियाँ और हार देते हुए कहा, ''बापू, इसे ले लीजिए।''

बापू ने कहा, ''पर मुझे कैसे मालूम होगा कि गहने देने के बाद तुम दु:खी नहीं हुईं?''

निरुपमा ने विश्वास भरे स्वर में कहा, ''आप इन्हें ले लीजिए। मैं आपके पास रहूँगी, जिससे आपको विश्वास हो जाए कि मैं दु:खी नहीं हूँ।''

बापू ने गहने ले लिये। निरुपमा दो दिन बापू के साथ रही। वह उन दो दिनों में बापू के साथ रहते हुए प्रसन्न दिखाई दे रही थी।

ऊँच-नीच में भेद नहीं

गांधीजी छुआछूत का निवारण करना चाहते थे। उन्होंने कहा, ''छुआछूत हिंदू धर्म का कलंक है।'' उन्होंने अछूतों को 'हरिजन' नाम दिया और उनकी सेवा में अपने दिन-रात एक कर दिए।

बापू ने अछूतों के लिए चंदा माँगते हुए सारे देश में भ्रमण किया। वे हरिजनों के लिए कुएँ व मकान बनवाते तथा सुविधाएँ जुटाने में जीवन भर लगे रहे।

उनके अथक प्रयत्न से हरिजनों की दशा में कुछ सुधार भी हुआ। पर अपनी रूढ़िवादी मान्यताओं में जकड़े कट्टर हिंदुओं के मन में अब भी उनके लिए घृणा थी। हालत यहाँ तक पहुँची कि बापू ने हरिजनों के प्रति अच्छा व्यवहार किए जाने के लिए तीन सप्ताह तक उपवास करने का निश्चय किया।

यह बात सन् 1933 की है। बापू के उपवास की बात देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक बहुत जल्दी फैल गई। देश के लोग उनके इस निश्चय से चिंतित हो गए। बड़े-बड़े नेता और अन्य लोग गांधीजी के पास

दौड़ते हुए आए। देश-विदेश से हजारों चिट्ठियाँ और तार आए, जिनमें बापू से प्रार्थना की गई थी कि वह उपवास न करें।

बापू बूढ़े हो गए थे। देश की आजादी के लिए दिन-रात मेहनत कर रहे थे। इस पर भी वे अपने थके-बूढ़े शरीर को पूरे 21 दिनों बिना भोजन के रखना चाहते थे। लोगों को डर था कि बापू के लिए यह उपवास अत्यंत कठिन व असहज होगा और ऐसा भी हो सकता है कि लोगों को उनका बिछोह सहना पड़े।

पर बापू अपने निर्णय से डिगे नहीं। वे जिएँगे या मरेंगे, उससे बेपरवाह थे। वे सत्य के उपासक थे। उसके लिए वे अपने प्राण भी दे सकते थे। उन्होंने एक बार यदि कोई प्रतिज्ञा कर ली तो उसे निभाना भी सीखा था।

उपवास के पहले शाम के वक्त एक हरिजन लड़का बापू से मिलने आया। बापू जरूरी कामों में लगे रहे, इसलिए वह घंटों बाहर बैठा प्रतीक्षा करता रहा। वह लड़का छह महीने पहले भी बापू के पास आया था। उसने बापू से पढ़ाई के लिए कुछ धन दिए जाने की प्रार्थना की थी। बापू ने उससे वादा किया था कि अगर वह परीक्षा पास कर लेगा और हेडमास्टर से प्रमाण-पत्र लाएगा तो उसे मदद दी जाएगी।

आज वही लड़का बापू से मिलने के लिए बाहर बैठा था।

बापू के सचिव महादेव भाई ने कहा, ''बापू, एक हरिजन लड़का काफी देर से बाहर बैठा है। वह आपसे मिलना चाहता है।''

बापू ने कहा, ''इस समय मुझे एक मिनट की भी फुरसत नहीं है। वह लड़का क्यों मिलना चाहता है?''

''वह सिर्फ एक मिनट बात करना चाहता है। आपने उससे कुछ वादा किया था, उसी के लिए वह मिलना चाहता है।''

बापू ने लड़के को अंदर बुलाया। लड़के ने आकर बापू के चरणों में फूल चढ़ाए और प्रणाम करके बैठ गया।

बापू उसे देखते ही पहचान गए और बोले, ''तुम्हें मदद मिलेगी। मैं इसके लिए दूसरे लोगों को लिख दूँगा।''

''लेकिन मुझे दूसरे लोगों पर विश्वास नहीं है।'' लड़का गंभीरता से बोला।

''क्यों?'' बापू ने आश्चर्य से पूछा।

''इसलिए कि आपको भी दूसरों पर विश्वास नहीं है।''

''क्या मतलब?'' बापू ने पूछा।

लड़का फफककर रो पड़ा, ''आपने ही तो कहा है कि आपके साथी पवित्र नहीं हैं। आपके आसपास पवित्रता नहीं है। इसीलिए आप उपवास करके प्राण छोड़ने जा रहे हैं।''

बापू एक क्षण के लिए अवाक् रह गए।

लड़का रोते हुए बोला, ''मैं अपने लिए मदद लेने नहीं, आपको उपवास करने से रोकने आया हूँ। आखिर आप हम अनाथों को छोड़कर क्यों जा रहे हैं?''

बापू ने मुसकराकर लड़के की पीठ थपथपाई और बोले, ''तुम यह क्यों कहते हो कि मैं तुम्हें छोड़कर जा रहा हूँ? मैं कहीं नहीं जाऊँगा।''

लड़के ने कहा, ''हमें यह कैसे विश्वास हो कि आप मुझे छोड़कर नहीं जाएँगे?''

बापू ने कहा, ''हम आपस में एक वादा कर लें। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि इक्कीस दिन के उपवास के बाद भी जिंदा रहूँगा; पर तुम्हें भी एक वादा करना होगा।''

''वह क्या?'' लड़के ने पूछा।

''वह यह कि उपवास के समाप्त होने पर 29 मई के दिन तुम नारंगी लेकर आना। मैं उसी का रस पीकर उपवास तोड़ूँगा।''

लड़के की आँखें खुशी से चमक उठीं। उसने कहा, ''यह ठीक रहेगा।''

इसके बाद बापू ने इक्कीस दिन का उपवास किया। देश के सभी लोग उनकी जिंदगी के लिए भगवान् से प्रार्थना करते रहे। उपवास 29 मई को सकुशल समाप्त हुआ।

उपवास समाप्त हो चुका था। बापू उस हरिजन लड़के की प्रतीक्षा कर रहे थे, जिसने एक नारंगी लेकर आने का वादा किया था। बापू के आसपास इकट्ठे सभी लोग उस लड़के की प्रतीक्षा बेचैनी के साथ कर रहे थे, पर वह न आया। समय व्यतीत हो रहा था। आखिर में विवश होकर लेडी ठाकर्सी ने अपने हाथ से संतरे के रस का गिलास बापू को दिया। बापू ने उसे पीकर अपना उपवास तोड़ा।

सभी सोच रहे थे कि वह हरिजन लड़का क्यों नहीं आया? उसने अपना वादा क्यों तोड़ दिया?

कुछ दिनों बाद वह लड़का आया। बापू के सचिव महादेव भाई ने उसे देखते ही कहा, ''उस दिन तुम नहीं आए?''

लड़के ने लज्जित होकर कहा, ''उस दिन मुझे कुछ देर हो गई थी।''

''क्यों?''

''मैं एक जगह काम करता हूँ। वहाँ से समय पर छुट्टी नहीं मिली।''

''तो तुम छुट्टी मिलते ही आ जाते।''

लड़के ने अटकती आवाज में कहा, ''मेरा साहस टूट गया था। मुझे विश्वास ही न हुआ कि इतने बड़े-बड़े लोगों के सामने बापू मुझ हरिजन लड़के के हाथ से संतरे का रस लेंगे। ऐसा सोचते हुए उस समय मेरे हाथ-पैर काँप रहे थे।''

महादेव भाई को उस लड़के का उत्तर सुनकर बड़ा दुःख हुआ।

गांधीजी ने उस लड़के को धन की मदद दिला दी। उन्हें भी लड़के की बात सुनकर अत्यंत पीड़ा हुई।

अपनी गलती स्वयं सुधारें

गांधीजी का यह मानना था कि मनुष्य समाज की बुनियादी इकाई है। यदि हममें से हर व्यक्ति स्वयं का सुधार करने की चेष्टा करे तो समाज अपने आप सही हो जाएगा। गांधीजी दैनिक जीवन की छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी बातों में निरंतर सजग रहे और अपने सिद्धांतों पर मजबूती से चलते रहे।

यरवदा जेल में गांधीजी एक पट्टे का तकिया लगाकर बैठते थे। उस पट्टे को वे दीवार से सीधा लगाकर रखते थे।

एक दिन महादेव भाई ने उनसे कहा, ''बापू, यदि आप पट्टे को कोण बनाकर रखें तो वह गिरेगा नहीं और आराम भी अधिक मिलेगा।''

गांधीजी ने हँसते हुए कहा, ''आराम तो मिलेगा, पर अच्छाई तो सीधा रखने में ही है। इससे कमर और रीढ़ सीधी रहती है।''

यह नियम है कि किसी वस्तु को सीधा रखें तो उसके सहारे सभी वस्तुओं को सीधा रहना पड़ेगा और यदि टेढ़ा रखा जाए तो फिर दोषों को उसमें प्रवेश करने की जगह मिल जाती है।

भूल का प्रायश्चित्त

गांधीजी का छुआछूत निवारण का दौर चल रहा था। वे नागपुर के पास भ्रमण कर रहे थे। एक दिन गांधीजी के हाथ पोंछने का रूमाल पिछले पड़ाव पर छूट गया। शायद सूखने के लिए फैलाया गया था, वहीं रह गया।

गांधीजी को जब यह मालूम हुआ तब वह कुछ देर तक सोचते रहे। इसके बाद उन्होंने पूछा, ''वह कितने दिनों तक चलता?''

महादेव भाई ने बताया, ''चार महीने तक चलता।''

''तो फिर चार महीने मैं बिना रूमाल के रहूँगा। भूल का यह प्रायश्चित्त है। इसके बाद ही मैं दूसरा रूमाल लूँगा।'' गांधीजी ने जवाब दिया।

छोटा काम

दिल्ली में हरिजन निवास का प्रसंग है। वहाँ की उद्योगशाला के तीन विद्यार्थी साग-सब्जी छील व काट रहे थे। गांधीजी वहाँ से गुजरते हुए वहाँ खड़े हो गए। एक लड़के के हाथ से चाकू लेकर समझाने लगे कि सब्जी का छिलका इस तरह नहीं, इस तरह उतारा जाता है। लड़के का तरीका गलत था। वह छिलका अपनी तरफ न उतारकर बाहर की तरफ उतारकर फेंक रहा था। गांधीजी को उसी समय एक आवश्यक कार्य से बाहर जाना भी था।

''बापू, इस तरह साग-सब्जी के छीलने-काटने को सिखाने में, हमें जाने में देर हो जाएगी। हमें वहाँ ठीक समय पर पहुँचना है।'' महादेव भाई ने कहा।

''महादेव, यह भी एक महत्त्वपूर्ण काम है। यह कोई छोटा काम नहीं है। हम जिन्हें छोटा काम समझते हैं, यदि उन्हें सही तरीके से करें तो ऐसे ही छोटे-छोटे कामों की बुनियाद पर हम मजबूती से खड़े रह सकते हैं।'' गांधीजी ने दृढ़ता के साथ कहा।

हरिजन-प्रेम

बात सेवाग्राम आश्रम की है। बापू का भोजन गोविंद नाम का एक हरिजन बनाया करता था। एक दिन वह बापू के पास आया और बोला, ''बापू, मैं वर्धा जाना चाहता हूँ।''

बापू ने पूछा, ''वर्धा में क्या काम है?''

''मुझे बाल बनवाने हैं।''

''क्या इस गाँव में नाई नहीं है?''

गोविंद ने दु:खी स्वर में कहा, ''गाँव में हरिजन नाई नहीं है और ऊँची जाति के नाई हमारे बाल नहीं बनाते।''

बापू ने कहा, ''यदि वे तुम्हारे बाल नहीं बना सकते तो मैं भी उनसे बाल नहीं बनवाऊँगा।''

उसी दिन से बापू ने नाई से अपने बाल बनवाना बंद कर दिया। वे दाढ़ी अपने हाथ से बनाते थे। उनके सिर के बाल बढ़ते तो आश्रम का कोई भाई उन्हें कैंची से काट देता।

बापू ऐसे थे, जो हरिजनों के प्रति सहानुभूति में बड़े-से-बड़ा कष्ट उठाने के लिए तैयार रहते थे। आराम की जो वस्तुएँ हरिजनों के लिए सुलभ नहीं थीं, उन्हें बापू अपने लिए नहीं चाहते थे।

वचन और समय का पालन

सेवाग्राम की नींव डाली जा रही थी। वहाँ अभी कुछ कमरे ही बने थे। बापू वहाँ रहने के लिए सोच रहे थे। उनके तीन साथी वहाँ पहुँच चुके थे। वे बापू के निवास के लिए एक कमरा बनवा चुके थे।

तभी एक दिन बापू ने खबर भिजवाई कि कल शाम सेवाग्राम पहुँच रहे हैं। गांधीजी स्टेशन से सेवाग्राम आश्रम के स्थान तक मार्ग से भलीभाँति परिचित नहीं थे, इसलिए उन्होंने यह खबर भी दी थी कि उन्हें रास्ता दिखाने के लिए स्टेशन पर एक आदमी आ जाए।

बापू के तीनों सहयोगियों को खबर मिल गई। पर दूसरे दिन बादल घिर आए और काफी तेज पानी बरसने लगा। पानी लगातार बरसता रहा और शाम हो गई, किंतु पानी का बरसना बंद नहीं हुआ। उनके तीनों साथियों ने सोचा, ऐसी बरसात में बापू भला क्या आएँगे!

यह सोचकर न तो उन्होंने स्टेशन पर कोई आदमी भेजा और न कमरे से बाहर निकले। वे चुपचाप दरवाजा बंद कर अंदर बैठे रहे।

काफी देर के बाद उनमें से एक ने दरवाजा खोलकर पगडंडी पर नजर दौड़ाई तो देखा कि कोई चला आ रहा है।

''अरे, बापू आ गए।'' सहयोगी छाता लेकर दौड़ पड़े।

पगडंडी पर बापू चले आ रहे थे। वे काफी भीग गए थे और काँप रहे थे।

एक सहयोगी ने बापू से कहा, ''मैं सपने में भी नहीं सोच सकता था कि आप इस आँधी-तूफान में आएँगे।''

बापू मुसकराए और कहा, ''जब मैं चला था तब पानी बंद हो गया था, किंतु कुछ दूर चलने के बाद बरसात रास्ते में फिर शुरू हो गई। मैं एक बार कदम बढ़ा चुका था। थोड़ी सी बरसात के भय से उन्हें पीछे क्यों हटाता।''

ऐसे थे बापू, जो वचन और समय के पालन में हमेशा सजग रहते थे।

सेवा में छोटे-बड़े काम का भेद नहीं

बात मंगनवाड़ी आश्रम की है। एक दिन गांधीजी ने विचार किया कि रसोई में खाना खानेवालों के जूठे बरतन हर रोज दो-दो आदमी बारी-बारी से धो दिया करें। इससे लोगों का समय भी बचेगा और आपस में प्रेम भी बढ़ेगा।

गांधीजी ने यह बात आश्रम के अन्य लोगों से कही। पर उन लोगों को यह बात अच्छी नहीं लगी। एक ने टालने के अंदाज में कहा, ''बापू, सबके बरतन एक साथ साफ करने में बड़ी गड़बड़ी फैल जाएगी।''

गांधीजी ने कहा, ''गड़बड़ी को ठीक करना हमारा काम है। हम आज से ही इस काम को करेंगे।''

सब लोग चुप रह गए।

खाना समाप्त होने के बाद गांधीजी कस्तूरबा के साथ बरतन साफ करनेवाली जगह पर पहुँच गए। आश्रमवासी जूठे बरतन साफ करने के लिए लेकर निकले तो बापू ने उनसे कहा, ''बरतन रख दो और जाओ।''

आश्रम के लोगों ने पहले तो ऐसा नहीं करना चाहा, पर बापू के बार-बार कहने पर उनके आगे बरतन रख देने के अलावा अन्य उपाय नहीं था।

बापू ने बा के साथ जूठे बरतन माँजना शुरू कर दिया। बीच-बीच में वे हँसकर बा से कहते, ''देखो बा, आज हमारे-तुम्हारे बीच बाजी लगी है। देखना है, हम दोनों में से कौन ज्यादा साफ बरतन मलता है।''

बापू और बा ने आश्रमवासियों के जूठे बरतन साफ करके रख दिए।

ऐसे थे बापू, जो सेवा के काम में ऊँच-नीच का किसी भी तरह का कोई भी भेदभाव किए बिना सबसे पहले आगे बढ़कर हाथ बँटाते थे।

दूसरों का ध्यान

बापू के अनुयायियों ने 'गांधी सेवा संघ' नामक संस्था बनाई थी। उस संस्था की सभा एक बार कर्नाटक के हुदली गाँव में हुई। गाँव के बाहर पहाड़ियों की तलहटी में लोगों के रहने और सभा करने का प्रबंध था। अचानक

जोरों की बरसात शुरू हो गई। तंबुओं में पानी टपकने लगा और लोगों का वहाँ रहना मुश्किल हो गया। निकट ही हुदली गाँव में लोगों के ठहरने का प्रबंध किया गया और रात में लोग वहाँ रहने के लिए जाने को तैयार हो गए।

जब लोगों ने बापू से गाँव में चलने के लिए कहा तो वे बोले, ''मैं अभी नहीं जाऊँगा। पहले और सब लोगों के ठहरने का इंतजाम कर लीजिए।''

सभी बापू की बात मानकर गाँव चले गए। रात में वर्षा होती रही। सुबह उठने पर लोगों को मालूम हुआ कि बापू ने सारी रात पहाड़ियों की तलहटी में ही गुजारी। वे गाँव नहीं आए। सभास्थल में ही टीन लगाकर किसी प्रकार उनकी चारपाई को भीगने से बचाया गया।

ऐसे थे बापू, जो अपने शरीर एवं जीवन की सुरक्षा से अधिक दूसरों के जीवन की सुरक्षा का ध्यान रखते थे।

अपना काम स्वयं करें

बापू कहा करते थे कि अपना काम अपने हाथ से करो और शरीर से मेहनत करने में पीछे नहीं हटो। उन्होंने साबरमती आश्रम की स्थापना की तो वहाँ यह नियम लागू किया कि प्रत्येक व्यक्ति बारी-बारी आश्रम के काम बाँटकर पूरा करे।

एक दिन बापू आश्रम में बैठे अनाज साफ कर रहे थे, तभी एक वकील उनसे मिलने आए और बोले, ''बापू, मैं काम करने आया हूँ। आप मुझे मेरे योग्य कोई काम दीजिए।''

बापू ने कहा, ''यह तो खुशी की बात है कि आप काम करना चाहते हैं।'' उन्होंने सरल भाव से थोड़ा अनाज उनकी ओर खिसका दिया और बोले, ''अनाज इस तरह साफ कीजिए कि इसमें एक भी कंकड़ न रह जाए।''

वकील चकराए। वह यह सोचकर आए थे कि बापू उन्हें लिखने-पढ़ने का और कुरसी पर बैठकर करने के लिए काम देंगे; पर बापू ने उन्हें औरतों के काम में लगा दिया।

वे बोले, ''बापू, क्या आपके पास यही काम है?''

बापू ने सरलता से कहा, ''हाँ, अभी तो यही काम है।''

वकील साहब ने जैसे-तैसे अनाज का ढेर साफ किया और चले गए। फिर कभी उन्हें बापू से काम पूछने का साहस नहीं हुआ।

समय का मूल्य

कांग्रेस कार्य समिति की मीटिंग चल रही थी। बैठक के बीच प्रार्थना का समय होने पर बापू यह अनुरोध करते थे, ''आप लोग मुझे माफ करें। शाम की प्रार्थना का समय हो रहा है। मुझे ठीक समय पर वहाँ पहुँच जाना चाहिए। आप लोग जाने की इजाजत दें।''

एक दिन कांग्रेस कार्य समिति की बैठक में अत्यंत गंभीर चर्चा चल रही थी, ऐसा लगा कि आज बापू प्रार्थना में नहीं जा सकेंगे। उन्हें हर कोई यह खबर देने में हिचक रहा था, लेकिन बापू से जब किसी तरह यह कहा गया कि प्रार्थना का समय हो रहा है, तब बापू ने यह सुनते ही प्रार्थना में जाने की इजाजत ले ली।

बापू से कहा गया, ''आज आप थोड़ी देर और बैठकर चर्चा समाप्त करके ही प्रार्थना में जाते तो...''

''बात ठीक है। मैं तो महात्मा ठहरा, इसलिए हो सकता है कि प्रार्थना में देरी के लिए कोई कारण भी न पूछे। लेकिन यह बात किसी को चुभे या न चुभे, पर मुझे तो चुभेगी ही। वैसे तो हर काम में समय की पाबंदी तो रखनी ही चाहिए, लेकिन प्रार्थना के समय की पाबंदी अवश्य रखनी चाहिए।

''मेरे दिल में प्रार्थना का जो महत्त्व है, वह मुझे सभी को समझाना है। लेकिन मैं यह बार-बार उपदेश देकर भी न समझा सकूँगा। यह तो मैं अपने आचरण को दिखाकर ही समझा सकता हूँ।''

बापू का कहना था, ''अगर मैं ठीक समय पर पहुँच जाऊँगा तो लोग प्रार्थना और समय का मूल्य समझने लगेंगे। उनको विश्वास हो जाएगा कि गांधीजी की प्रार्थना ठीक समय पर ही शुरू हो जाएगी। 'गीता' में भी कहा गया है—बड़ों का आचरण एवं व्यवहार देखकर जनता उनका अनुकरण करती है। इसलिए हमें हमेशा सजग रहना चाहिए।''

गुणग्राही बनो

बापू के एक भक्त सतीशचंद्र दासगुप्ता ने प्रश्न किया, ''बापू, आप तो राम के बड़े भक्त हैं। राम के जीवन से आपको बड़ी प्रेरणा मिलती है। ऐसा कहा जाता है कि राम ने तो बाली-सुग्रीव के द्वंद्व-युद्ध के समय धोखे से बाली को मारा था। वे कंचन मृग के पीछे भागे थे। ऐसी कई बातें हैं, फिर भी आप राम को आदर्श क्यों मानते हैं?''

''मेरे राम वे नहीं, जिन्होंने बाली-सुग्रीव के युद्ध में बाली को धोखे से मारा था। मेरे राम वे नहीं, जिन्होंने माया मृग के पीछे दौड़ लगाई थी। मेरे राम तो वे हैं जिनको अयोध्या नगरी की गद्दी मिलने वाली थी, परंतु अपने पिता के वर्षों पहले दिए गए वचन का पालन करने के लिए उन्होंने वन जाना सहर्ष स्वीकार कर लिया था। मेरे राम वे हैं, जिन्हें उनका भाई भरत बुलाने गया और आग्रह किया कि राज्य की गद्दी वे ही सँभालें और राजा बनें, पर उन्होंने वह स्वीकार नहीं किया। ऐसे अनेक गुण राम में थे। हमें इतना समझ लेना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं होता। हमें हमेशा गुणग्राही बनना चाहिए। पानी मिले दूध से केवल दूध ग्रहण करनेवाले हंस की प्रशंसा होती है। हमें अपने में यही शक्ति विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिए।''

अपना काम अपने हाथ

मगनवाड़ी आश्रम में तेल पेरा जाता था। वहाँ तेल की एक घानी थी। तेल पेरने के लिए पहले तिल की सफाई की जाती थी। तिल की सफाई का काम बा के जिम्मे था।

एक दिन बा तिल साफ कर रही थीं। तिल में बहुत कूड़ा-कचरा था। कचरा निकालते-निकालते उनकी आँखों में पीड़ा होने लगी। उन्होंने आश्रम के एक आदमी से अपनी पीड़ा के संबंध में कहा। उसने तिल साफ करने के लिए एक मजदूरिन बुला दी। वह थोड़े पैसे लेकर तिल साफ करने के लिए तैयार थी।

मजदूरिन तिल साफ करने लगी। तभी बापू सामने से गुजरे। उन्होंने मजदूरिन को देखा। वह पास आए। उन्होंने पूछा, ''इस बहन को यहाँ किसने बुलाया?''

''मैंने।'' आश्रम के एक आदमी ने कहा।

''क्यों? मैंने यह काम तो बा और दूसरी बहनों को सौंपा था?''

''बा की आँखें दुखने लगीं। तिल में बारीक कचरा है। वह बा को दिखाई नहीं पड़ता।''

बापू ने कहा, ''ठीक है। मैं सारा काम छोड़कर पहले यह तिल साफ करूँगा।'' और वह सूप लेकर तिल साफ करने लगे।

आश्रम के लोग बापू को तिल साफ करते देख शर्मिंदा हो गए। बा दौड़ी आईं और बापू के हाथ से सूप लेकर तिल साफ करने लगीं।

अपना काम अपने हाथ से करने का उपदेश देनेवाले बापू ऐसे थे।

बड़ी-से-बड़ी भूल को क्षमा करना

बापू सोते समय दंत मंजन की शीशी अपने पास रखते थे। इसी के साथ लाल दवा (पोटैशियम परमैग्नेट) की शीशी, चाकू, मुँह साफ करने के लिए पानी का बरतन आदि जरूरत के सामान भी पास ही रख लेते थे। एक दिन बापू हमेशा की तरह सूरज निकलने के पहले उठे। उन्होंने आश्रम के एक भाई से मंजन की शीशी माँगी। उस भाई ने भूल से मंजन की शीशी की जगह लाल दवा की शीशी दे दी।

बापू ने थोड़ी सी लाल दवा दाँतों पर मली। उन्हें अजीब सा स्वाद लगा। अँधेरे में कुछ दिखाई भी नहीं दे रहा था। उन्होंने उस भाई से पूछा, ''भाई, तुमने मुझे कौन सी शीशी दी है?''

''बापू, मैंने मंजन की शीशी दी है।''

बापू ने अब दवा को दाँतों पर रगड़ना शुरू कर दिया। दूसरे ही पल उन्होंने सारी दवा थूक दी। उनका मुँह और जीभ बुरी तरह जल गई। आश्रम के उस भाई को अब अपनी गलती का अहसास हुआ। लाल दवा जहरीली होती है। अगर वह बापू के पेट में चली जाती तो उनकी जान भी जा सकती थी।

पर बापू ने उस गलती के लिए उस भाई को कुछ नहीं कहा। वे उस भाई की उस बड़ी गलती को एकदम भूल गए।

ऐसे थे बापू, जो अपने साथियों की बड़ी-से-बड़ी गलती को क्षमा कर देने की क्षमता रखते थे।

अंधविश्वास-निवारण

बात चंपारण जिले के एक गाँव की है। बापू चंपारण के किसानों को निलहे गोरों के अत्याचारों से मुक्त कराने के लिए उस गाँव में ठहरे थे। निलहे गोरे किसानों को नील की खेती करने को विवश करते और सताते थे।

एक दिन बापू के सामने से एक जुलूस निकला। जुलूस के आगे-आगे एक हट्टा-कट्टा बकरा चल रहा था और उसके पीछे-पीछे गाँववाले गाना गाते और जय-जयकार करते चल रहे थे।

बापू ने एक साथी से उस जुलूस के बारे में पूछा, पर वह कुछ भी नहीं बता सका। उत्सुकतावश बापू उस जुलूस के पीछे-पीछे चल दिए। जुलूस देवी के मंदिर के पास जाकर रुक गया। बकरे को देवी के आगे बलि चढ़ाने की तैयारी होने लगी।

बापू को गाँववालों ने अपने साथ देखा तो उनके पास एकत्र हो गए।

बापू ने पूछा, ''आप लोग इस बकरे को यहाँ क्यों लाए हैं?''

''हम इसे देवी को भेंट चढ़ाएँगे।'' गाँववालों ने जवाब दिया।

''भेंट चढ़ाने से क्या होगा?''

''देवी खुश होंगी और हमारा कल्याण करेंगी।''

बापू एक क्षण चुप रहे और फिर बोले, ''बकरे से तो मनुष्य बड़ा है। अगर आप मनुष्य का बलिदान दें तो देवी अधिक प्रसन्न होंगी।''

गाँववाले चुप रह गए।

बापू कहने लगे, ''क्या आप लोगों में से कोई देवी को अपनी भेंट चढ़ाने को तैयार है? कोई तैयार न हो तो मैं अपने शरीर की भेंट चढ़ाने को तैयार हूँ।''

गाँववाले सन्न रह गए। उनकी समझ में नहीं आया कि बापू को क्या कहें।

बापू तब गंभीर स्वर में बोले, ''देवी तो जगत् की माता हैं। वह गूँगे और बेकसूर प्राणियों की भेंट लेकर प्रसन्न नहीं होतीं। यह धर्म नहीं है।''

''तब धर्म क्या है?''

''धर्म यह है कि देवी के सामने अपनी बुराइयों और पापों की बलि चढ़ा दें। इससे देवी प्रसन्न होंगी और आपका कल्याण करेंगी।''

गाँववालों की समझ में बापू की बात आ गई। उन्होंने बकरे को छोड़ दिया और खुशी-खुशी देवी को प्रणाम कर घर लौट गए।

लापरवाही ठीक नहीं

नोआखाली की बात है। बापू उन दिनों हिंदू व मुसलमानों के बीच झगड़ा शांत करने और प्रेम बढ़ाने के लिए पैदल यात्रा कर रहे थे। उनके साथ उनकी पोती मनु बेन भी थी।

बापू नहाते समय एक पत्थर से अपना शरीर रगड़ लिया करते थे। वे साबुन नहीं लगाते थे। उन्हें शरीर रगड़ने के लिए पत्थर मीरा बेन ने दिया था, जो उनकी यात्रा में हमेशा उनके साथ रहता था।

बापू नारायणपुर गाँव पहुँचे और नहाने के लिए तैयार हुए। मनु बेन ने सामान खोलकर देखा तो वह पत्थर नहीं मिला।

वह बापू के पास आईं और डरते-डरते बोलीं, ''बापू, वह पत्थर तो मैं पीछेवाले गाँव में भूल आई, जहाँ हम लोग ठहरे हुए थे।''

बापू गंभीर हो गए। उन्होंने कहा, ''तुमने भूल की है तो तुम्हीं इसका सुधार करो। तुम स्वयं वापस जाकर उस गाँव से पत्थर ले आओ।''

मनु बेन ने यह सुना तो डर गईं। दंगे-फसाद का समय था, मार-काट मची हुई थी। रास्ते में घना जंगल था। ऐसे में कोई हमला कर दे तो क्या हो?

पर मनु बेन जानती थीं कि बापू की बात में फेर बदल की गुंजाइश नहीं रहती। वह अकेले ही चल दीं और घने जंगल को पार कर उस गाँव में पहुँचीं। बापू जहाँ ठहरे थे, उस जुलाहे के घर में वह पत्थर मिल गया। मनु बेन उसे लेकर वापस बापू के पास आईं।

बापू ने पत्थर लेकर कहा, ''तुम इम्तहान में पास हो गईं। यह पत्थर बहुत दिनों से मेरे पास था। इसके खो जाने से मुझे बहुत दु:ख होता। इससे तुम्हें यह सबक सीखना चाहिए कि छोटी-से-छोटी चीज का भी महत्त्व है। हमें किसी भी वस्तु के प्रति लापरवाही नहीं दिखानी चाहिए।''

आचरण का प्रभाव

बापू अपने पत्रों के उत्तर बोलकर लिखवाते थे और वे पत्र बाबू के पौत्र कनैया द्वारा लिखे जाते थे।

''अब जवाहरलाल को खत लिखवाना है, बड़ा कागज लेना।'' बापू ने कहा।

कनैया ने कहा, ''मैं एक सादा कागज ले आता हूँ।''

''रफ कागज ले आने की कोई जरूरत नहीं है। मैं जवाहरलाल को आज हिंदी में ही पत्र लिखवाने वाला हूँ।'' बापू ने कहा।

यह बात सन् 1938 की है। बापू बड़े सवेरे दो-ढाई बजे या जब भी उनकी नींद खुल जाती थी, कनैया को उठाते थे और हिंदी व गुजराती पत्रों के जवाब लिखवाते थे। वह पत्र उनका पौत्र सीधे अच्छे कागज या पोस्टकार्ड पर लिख लिया करता था। अंग्रेजी में बापू कभी-कभी ही पत्र लिखवाते थे। तब वह उन्हें रफ कागज पर लिख लेता था और बाद में उन्हें टाइप करके बापू को दे दिया करता था। बापू ने जवाहरलाल को लिखवाने के लिए कहा, तब उसने समझा कि बापू अंग्रेजी में लिखवाएँगे, क्योंकि वे उनको पत्र अंग्रेजी में ही लिखवाते थे। इसीलिए उसने रफ कागज ले आने की बात कही थी।

''आज हिंदी में क्यों? रफ कागज ले आने में देर नहीं लगेगी।'' कनैया ने कहा।

''हाँ, देरी तो नहीं लगेगी; लेकिन अब मुझे लगने लगा है कि जो गुजराती तथा हिंदी जानते हैं, उनको उनकी भाषा में पत्र लिखूँ। उनको अंग्रेजी में लिखना ठीक नहीं है। किसी विचार को मैं अंग्रेजी में लिखकर बताऊँ, उससे बेहतर तरीका यही है कि मैं हिंदी में लिखने की शुरुआत कर दूँ। इसका असर अच्छा होगा। हिंदी में लिखने की पहल मैं करूँ, यही उत्तम होगा।''

''पंडितजी जवाब अंग्रेजी में देंगे तो?''

बापू ने कहा, ''तो क्या हुआ? मुझे इस बात का संतोष होगा कि मुझे जो ठीक लगा, उसकी शुरुआत मैंने कर दी। जवाहरलाल अपना समय बचाने के लिए अंग्रेजी में लिखवाएगा तो उसका दोष नहीं मानूँगा।''

कुछ दिनों के बाद पंडितजी की ओर से बापू के पत्र का जवाब आया। कनैया ने कौतूहलवश वह पत्र झट से खोल डाला। खोलते ही देखा कि उनका जवाब सचमुच हिंदी में ही आया था। बापू के पास खत ले जाकर फौरन उनको देकर कहा,

''बापू, आपकी बात सच निकली।''

बापू ने खत हाथ में ले लिया और तुरंत पढ़कर कहा, ''मुझे तो विश्वास था कि जवाहर मुझे हिंदी में ही लिखेगा। मैं बार-बार कहता हूँ कि उपदेश से कई गुना ज्यादा असर आचरण का पड़ता है। यह उदाहरण देखा न!''

हिसाब साफ रहना चाहिए

बात सन् 1940 की है। बापू को बंबई जाना था। स्टेशन आने पर पता चला कि ट्रेन के आने में पौन घंटे की देर है। वर्धा शहर में जमनालाल बजाज का बँगला था। उन्होंने बापू से आग्रह कर कहा, ''आप यहीं ठहर जाइए। ट्रेन आने पर आपको स्टेशन पहुँचा देंगे।''

बापू वहीं ठहर गए। कई लोग मिलने आए। उनसे बातें करने लगे।

मुलाकात के बाद दो-तीन खत लिखने थे, सो उन्होंने जमनालाल से पोस्टकार्ड माँगे। उन्होंने चार-पाँच पोस्टकार्ड दिए। बापू ने उनमें से तीन पोस्टकार्ड लिखे और बाकी वापस कर दिए।

ट्रेन में अपनी जगह बैठते ही बापू ने अपनी छोटी थैली माँगी और उसमें से तीन पोस्टकार्ड निकालकर जमनालाल की तरफ हाथ बढ़ाया। जमनालाल ने हँसते-हँसते कहा, ''आपकी बात तो अजीब सी है। वैसे तो आप हमसे लाखों रुपए माँग लेते हैं और आज तीन पोस्टकार्ड वापस कर रहे हैं।''

''हिसाब तो हिसाब ही है। जो धन लेता हूँ वह दान-स्वरूप लेता हूँ और आप देते हैं। वे जो तीन पोस्टकार्ड लिये, वे वापस करने की भावना से लिये थे। आपको ये लेने ही पड़ेंगे। हिसाब साफ रहना चाहिए।''

जमनालालजी ने संकोच के साथ वे पोस्टकार्ड ले लिये।

दूरदर्शिता

एक बार की बात है। गांधीजी रेल से यात्रा कर रहे थे। गाड़ी कुछ देर के लिए एक स्टेशन पर रुकी। कुछ लोग उनसे मिलने आए। गांधीजी अभी एक भाई से बातें कर ही रहे थे कि गार्ड ने सीटी दे दी। गाड़ी झटके के साथ चल पड़ी। गांधीजी सँभल पाए, उससे पहले उनकी चप्पल सरककर नीचे गिर पड़ी। अब क्या हो? गांधीजी जानते थे कि जो चप्पल अभी गिरी है, अब उन्हें वापस नहीं मिल सकती और जो अकेली चप्पल उनके पाँव में रह गई है, अब उसका भी कोई उपयोग नहीं है।

गांधीजी ने एक क्षण के लिए विचार किया और दूसरी चप्पल भी वहीं गिरा दी। यह सोचकर कि दोनों चप्पलें एक साथ किसी को मिलेंगी तो वह उनका उपयोग कर लेगा।

बात छोटी सी है। हम सबके जीवन में भी ऐसी ही घटनाएँ आती हैं, परंतु कोई भी इतनी दूर तक नहीं सोच पाता। गांधीजी सचमुच महात्मा और दूरदर्शी थे।

परोपकार की भावना

सन् 1947 की बात है। वायसराय के बुलाने पर बापू उनसे मिलने के लिए पटना से दिल्ली जा रहे थे। यात्रा लंबी थी। बापू की सुविधा के लिए उनकी पोती मनु बेन साथ में यात्रा कर रही थी। उन्होंने दो भागोंवाले एक डिब्बे को चुन लिया। डिब्बे के एक भाग में सामान रखा था और उसी में खाना बनाने का प्रबंध किया गया था। दूसरे भाग में बापू बैठे थे। मनु बेन ने सोचा था कि सामान आदि रखने और खाना बनाने के लिए, बापू जिस हिस्से में बैठे हैं, उस हिस्से में प्रबंध किया गया तो उन्हें कष्ट होगा।

गाड़ी पटना से चल पड़ी। एकाएक बापू ने खिड़की से बाहर झाँका। वे एकदम चौंक पड़े। बाहर अनेक यात्री पायदान पर लटकते हुए यात्रा कर रहे थे।

बापू ने उन लोगों की ओर इशारा कर मनु बेन से पूछा, ''तुमने मेरे आराम के लिए इन लोगों के आराम का खयाल नहीं किया। इतने लोग बाहर लटककर यात्रा करें और हम दो डिब्बे अपने उपयोग में लाएँ, क्या यह ठीक है?''

मनु बेन को अपनी गलती का अहसास हुआ। दु:ख के कारण उनकी आँखों में आँसू आ गए। बापू ने उनसे दूसरे डिब्बे का सामान एक ही डिब्बे में रख देने के लिए कहा।

अगले स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो बापू ने स्टेशन मास्टर को बुलाकर कहा, ''मेरी पोती ने अनजाने में भूल की और दो डिब्बों पर कब्जा कर लिया। उसकी इस गलती से मुझे दु:ख हुआ है। अब मैंने दो में से एक डिब्बे को खाली करा दिया है। आप पायदान पर लटके लोगों को खाली डिब्बे में बिठा दीजिए। इससे मेरा दु:ख कम होगा।''

स्टेशन मास्टर ने कहा, ''बापू, आप दोनों डिब्बों में बने रहें। मैं मुसाफिरों के लिए गाड़ी में नया डिब्बा जुड़वा देता हूँ।''

बापू मुसकराकर बोले, ''दूसरा डिब्बा तो जुड़वा ही दीजिए। इस खाली डिब्बे में भी मुसाफिरों को बिठाइए। इस डिब्बे के बिना भी हम आसानी से अपना काम चला सकते हैं। इस पर कब्जा बनाए रखना हिंसा है। मैं यह पाप नहींकरूँगा।''

स्टेशन मास्टर की समझ में बापू की बात आ गई। उसने खाली डिब्बे में बाहर लटके यात्रियों को बिठा दिया।

अपने से अधिक दूसरों का ध्यान रखनेवाले ऐसे थे बापू, जो अपने लिए कोई विशेष सुविधा और आराम नहीं चाहते थे।

नियम का पालन

बापू का जीवन कठोर तप का जीवन था। अपने खान-पान और वेशभूषा में वे साधुओं जैसी सादगी रखते थे। अपने साथ रहनेवाले लोगों की आवश्यकताओं का ध्यान रखना वे अपना पहला कर्तव्य समझते थे।

बापू के एक सहयोगी भक्त बृजकृष्ण चाँदीवाला थे। एक बार बापू ने उन्हें आश्रम में बुलवाया। बृजकृष्ण उन दिनों बीमार थे। वैद्य ने उन्हें मलाई के साथ दवा खाने की सलाह दी थी। बापू ने उनसे कहा कि वे कड़ाही लाकर दे दें, ताकि मलाई बन सके।

पर बृजकृष्ण कड़ाही नहीं लाए। उन्हें आश्रम में मलाई खाने की बात ठीक नहीं लगी।

एक दिन बापू ने पूछा, ''क्यों बृजकृष्ण, तुम्हें मलाई मिलती है?''

बृजकृष्ण संकोच से बोले, ''बापू, आश्रम में मलाई बनाने की बात ठीक नहीं मालूम पड़ती।''

बापू ने उन्हें मीठी फटकार लगाई, ''यह तुम्हारी मूर्खता है। शरीर के लिए जो वस्तु आवश्यक है, उसे खाना धर्म है। तुम आज ही शहर जाकर कड़ाही ले आओ।''

बृजकृष्ण अब बापू की बात टाल नहीं सके। वे शहर जाकर कड़ाही ले आए। रात में उनके लिए मलाई तैयार की गई।

बृजकृष्ण को मलाई मिलने लगी, यह जानकर बापू प्रसन्न हुए।

बापू का नियम था कि वह स्वाद के लिए कुछ भी नहीं खाते थे। वे शरीर के लिए जितना और जो आवश्यक हो, वही वस्तुएँ खाते थे। यह नियम आश्रम के सभी लोगों के लिए था। जो लोग इस नियम का पालन नहीं कर पाते थे, बापू उन्हें छूट भी दे देते थे।

ऐसे थे बापू, जो नियमों और सिद्धांतों को मानने में अत्यंत कठोर थे, पर वहीं दूसरों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अत्यंत कोमल भी थे।

दूसरों के सुख के लिए

सेवाग्राम आश्रम के निकट एक बड़ा नाला था। आश्रम में जाने के लिए उस नाले पर छोटे-छोटे पीपों से एक पुल बनाया गया था। उन पीपों में धीरे-धीरे कूड़ा-कचरा भरने और पीपों के चारों ओर कचरा जमा होने से पानी का बहाव पूरी तरह रुक गया। रुका पानी गाँव में भरने लगा। गाँव के घरों के गिरने का खतरा उत्पन्न हो गया।

गाँववाले आश्रम में आए और बापू से शिकायत की। बापू ने तुरंत ही एक आदमी को बुलाया और कहा, ''तुम इन भाइयों के साथ जाओ और पानी निकलवाने का इंतजाम करो।''

आदमी पुल पर गया। उसने वहाँ हालात का जायजा लिया। वह इस नतीजे पर पहुँचा कि जल-जमाव से गाँववालों को बचाने के लिए पुल को तोड़ना जरूरी था। उसने तुरंत पुल को तोड़ दिया।

नाले का रुका सारा पानी बह गया। गाँव के मकान गिरने से बच गए।

वह आदमी वापस लौटा तो बापू ने पूछा, ''क्या गाँववालों की परेशानी दूर हुई?''

''जी बापू, गाँव के घर तो बच गए, पर अपना पुल टूट गया।''

बापू ने सारी बात सुनी और हँसकर बोले, ''पुल टूट गया तो कोई बात नहीं। गाँववासियों के आराम और सुविधा के लिए कोई भी त्याग करना पड़े, वह कम है।''

इस तरह दूसरों के सुख के लिए खुद बड़ी-से-बड़ी तकलीफ उठाने को बापू हमेशा तैयार रहते थे।

❑

मैनेजमेंट गुरु के रूप में गांधीजी के अनमोल विचार

सत्य क्या है? यह एक कठिन प्रश्न है, लेकिन अपने लिए मैंने इसे यह कहकर सुलझा लिया है कि जो तुम्हारे अंत:करण की आवाज कहे, वह सत्य है। आप पूछते हैं कि यदि ऐसा है तो भिन्न-भिन्न लोगों के सत्य परस्पर भिन्न और विरोधी क्यों होते हैं? चूँकि मानव मन असंख्य माध्यमों के जरिए काम करता है और सभी लोगों के मन का विकास एक-सा नहीं होता, इसलिए जो एक व्यक्ति के लिए सत्य होगा, वह दूसरे के लिए असत्य हो सकता है। अत: जिन्होंने ये प्रयोग किए हैं वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि इन प्रयोगों को करते समय कुछ शर्तों का पालन करना जरूरी है।

ऐसा इसलिए है कि आजकल हर आदमी किसी तरह की कोई साधना किए बगैर अंत:करण के अधिकार का दावा कर रहा है और हैरान दुनिया को जाने कितना असत्य थमाया जा रहा है। मैं सच्ची विनम्रता के साथ तुमसे कहना चाहता हूँ कि जिस व्यक्ति में विनम्रता कूट-कूटकर न भरी हो, उसे सत्य नहीं मिल सकता। यदि तुम्हें सत्य के सागर में तैरना है तो तुम्हें अपनी हस्ती को पूरी तरह मिटा देना होगा।

—यंग इंडिया, 31-12-1931

केवल सत्य, प्रेम और अहिंसा ही महत्त्वपूर्ण है। जहाँ ये हैं, वहाँ अंतत: सबकुछ ठीक हो जाएगा। इस नियम का कोई अपवाद नहीं है।

—यंग इंडिया, 18-8-1927

मेरे लिए सत्य सर्वोच्च सिद्धांत है, जिसमें अन्य अनेक सिद्धांत समाविष्ट हैं। यह सत्य केवल वाणी का सत्य नहीं है, अपितु विचार का भी है और हमारी धारणा का सापेक्ष सत्य ही नहीं अपितु निरपेक्ष सत्य, सनातन सिद्धांत अर्थात् ईश्वर है। ईश्वर की असंख्य परिभाषाएँ हैं, क्योंकि वह असंख्य रूपों में प्रकट होता है। ये असंख्य रूप देखकर मैं आश्चर्य व भय से अभिभूत हो जाता हूँ और एक क्षण के लिए तो स्तंभित रह जाता हूँ।

पर मैं ईश्वर को केवल सत्य के रूप में पूजता हूँ। मैं अभी उसे प्राप्त नहीं कर सका हूँ, पर निरंतर उसकी खोज में हूँ। इस खोज में मैं अपनी सर्वाधिक प्रिय वस्तुओं का त्याग करने के लिए तैयार हूँ। यदि मुझे इसके लिए अपने जीवन का भी उत्सर्ग करना पड़े तो मुझे आशा है कि मैं उसके लिए तैयार रहूँगा। लेकिन जब तक मुझे इस निरपेक्ष सत्य की प्राप्ति नहीं होती तब तक अपनी धारणा के सापेक्ष सत्य पर ही अवलंबित रहना होगा। तब तक यह सापेक्ष सत्य ही मेरा प्रकाश-स्तंभ, मेरी ढाल है। यद्यपि सत्य की खोज का मार्ग कठिन और सँकरा तथा तलवार की धार की तरह तेज है, पर मेरे लिए यह सरलतम है। इस मार्ग पर दृढ़तापूर्वक चलते जाने के कारण अपनी भयंकर भूलें भी मुझे नगण्य प्रतीत हुई हैं। इस मार्ग ने मुझे संताप से बचाया है और मैं अपनी प्रकाश किरण का अनुगमन करते हुए आगे बढ़ता गया हूँ। मार्ग में चलते-चलते मुझे प्राय: निरपेक्ष सत्य—ईश्वर—की हलकी सी झलक दिखाई दी है और मेरा यह विश्वास दिनोदिन दृढ़तर होता जाता है कि केवल ईश्वर ही वास्तविक है और शेष सब अवास्तविक।

एक बात और मेरे मन में दृढ़ होती जा रही है कि जो कुछ मेरे लिए संभव है, वह एक बच्चे के लिए भी संभव है। यह बात मैं ठोस कारणों के आधार पर कह रहा हूँ। सत्य की खोज के साधन जितने कठिन हैं, उतने ही आसान भी हैं। अहंकारी व्यक्ति को वे काफी कठिन लग सकते हैं और अबोध शिशु को पर्याप्त सरल।

सत्य के खोजी को धूल के कण से भी अधिक विनम्र होना चाहिए। धूल के कणों को तो दुनिया अपने पैरों तले रौंदती है, लेकिन सत्य के खोजी को इतना विनम्र होना चाहिए कि उसे धूल कण भी रौंद सकें। तभी, और केवल तभी, उसे सत्य के दर्शन संभव होंगे।

सत्य एक विशाल वृक्ष की तरह है। आप जितना उसका पोषण करेंगे, उतने ही ज्यादा फल वह देगा। सत्य की खान को जितना ही गहरा खोदेंगे, सेवा के नए-से-नए मार्गों के रूप में वह उतने ही अधिक हीरे-जवाहरात देगा।

मेरे विचार में, इस संसार में निश्चिंतताओं की आशा करना गलत है—यहाँ ईश्वर अर्थात् सत्य के अलावा और सबकुछ अनिश्चित है। जो कुछ हमारे चारों ओर दिखाई देता है अथवा घटित हो रहा है, सब अनिश्चित है, अनित्य है। बस, एक ही सर्वोच्च सत्ता यहाँ है, जो गोपन है; किंतु निश्चित है और वह व्यक्ति भाग्यशाली है, जो इस निश्चित तत्त्व की एक झलक पाकर उसके साथ अपनी जीवन-नैया को बाँध देता है। इस सत्य की खोज ही जीवन का परमार्थ है।

सत्य की खोज में क्रोध, स्वार्थ, घृणा आदि विकास स्वभावत: छूटते जाते हैं, अन्यथा सत्य की प्राप्ति असंभव ही हो। जो व्यक्ति वासनाओं के वश में है, उसकी नीयत साफ होने पर भी वह कभी सत्य की प्राप्ति नहीं कर सकेगा। सत्य की खोज में सफलता प्राप्त होने पर मनुष्य प्रेम और घृणा, सुख और दु:ख आदि के द्वंद्वों से पूर्णत: मुक्त हो जाता है।

सत्य की सार्वभौम एवं सर्वव्यापी भावना के प्रत्यक्ष दर्शन वही कर सकता है, जो क्षुद्रतम प्राणी से भी उतना ही प्रेम कर सके जितना कि स्वयं को करता है। और जो ऐसा करने का आकांक्षी हो, वह जीवन के किसी क्षेत्र से अपने को असंपृक्त नहीं रख सकता। यही कारण है कि सत्य के प्रति मेरे अनुराग ने मुझे राजनीति के क्षेत्र में ला खड़ा किया है।

सतत अनुभव ने मेरा यह विश्वास दृढ़ कर दिया है कि ईश्वर सत्य के अलावा और कुछ नहीं है। सत्य की जो क्षणिक झलकियाँ मैं पा सका हूँ, उनसे सत्य के अवर्णनीय तेज का वर्णन करना संभव नहीं है। सत्य का तेज नित्य दिखाई देनेवाले सूर्य के प्रकाश से लाखों गुना प्रखर है।

वस्तुत:, मैं उस अतुल प्रभा की बहुत हलकी झलक ही पा सका हूँ। लेकिन अपने अनुभव के बल पर मैं यह बात भरोसे के साथ कह सकता हूँ कि सत्य का सर्वांग दर्शन वही कर सकता है, जिसने अहिंसा को पूरी तरह अपना लिया है। वही सत्य प्रत्येक मनुष्य के हृदय में वास करता है और मनुष्य को उसे वहीं खोजना चाहिए। सत्य जिसे जैसा दिखाई दे, वह उसी से निर्देशित हो। लेकिन किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह सत्य का जिस रूप में दर्शन करता है, उसके अनुसार चलने के लिए दूसरे लोगों पर जोर-जबरदस्ती करे।

निरपेक्ष सत्य को जानना मनुष्य के वश की बात नहीं है। उसका कर्तव्य है कि सत्य जैसा उसे दिखाई दे, उसका अनुगमन करे—और ऐसा करते समय शुद्धतम साधन अर्थात् अहिंसा को अपनाए। केवल ईश्वर ही निरपेक्ष सत्य को जानता है। इसलिए मैंने प्राय: कहा है कि सत्य ही ईश्वर है। इसका अर्थ हुआ कि मनुष्य, जो सीमित क्षमतावाला प्राणी है, निरपेक्ष सत्य को नहीं जान सकता।

—हरिजन, 7-4-1946, पृष्ठ 70

इस दुनिया में निरपेक्ष सत्य किसी को ज्ञात नहीं है। यह गुण केवल ईश्वर में है। हम सभी को सापेक्ष सत्य का ही ज्ञान है। इसलिए सत्य जैसा हमें दिखाई देता है, हम उसी का अनुगमन कर सकते हैं। सत्य का ऐसा अनुगमन किसी को भटका नहीं सकता।

—हरिजन, 2-6-1946, पृष्ठ 167

मैंने अपने जीवन में ऐसी बातें कहने की गलती कभी नहीं की है, जिनका मेरा अभिप्राय न हो। मेरा स्वभाव बात की तह तक सीधे पहुँचने का है, और यदि मैं कुछ समय के लिए तह तक न पहुँच पाऊँ तो भी मैं जानता हूँ कि सत्य अंतत: लोगों को अपनी वाणी सुनाने और महसूस कराने में सफल हो जाएगा। मेरे अनुभव में प्राय: ऐसा ही घटित हुआ है।

—यंग इंडिया, 20-8-1925

मेरे जैसे सैकड़ों लोग नष्ट हो जाएँ, पर सत्य की विजय हो। मेरे जैसे त्रुटिपूर्ण मनुष्यों का मूल्यांकन करने के लिए सत्य के मानदंडों को लेशमात्र भी नीचा करने की आवश्यकता नहीं है।

अपना मूल्यांकन करते समय मैं सत्य के समान कठोर बनने का प्रयास करूँगा और चाहता हूँ कि अन्य लोग भी ऐसा ही करें। उस मानदंड से अपने को मापने पर मुझे सूरदास के सुर में सुर मिलाकर कहना होगा—

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जेहि तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो नमक हरामी।।

मैं कितना ही तुच्छ होऊँ, पर जब मेरे माध्यम से सत्य बोलता है तब मैं अजेय बन जाता हूँ।

मेरा अनुराग केवल सत्य के प्रति है, और मैं सत्य के अलावा किसी और का अनुशासन नहीं मानता।

—हरिजन, 25-5-1935

मैं एक ही ईश्वर का दास हूँ और वह है सत्य।

—हरिजन, 15-4-1939

सत्य के प्रति आग्रह से जो शक्ति प्राप्त होती है, उसके अतिरिक्त मेरे पास कोई और शक्ति नहीं है। इसी आग्रह से अहिंसा का प्रस्फुटन होता है।

—हरिजन, 7-4-1946

मैं सत्य का एक साधारण सा, किंतु बड़ा खोजकर्ता हूँ। अपनी खोज में मैं अपने साथी खोजकर्ताओं को अधिकतम विश्वास में लेकर चलता हूँ, ताकि मैं अपनी त्रुटियों को पहचान सकूँ और उन्हें सुधार सकूँ। मैं जानता हूँ कि अपने अनुमानों एवं निर्णयों में मुझसे प्राय: गलतियाँ हुई हैं और चूँकि प्रत्येक ऐसे मामले में मैंने अपनी त्रुटि को सुधार लिया है, इसलिए कोई स्थायी हानि नहीं होने पाई है; बल्कि इससे अहिंसा का मौलिक सत्य पहले की अपेक्षा कहीं अधिक उद्‌भासित हुआ है तथा देश को किसी तरह की स्थायी हानि नहीं हुई है।

—यंग इंडिया, 21-4-1927

मैं तो स्वयं ही नौसिखिया हूँ। मुझे कोई स्वार्थ सिद्‌ध नहीं करना, और मुझे जहाँ भी सत्य दिखाई देता है, मैं उसका पक्ष लेकर उसके अनुसार कार्य करने का प्रयास करता हूँ।

—यंग इंडिया, 11-8-1927

मेरा विश्वास है कि पूरी नेकनीयती से काम करने पर भी यदि किसी से गलती हो जाए तो उससे वस्तुत: दुनिया की ही नहीं, बल्कि किसी व्यक्ति की भी, कोई हानि नहीं होती। अपने भीरु सेवकों की अनजाने में हुई गलतियों से ईश्वर दुनिया को कोई हानि नहीं पहुँचने देता। मेरा अनुसरण करने के कारण जिनके गलत रास्ते पर चले जाने की आशंका है, उन्हें मेरे काम की जानकारी न भी होती तो भी वे उसी रास्ते पर जाते। कारण यह है कि मनुष्य अपने आचरण में अंतत: अपनी अंत:प्रेरणा से ही परिचालित होता है, भले ही दूसरों के उदाहरण कभी-कभी उसका मार्गदर्शन करते प्रतीत होते हों। जो भी हो, मैं यह जानता हूँ कि मेरी त्रुटियों के कारण दुनिया को कभी हानि नहीं उठानी पड़ी है; क्योंकि ये त्रुटियाँ मुझसे अज्ञानवश हुई थीं। मुझे इस बात का दृढ़ विश्वास है कि मेरी जो त्रुटियाँ बताई जाती हैं, उनमें से एक भी त्रुटि मैंने जान-बूझकर नहीं की थी।

—यंग इंडिया, 3-1-1929

सच पूछा जाए तो एक व्यक्ति को जो बात स्पष्टतया गलत लगती है, वह दूसरे को एकदम बुद्‌धिमत्तापूर्ण लग सकती है। वह विभ्रम में हो, तब भी अपने को उसे करने से रोक नहीं सकता। तुलसीदास ने सच ही कहा है—

रजत सीप महुं भास जिमि जथा भानु कर बारि।

जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि।।

मेरे जैसे आदमियों के साथ, जो संभवत: महान् विभ्रम से ग्रस्त हैं, यही होता रहेगा। ईश्वर निश्चित रूप से उन्हें क्षमा कर देगा; पर दुनिया को ऐसे लोगों को बरदाश्त करना चाहिए। अंतत: सत्य की ही विजय होगी।

—हरिजन, 10-11-1946

जीवन एक आकांक्षा है। उसका ध्येय पूर्णता के लिए प्रयास करना है, जो आत्मसिद्धि ही है। अपनी दुर्बलताओं या अपूर्णताओं के कारण ध्येय को नीचा नहीं करना चाहिए। मुझे इस बात का दु:खद बोध है कि मेरे अंदर दुर्बलताएँ भी हैं और अपूर्णताएँ भी। मैं इन्हें दूर करने में सहायता देने के लिए प्रतिदिन सत्य के समक्ष मौन आर्तनाद करता हूँ।

—हरिजन, 22-6-1935

मेरा विश्वास करो। मैं अपने 60 वर्ष के व्यक्तिगत अनुभव से कहता हूँ कि सत्य के मार्ग का परित्याग करना ही वास्तविक दुर्भाग्य है। यदि तुम इसे समझ सको तो ईश्वर से तुम्हारी एक ही प्रार्थना होगी कि सत्य का अनुसरण करते हुए तुम्हें कितनी भी परीक्षाओं और कठिनाइयों से गुजरना पड़े, ईश्वर तुम्हें उनसे पार पाने का सामर्थ्य दे।

—हरिजन, 28-7-1946

केवल सत्य ही टिकेगा, बाकी सब काल-कवलित हो जाएगा। इसलिए मुझे सभी त्याग दें तो भी मुझे सत्य का साक्षी बने रहना चाहिए। मेरी वाणी आज अरण्यरोदन हो सकती है; किंतु यदि यह सत्य की वाणी है तो शेष सभी वाणियाँ मूक हो जाने के अंत में मेरी वाणी ही सुनाई देगी।

—हरिजन, 25-8-1946

सारी दुनिया झूठ की चपेट में आती प्रतीत हो तो भी आस्थावान् व्यक्ति सत्य का परित्याग नहीं करेगा।

—हरिजन, 22-9-1946

प्रासंगिक होने पर सत्य अवश्य कह देना चाहिए, चाहे वह कितना ही अप्रिय हो। जो अप्रासंगिक है, वह सदा असत्य है और उसे कभी नहीं कहना चाहिए।

—हरिजन, 21-12-1947

संसार का परित्याग तो मेरे लिए सरल है। लेकिन मैं ईश्वर का परित्याग करूँ, यह अविचारणीय है।

—यंग इंडिया, 23-2-1922

मैं जानता हूँ कि मैं कुछ भी करने में समर्थ नहीं हूँ। ईश्वर सर्वसमर्थ है। हे प्रभो! मुझे अपना समर्थ साधन बनाएँ और जैसे चाहें, मेरा उपयोग करें।

—यंग इंडिया, 9-10-1924

मुझे पत्र लिखनेवालों में से कुछ यह समझते हैं कि मैं चमत्कार दिखा सकता हूँ। सत्य का पुजारी होने के नाते मेरा कहना है कि मेरे पास ऐसी कोई सामर्थ्य नहीं है। मेरे पास जो भी शक्ति है, वह ईश्वर देता है। लेकिन वह सामने आकर काम नहीं करता। वह अपने असंख्य माध्यमों के जरिए काम करता है।

—हरिजन, 8-10-1938

ईश्वर सत्य है, पर वह और भी बहुत कुछ है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि सत्य ईश्वर है। केवल यह स्मरण रखें कि सत्य ईश्वर के अनेक गुणों में से एक गुण नहीं है। सत्य तो ईश्वर का जीवंत रूप है। यही जीवन है। मैं सत्य को ही परिपूर्ण जीवन मानता हूँ। इस प्रकार यह एक मूर्त वस्तु है, क्योंकि संपूर्ण सृष्टि, संपूर्ण सत्ता ही ईश्वर है और जो कुछ विद्यमान है—अर्थात् सत्य—उसकी सेवा ईश्वर की सेवा है।

—हरिजन, 25-5-1935

यदि मैं अपने अंदर ईश्वर की उपस्थिति अनुभव न करता तो प्रतिदिन इतनी कंगाली और निराशा देखते-देखते प्रलापी और पागल हो गया होता या हुगली में छलाँग लगा देता।

—यंग इंडिया, 6-8-1925

यदि मुझे भारत के सबसे हीन, बल्कि विश्व के सबसे हीन व्यक्तियों के दु:ख के साथ अपना तादात्म्य करना है तो मुझे अपनी देखरेख में रहनेवाले साधारण व्यक्तियों के पापों के साथ तादात्म्य करना चाहिए। और मुझे आशा है कि पूर्ण विनम्रता के साथ ऐसा करते-करते मैं किसी दिन ईश्वर के सत्य का साक्षात् कर सकूँगा।

—यंग इंडिया, 3-12-1925

मैं ईश्वर को मानवता की सेवा के जरिए पाने का प्रयास कर रहा हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि ईश्वर न स्वर्ग में है, न पाताल में, बल्कि हम सब में है।

—यंग इंडिया, 4-8-1927

मैंने देखा है और मेरा विश्वास है कि ईश्वरीय शरीर नहीं, बल्कि कार्यरूप में प्रकट होता है और इसी से आपको घोर विपत्तियों से छुटकारा मिलता है।

—हरिजन, 10-12-1938

मैं उस कला और साहित्य का पक्षधर हूँ, जो जनता से जुड़ा हो।

—हरिजन, 14-11-1936

मनुष्य का मूल्य उसके रहन-सहन के तरीकों पर निर्भर है, उसके पद पर नहीं। इस रहन-सहन की परीक्षा उसके बाह्य जीवन से नहीं होती। वह तो अंतर्वृत्ति को जानकर ही की जा सकती है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 6), पृष्ठ 360

अधिकार सदा कानूनी ही होता है। इसलिए कानूनी आधार से विच्छिन्न 'नैतिक आधार' वस्तुत: एक गलत प्रयोग है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 6), पृष्ठ 87

अपने कर्तव्यों को पूरा करने का अधिकार ही एकमात्र अधिकार है, जिसके लिए मनुष्य का जीवन धारण और भरण होता है। इसी के अंतर्गत मनुष्य के सभी न्यायिक अधिकार निहित हैं।

—हरिजन, 21-5-1939

जिनकी हम आराधना करते हों, उनके सद्गुणों का अनुसरण करने में ही सच्ची आराधना है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 18), पृष्ठ 133

अपने हर एक शब्द के पीछे, जिसे मैंने उच्चारित किया हो और प्रत्येक कार्य के पीछे, जिसे मैंने किया हो, उन सबके पीछे धार्मिक चेतना और संपूर्ण धार्मिक उद्देश्य मेरे लोक-जीवन में रहा है।

—यंग इंडिया

मैं आज तक जितने धार्मिक पुरुषों से मिला हूँ, वे अंदर-ही-अंदर राजनीतिक रहे हैं; किंतु मैं जो राजनीतिज्ञ का बाना पहने घूमता हूँ, हृदय से संपूर्णत: धार्मिक मनुष्य हूँ।

—स्पीचेज एंड राइटिंग्स ऑफ गांधीजी, ए. नटसन, मद्रास, 1922, पृष्ठ 40

मैं सत्य का विनम्र सेवक हूँ। मैं आत्मज्ञान प्राप्त करने को अधीर हूँ। मैं इसी जीवन में मोक्ष चाहता हूँ। मेरी राष्ट्र-सेवा मेरी आध्यात्मिक साधना है, जिसके द्वारा मैं अपनी आत्मा को शरीर के बंधन से मुक्त करना चाहता हूँ। विश्व के नश्वर राज्य की मुझे कामना नहीं है। मैं तो उस स्वर्ग राज्य के लिए साधना में लीन हूँ, जिसे मुक्ति

कहते हैं। अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए गुफा-सेवन की मुझे आवश्यकता नहीं दिखती। गुफा तो मेरे भीतर भी मौजूद है, यदि उसे मैं जान पाऊँ।

—यंग इंडिया, 3-4-1924

लोग मुझे सनकी, भटकी और दीवाना कहते हैं। सचमुच ही मैं इस कीर्ति के योग्य हूँ। क्योंकि जहाँ कहीं मैं जाता हूँ, अपने आसपास सनकियों, भटकियों और पागलों को इकट्ठा कर लेता हूँ।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 41), पृष्ठ 33

जब तक हमारे बीच ऐसी असमानता मौजूद है कि किसी के पास अत्यधिक है और किसी को अभाव, तब तक तो यही कहा जा सकता है कि हम चोरी ही कर रहे हैं।

—महात्मा गांधी : जीवन और चिंतन, पृष्ठ 396

अहिंसा के मार्ग पर चलनेवाला आदमी ईश्वर की शक्ति और कृपा का आश्रय लिये बिना कुछ नहीं कर सकता। इसके बिना उसमें क्रोध, भय और प्रतिकार में हाथ उठाने की इच्छा से मुक्त रहकर खुशी-खुशी मर मिटने का साहस नहीं आ सकता। ऐसा साहस तो इस विश्वास से प्राप्त होता है कि ईश्वर सबके हृदय में बसता है और ईश्वर की उपस्थिति में डर किस बात का! ईश्वर की सर्वव्यापकता का मतलब यह भी है कि जिन्हें हम अपना विरोधी या गुंडा कहते हैं, उनके प्राणों की भी हमें चिंता है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 67), पृष्ठ 142

जिस व्यक्ति के मन में अहिंसा का पालन करने का उत्साह है, उसे चाहिए कि वह अपने हृदय में झाँके और अपने पड़ोसी की ओर देखे। यदि उसके मन में द्वेष भरा हो तो वह समझ ले कि वह अहिंसा की प्रथम सीढ़ी ही नहीं चढ़ पाया है। और जो अपने पड़ोसी के प्रति, साथी के प्रति अहिंसा का व्यवहार नहीं करता, वह अहिंसा से हजारों कोस दूर है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 67), पृष्ठ 93

कोई भी शासन संपूर्णतः अहिंसक बनने में सफल नहीं हो सकता, क्योंकि वह व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। यद्यपि मैं उस स्वर्ण युग की कल्पना आज नहीं करता हूँ, फिर भी मैं मानता हूँ कि एक अहिंसक समाज की संभावना है और मैं उसकी स्थापना की चेष्टा कर रहा हूँ।

—हरिजन, 9 मार्च, 1940

अकसर ऐसा कहा गया है कि अहिंसा का सिद्धांत मैंने टॉलस्टॉय से लिया है। इसमें पूरी सच्चाई तो नहीं है, लेकिन अहिंसा के संबंध में उनकी रचनाओं से भी मुझे सबसे अधिक बल मिला है; लेकिन इस बात को टॉलस्टॉय ने स्वयं भी स्वीकार किया है कि अप्रतिरोध की जिस पद्धति का संवर्धन और विकास मैंने दक्षिण अफ्रीका में किया, वह उस अप्रतिरोध से भिन्न है, जिसके संबंध में टॉलस्टॉय ने लिखा है और जिसे अपनाने की उन्होंने सिफारिश की है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 48), पृष्ठ 450

अगर हमारी अहिंसा वैसी न हुई जैसी कि वह होनी चाहिए तो राष्ट्र को उससे बड़ा नुकसान पहुँचेगा, क्योंकि उसकी आखिरी परीक्षा में हम बहादुर के बजाय कायर साबित होंगे। और आजादी के लिए लड़नेवालों के लिए कायरता से बढ़कर अपमान की बात और कोई नहीं है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 67), पृष्ठ 15

अशांति से शांति पैदा नहीं की जा सकती। ऐसा प्रयास तो काँटों से अंगूर चुनने या बबूल से अंजीर चुनने जैसा होगा। मुझे इस बारे में तनिक भी संदेह नहीं कि अहिंसा के बिना स्वराज नहीं हो सकता और न ही कोई

रचनात्मक कार्य हो सकता है। रचनात्मक कार्य अहिंसा का ही सौम्य रूप है; लेकिन अहिंसा की सच्ची कसौटी इस बात में है कि हम अपने स्वीकृत ध्येय की सेवा करते हुए निस्संकोच भाव से मृत्यु का वरण करने की क्षमता अर्जित करें, ऐसी मृत्यु जो सर्वथा निर्दोष हो।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 67), पृष्ठ 45

अहिंसक उपायों से स्वराज तब तक हासिल नहीं हो सकता, जब तक कि हमारी अहिंसा बहादुरी की अहिंसा न हो और इस कोटि की न हो कि वह सफलतापूर्वक हिंसा का मुकाबला करे।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 67), पृष्ठ 13

अहिंसक काररवाई के लिए दूसरे के सहयोग पर निर्भर नहीं रहना पड़ता, लेकिन हिंसक काररवाई दूसरे के सहयोग के बिना नाकाम हो जाती है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 64), पृष्ठ 188

अहिंसा एक ऐसी शक्ति है, जिसका सहारा बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सब ले सकते हैं, बशर्ते कि प्रेम रूपी ईश्वर में तथा मनुष्यमात्र में उनकी सजीव श्रद्धा हो। जब हम अहिंसा को अपना जीवन-सिद्धांत बना लें तो यह हमारे संपूर्ण जीवन में व्याप्त होना चाहिए। यूँ ही कभी-कभी छुटपुट मामलों में उसका पालन करने से लाभ नहीं हो सकता।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 62), पृष्ठ 285

अहिंसा और कायरता परस्पर विरोधी शब्द हैं। अहिंसा सर्वश्रेष्ठ सद्गुण है, कायरता बड़े-से-बड़ा दुर्गुण है। अहिंसा का मूल प्रेम में है, कायरता का घृणा में। अहिंसक सदा कष्ट-सहिष्णु होता है, कायर सदा पीड़ा पहुँचाता है। विशुद्ध अहिंसा उच्चतम वीरता है। अहिंसक व्यवहार कभी पतनकारी नहीं होता, कायरता सदा पतित बनाती है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 42), पृष्ठ 79

अहिंसा का मार्ग कठिन तो है, लेकिन उसका परिणाम स्थायी और दोनों के लिए ही शुभ होता है। मार का बदला मार से लेना तो चलता ही आया है। किंतु उससे जगत् में न सुख बढ़ा है, न अन्याय और न जुल्म ही दूर हुआ है। उसे मिटाने की कुंजी तो अहिंसा ही है, ऐसा मेरा अनुभव है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 65), पृष्ठ 394

अहिंसा का व्यापार घाटे का व्यापार नहीं होता। अहिंसा के दोनों पलड़ों का जमा-खर्च शून्य होता है। यानी उसके दोनों पलड़े समान होते हैं। जो जीने के लिए खाता है, सेवा करने के लिए जीता है, केवल जीवन-निर्वाह करने के लिए कमाता है, वह काम करते हुए भी अकर्मा है वह हिंसा करते हुए भी अहिंसक है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 40), पृष्ठ 202

अहिंसा की सिद्धि तपश्चर्या पर निर्भर है। तपश्चर्या सात्त्विक होनी चाहिए। उसमें अविश्रांत उद्यम, विवेक इत्यादि समाविष्ट है। शुद्ध तप में शुद्ध ज्ञान होता है। अनुभव बताता है कि लोग अहिंसा का नाम तो लेते हैं, लेकिन बहुतों को मानसिक आलस्य इतना रहता है कि वे वस्तुस्थिति का परिचय तक करने का परिश्रम नहीं उठाते हैं।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खड 67), पृष्ठ 214

अहिंसा कोई आसान काम नहीं है। वह विश्व की सबसे सूक्ष्म शक्ति है। इसको पकड़ पाना आसान नहीं है और मनुष्य धोखे में पड़ जाता है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 62), पृष्ठ 416

अहिंसा तो मानव जाति को उपलब्ध सबसे बड़ी शक्ति है। मनुष्य ने अपनी बुद्धि के सहारे संसार के जिन प्रचंड-से-प्रचंड शस्त्रास्त्रों का निर्माण किया है, उन सबसे यह कहीं अधिक शक्तिशाली है। संहार मानव धर्म नहीं है। मनुष्य मौत के लिए सदा तैयार रहे, तभी वह मुक्त रूप में जी सकता है। अत: किसी को मारने के बजाय उसके हाथों मारे जाने के लिए ही उसे तैयार रहना चाहिए। यह मौत उसे अगर जरूरत पड़े तो उसके भाई के हाथों से ही भले क्यों नुआए!

—महात्मा गांधी : जीवन और चिंतन, पृष्ठ 373

अहिंसा परम श्रेष्ठ मानव धर्म है और पशु व बल से वह अनंत गुना महान् व उच्च है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 63), पृष्ठ 284

अहिंसा प्रचंड शस्त्र है। इसमें परम पुरुषार्थ है। यह भीरु से भी दूर-दूर भागती है। यह वीर पुरुष की शोभा है, उसका सर्वस्व है। यह शुष्क, नीरस, जड़ पदार्थ नहीं है, यह चेतनामय है। यह आत्मा का विशेष गुण है, इसलिए इसका वर्णन परम धर्म के रूप में किया गया है।

—विद्यार्थियों से, पृष्ठ 40

अहिंसा बेवकूफों के लिए नहीं है। हमें बुद्धि योग से काम लेना होगा। अहिंसा ऐसी चीज है, जिसके अंदर ज्ञान को भी स्थान है और कार्यशक्ति को भी, यानी बुद्धि को भी स्थान है और हमारी सारी इंद्रियों को भी। आज तो इन सबका उपयोग अहिंसा को मिटाने के लिए हो रहा है। हम तो यह चाहते हैं कि ये सब उसकी दासियाँ बनकर रहें। हम अपनी इंद्रियों को अहिंसा की दासी बनाएँगे, तब वे तेजस्विनी होंगी।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 65), पृष्ठ 132

अहिंसा भाव से ओत-प्रोत होने के लिए हममें ईश्वर में जीवंत श्रद्धा होनी चाहिए। फल की तनिक भी आशा किए बिना निरंतर सेवा करते रहने से ही मन में अहिंसा भाव का उदय होता है। इसमें मनुष्य सिर्फ अपना अर्पण करता चला जाता है और यह अपना पुरस्कार आप है। निष्काम भाव से की गई ऐसी सेवा केवल मित्रों के लिए ही नहीं होती, बल्कि शत्रुओं के लिए भी होती है। अहिंसा की यह अनिवार्य शिक्षा है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 66), पृष्ठ 441

अहिंसा में भय की गुंजाइश ही नहीं है। भय-मुक्त होने के लिए अहिंसा के उपासक को उच्च कोटि की त्याग-वृत्ति की साधना करनी पड़ती है। जमीन और धन-संपत्ति ही नहीं, प्राण तक से हाथ धोने पड़ें तो भी घबराना नहीं चाहिए। सच तो यह है कि जिसने सब तरह से भय से मुक्ति न पा ली हो, वह अहिंसा का पूरी तरह पालन ही नहीं कर सकता। इसलिए अहिंसा के पुजारी को तो हर तरह के भय से मुक्त होकर एकमात्र ईश्वर से ही डरना चाहिए।

—महात्मा गांधी : जीवन और चिंतन, पृष्ठ 378

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सर्वत्र न्यायपूर्ण व्यवहार अहिंसा की पहली शर्त है। मानव स्वभाव से ऐसी अपेक्षा शायद बहुत अधिक है, बल्कि मैं ऐसा नहीं मानता। मनुष्य कितना ऊँचा उठ सकता है और नीचा गिरे तो कितनी निम्नता तक जा सकता है, इस बारे में मानव स्वभाव की दृष्टि से सिद्धांत नहीं बाँधा जा सकता।

—महात्मा गांधी : जीवन और चिंतन, पृष्ठ 378

जो हमें प्रेम करते हैं, उन्हीं से प्रेम करना अहिंसा नहीं है। जो हमसे नफरत और द्वेष करते हों, उनसे भी प्रेम करना ही वस्तुत: अहिंसा है। प्रेम के इस महत् नियम का पालन करना कितना कठिन है, यह मैं जानता हूँ;

लेकिन क्या सभी महान् और अच्छी बातों पर अमल करना कठिन नहीं होता? द्वेष करनेवालों से प्रेम करना सबसे कठिन बात है। परंतु अगर हम चाहें तो कठिन-से-कठिन बात भी ईश्वर की कृपा से आसान हो जाती है।

—महात्मा गांधी : जीवन और चिंतन, पृष्ठ 370

तुम अहिंसा के उपासक हो और विवेक अहिंसा का अविभाज्य अंग है, क्योंकि अविवेक दु:खदायक है, और विवेक सुखदायक नहीं होता। यदि कोई लड़का अपनी माँ को अपने पिता की पत्नी कहकर संबोधित करता है तो वह सच ही कहता है, किंतु उसकी भाषा में अविवेक होने के कारण उसका कथन हिंसापूर्ण है और वह समूचे समाज में निंदा का पात्र है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 65), पृष्ठ 68

मन, वचन और शरीर से किसी जीव को दु:ख न देना, अपना या दूसरे का भला मानकर भी किसी जीव को दु:ख न देना अहिंसा है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 50), पृष्ठ 206

चोरी करने के बाद भी जो व्यक्ति अपने अपराध को स्वीकार कर लेता है, वह व्यक्ति उसकी अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा है, जो चोरी करते हुए पकड़ा न गया हो अथवा जिसे कभी चोरी करने का लोभ न हुआ हो।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 50), पृष्ठ 109

मनुष्य के मन में हमेशा दो खिड़कियाँ रही हैं। एक से वह देख सकता है कि स्वयं कैसा है और दूसरी से उसे कैसा होना चाहिए, इसकी कल्पना कर सकता है। देह, दिमाग और मन तीनों की अलग-अलग जाँच करना हमारा काम अवश्य है, परंतु यदि इतने तक ही रह जाएँ तो ऐसा ज्ञान प्राप्त करके भी हम उसका कोई लाभ उठा नहीं सकते। अन्याय, दुष्टता, अभिमान आदि के क्या परिणाम होते हैं और जहाँ ये तीनों एक साथ हों, वहाँ कैसी खराबी होती है, यह जानना भी जरूरी है। और केवल जान लेना ही काफी नहीं, जानने के बाद वैसा आचरण भी करना है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 6), पृष्ठ 291

एक हद तक आत्मनिंदा भी आवश्यक है परंतु मैंने देखा है कि कुछ एक लोगों को आत्मनिंदा में अतिरेक करने की आदत पड़ जाती है और इस प्रकार वे फिर प्रगति कर ही नहीं सकते। आत्मनिंदा का उपयोग तो इतना भर होना चाहिए कि हम प्रगति कर सकें। भूतकाल में हमारे हाथों जो दोष हुए हों और आज हम उन्हें न कर रहे हों तो उनका बार-बार चिंतन करके आत्मा का उत्पीड़न करने का अर्थ तो दोष की वृद्धि करने के समान ही है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 56), पृष्ठ 7

आत्मविश्वास कैसा होना चाहिए? आत्मविश्वास रावण का-सा नहीं होना चाहिए, जो समझता था कि मेरी बराबरी का कोई है ही नहीं। आत्मविश्वास होना चाहिए विभीषण जैसा, प्रह्लाद जैसा। उनके मन में यह भाव था कि हम निर्बल हैं, मगर ईश्वर हमारे साथ है और इस कारण हमारी शक्ति अनंत है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 41), पृष्ठ 511

अगर सद्विचार काफी बड़ी संख्या में हमारे मन में बस जाएँ तो कुविचार वहाँ ठहर ही नहीं सकते। अवश्य ही इसके लिए साहस की जरूरत है। परंतु दुर्बल हृदयवाले मनुष्य आत्म-संयम कभी नहीं कर सकते। आत्म-संयम तो जागरूकता और प्रार्थना तथा उपवास रूपी निरंतर प्रयत्न का सुंदर फल है। अर्थहीन स्तोत्र-पाठ प्रार्थना नहीं है और न शरीर को भूखा मारना उपवास है। प्रार्थना तो उसी हृदय से निकलनी चाहिए, जो अपनी श्रद्धा के द्वारा ईश्वर को जानता है। और उपवास का अर्थ है—बुरे या हानिकारक विचार, कर्म और आहार से परहेज रखना। मन विविध प्रकार के व्यंजनों की ओर दौड़े और शरीर को भूखा मारा जाए, ऐसे उपवास से कोई लाभ नहीं होता।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 65), पृष्ठ 75

मेरी कल्पना की आर्थिक समानता का अर्थ यह नहीं है कि हर एक को अक्षरश: एक ही रकम मिले। इसका मतलब इतना ही है कि हर एक को अपनी आवश्यकता के लिए काफी रकम मिल जानी चाहिए।

—अहिंसक समाजवाद की ओर, पृष्ठ 25

जो आदर्श अमल में जरा भी न लाया जा सके, वह आदर्श ही नहीं है। आदर्श और व्यापार के बीच में अंतर सदा रहेगा ही। इस अंतर को कम करने में पुरुषार्थ की आवश्यकता रही है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 64), पृष्ठ 76

आदर्श का पालन करने के लिए जी-तोड़ प्रयत्न करना चाहिए। लेकिन यदि वैसा करने के बावजूद मन पर अंकुश न रह सके तो मिथ्याचारी न होकर जो कुछ बन सके, उससे संतुष्ट रहना चाहिए। ऐसा व्यवहार करनेवाले लोग बड़ों के आशीर्वाद के पात्र हैं।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 56), पृष्ठ 167

गुलाब को अपनी सुगंध फैलाने के लिए किसी से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती, बल्कि वह इसलिए वैसा करता रहता है कि वही उसका धर्म है। सच्चा आध्यात्मिक जीवन भी ऐसा ही होता है। और जब ऐसा होने लगेगा, तब संसार में निश्चय ही शांति का राज्य स्थापित हो जाएगा और आदमी-आदमी के बीच सद्भावना कायम होगी।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 64), पृष्ठ 465

यदि आप अपने आत्मनिर्धारित लक्ष्य को पूरा करना चाहते हो तो आपको अपनी आय के भीतर ही खर्च पूरा करने की कला सीखनी होगी। और इसे संपादित करने के दो ही रास्ते हैं—एक तो अपनी आवश्यकताओं को कम-से-कम कर देना और दूसरा, अपना काम-धंधा इस विधि से चलाना कि कभी सिर पर ऋण न चढ़े।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 66), पृष्ठ 139

मेरा प्रयास स्वेच्छापूर्ण सादगी, गरीबी और धीमी गति में सौंदर्य-दर्शन का है। आवश्यकताएँ बढ़ाने का मुझे कोई मोह नहीं। वे तो हमारे आंतरिक जीवन को तेजहीन करके विनष्ट ही कर देती हैं।

—महात्मा गांधी : जीवन और चिंतन, पृष्ठ 395

कारखाना कुछ सौ लोगों को जीविका देता है। तेल की मिल खड़ी करके रोज सैकड़ों मन तेल आप निकाल सकते हैं, पर हजारों तेलवालों को बेकार करके। इस शक्ति को मैं संहारक शक्ति कहता हूँ। रचनात्मक शक्ति तो करोड़ों हाथों से की जानेवाली श्रम की शक्ति है—सर्वोदय सर्वकल्याण इसी रचनात्मक शक्ति से हो सकता है। यंत्रों की शक्ति से ढेरों माल तैयार किया जाए और कल-कारखाने सरकारी अधिकार में हों, तब भी उससे कुछ हासिल होने का नहीं।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 62), पृष्ठ 396

उद्योग मानव जाति के लिए अभिशाप सिद्ध होने वाला है। एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण सदा नहीं चल सकता। उद्योगवाद तो पूरी तरह आपकी शोषण की क्षमता, विदेशों में आपके माल के लिए बाजार मिलने और प्रतिस्पर्धियों के अभाव पर निर्भर है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 48), पृष्ठ 249

मेरी दृढ़ मान्यता है कि निजी स्वार्थ के कारण किसी को कतई उपवास नहीं करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति अपने दु:ख के लिए दूसरों के सामने उपवास करने लगे तो सार्वजनिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जाए।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 56), पृष्ठ 191

मैं यह जानता हूँ कि अगर चिकित्सक साहस के साथ अपने मरीजों में उपवास को लोकप्रिय बना दें तो लोगों को रोगों से होनेवाले कष्ट बहुत कम हो जाएँगे। और जो लोग आज औषधि तथा आहार संबंधी प्रयोगों के कारण मर रहे हैं, उनमें से बहुत से बच जाएँगे।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 40), पृष्ठ 46

एकाग्रचित्त होने का सबसे अच्छा उपाय है, जो शारीरिक काम किया जाए उसमें तन्मय हो जाना और उसे अच्छे-से-अच्छा करने का प्रयत्न करने से उसमें तन्मयता आ ही जाती है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 56), पृष्ठ 190

कठिनाइयाँ दो प्रकार की हैं—एक तो वे, जो हम पर बाहर से लादी जाती हैं और दूसरी वे, जिनको हम स्वयं पैदा कर लेते हैं। दूसरे प्रकार की कठिनाइयाँ कहीं ज्यादा खतरनाक हैं। हम बहुधा उन्हें गले से चिपकाए रहते हैं और दूर नहीं करना चाहते।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 18), पृष्ठ 479

कर्तव्य हो जाता है तो फिर उसके परिणामों के बारे में सोचने की गुंजाइश ही नहीं रह जाती। कर्तव्य तो हर हालत में करना है, चाहे कोई साथ देनेवाला हो या न हो।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 67), पृष्ठ 151

कार्य में व्यक्तिगत परिश्रम की रक्षा और मानवीय ईमानदारी होनी चाहिए, लोभ नहीं।

—विद्यार्थियों से, पृष्ठ 16

जो व्यक्ति ईश्वर में आस्था रखता है, वह चौबीसों घंटे कार्यरत होता है, क्योंकि ईश्वर ने हमें इसीलिए हाथ-पैर दिए हैं।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 64), पृष्ठ 350

नीति-युक्त काम जोर-जबरदस्ती और भय से रहित होना चाहिए।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 6), पृष्ठ 303

यदि हम गहराई से विचार करें तो किसी पर क्रोध करने का कोई कारण हो ही नहीं सकता। फिर क्रोध करने का अधिकार क्यों कर हो सकता है? अंग्रेजी में क्रोध को छोटा-मोटा पागलपन कहा गया है न! और 'गीता' कहती है कि उसका मूल 'काम' है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 67), पृष्ठ 213

जब एक चूहा एक बिल्ली के शिकंजे में पड़कर अपने को समर्पित कर देता है, तब यह नहीं कहा जाएगा कि उसने बिल्ली को क्षमा कर दिया।

—यंग इंडिया, 11-8-1920

खाटी सत्य तो यह है कि जो चीज इस देश में सहज ही बन सकती है और बनती भी है, जिससे गरीबों का पेट पलता है, उस स्वदेशी चीज का उपयोग करना हमारा धर्म है और उसे छोड़कर उसकी जगह इच्छापूर्वक विदेशी चीज का उपयोग करना अधर्म।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 40), पृष्ठ 390

खादी की कल्पना मैंने पिछले 20 बरसों से हिंदुस्तान के सामने रख रखी है। इन 20 बरसों में मैंने यह एक ही बात हिंदुस्तान में सबको सुनाई है। आज मृत्यु-शय्या पर पड़ा हुआ भी मैं यही कहना चाहता हूँ। खादी अब पुरानी, शीर्ण-जीर्ण चीज नहीं रही, बल्कि नौजवान बन गई है और खूबसूरत मालूम पड़ती है। आज यह बात

स्पष्ट दिखाई पड़ती है। ईश्वर मुझसे कह रहा है कि इसमें कोई भूल नहीं है। इसमें स्वराज्य है, इसी में स्वतंत्रता है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 66), पृष्ठ 417

खादी जहाँ सबको काम देती है, मिल का कपड़ा वहाँ कुछ ही आदमियों को काम देता है और बहुतों को सच्चे श्रम से वंचित कर देता है। खादी आम जनता की सेवा करती है, मिल के कपड़े का उद्देश्य धनिक वर्ग की सेवा करने का होता है। खादी मजदूरों की सेवा करती है, मिल का कपड़ा उनका शोषण करता है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 65), पृष्ठ 78

मुझे धनवानों के धन से द्वेष नहीं है, बशर्ते कि वे गरीबों को न भूलें और उन्हें अपनी दौलत के हिस्सेदार बनाएँ और उनकी दौलत दूसरों को हानि पहुँचाकर और गरीब बनाकर जमा न की जाए।

—अहिंसक समाजवाद की ओर, पृष्ठ 175

घृणा निम्नतम कोटि की हिंसा है। हम अपने अंदर घृणा रखते हुए अहिंसक नहीं बन सकते।

—हरिजन, 17-8-40

किसी ने तो कहा भी है कि मेरे मरने के बाद मेरे चरखे को कोई भी दो कौड़ी में नहीं पूछेगा और उसकी चिता बनाकर मैं जलाया करूँगा। फिर भी, उस चरखे पर मेरी जो श्रद्धा है, वह विचलित नहीं हुई है। मैं तो नहीं मानता कि मैंने देश के सामने कोई अंतिम वस्तु रखी हो।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 62), पृष्ठ 239

मैं यह जानता हूँ और मेरा यह अनेक बार का अनुभव है कि कोई व्यक्ति कितना भी योग्य क्यों न हो, उसके गुप्त अनीतिपूर्ण कृत्य का असर उसके काम पर पड़े बिना नहीं रहता। इस नियम का एक सुदृढ़ आधार है और वह यह है कि वह व्यक्ति जो काम करता है, उसके लिए नीति की आवश्यकता है। योग्यता के अभाव के बावजूद जिनका चरित्र पूर्णत: दोष-रहित है, उनका काम सफल हुआ है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 64), पृष्ठ 175

यह मानने में किसी तरह की आनाकानी नहीं होनी चाहिए कि अस्पृश्यता निवारण का अर्थ चरित्रहीन व्यक्ति से कराना असंभव है। शास्त्रों में प्रवीण व श्रेष्ठ वक्ता भी सनातनी हिंदू की मान्यता को कैसे बदल सकता है? उसकी बुद्धि पर किए गए प्रहार व्यर्थ जाते हैं। चैतन्य, रामकृष्ण, राममोहन राय, दयानंद आदि का प्रभाव अब भी देखा जा सकता है। यह प्रभाव क्या जोर-जबरदस्ती से पड़ा होगा? इनकी अपेक्षा कहीं प्रखर बुद्धि के झुंड-के-झुंड लोग शायद हमें देखने को मिल जाएँगे। किंतु वे मनुष्यों का हृदय-परिवर्तन नहीं कर सके।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 64), पृष्ठ 175

जीवन का ध्येय बेशक खुद को—आत्मा को—पहचानना है। जब तक हम प्राणिमात्र के साथ एकता महसूस करना न सीख लें, तब तक आत्मा को पहचान नहीं सकते। ऐसे जीवन का समग्र योग ही ईश्वर है। इसलिए हमें सब में रहनेवाले ईश्वर को जानना जरूरी है। ऐसा ज्ञान असीम और नि:स्स्वार्थ सेवा से ही मिल सकता है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 50), पृष्ठ 78

जीवन का लक्ष्य शोध कर यदि हम उस ओर प्रवृत्त न रहेंगे तो बिना पतवार की नाव के समान बीच समुद्र में गोते खाएँगे। सबसे श्रेष्ठ लक्ष्य मनुष्यमात्र की सेवा करना और उसकी स्थिति सुधारने में हाथ बँटाना है। इसमें ईश्वर की सच्ची प्रार्थना, सच्ची पूजा का समावेश हो जाता है। जो मनुष्य खुदा का काम करता है, वह खुदाई पुरुष है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 6), पृष्ठ 360

जो मुरदे की भाँति जी रहा है, वह जीता नहीं है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 64), पृष्ठ 354

सच्चा जीवन जीने की सुनहरी कुंजी एक ही है—जो सेवा कार्य सहज रूप से सामने आए, उसमें कूद पड़ना और ध्यानावस्थित हो जाना। फिर मन में भी विचार कार्य को पूर्ण करने का ही रहे, न कि काम उचित है या अनुचित, इस बात का।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 65), पृष्ठ 287

प्रत्येक वस्तु ईश्वर की है और ईश्वर ने उसे बनाया है। इसलिए उसकी सारी चीजें मनुष्य सृष्टि के लिए है, न कि किसी व्यक्ति विशेष के लिए। यदि किसी व्यक्ति के पास, जितना उसे मिलना चाहिए, उससे अधिक हो तो वह उसका संरक्षक है, यानी उसका उपयोग लोगों के हित में होना चाहिए।

—अहिंसक समाजवाद की ओर, पृष्ठ 164

हमें देश की हर चीज को, चाहे वह किसी के पास भी क्यों न हो, अपना समझना चाहिए। और अपना समझकर ही हमें उसकी देखभाल तथा उसका उपयोग करना चाहिए। इसमें बहुत सी बातें आ जाती हैं। यह बात तो दीये के प्रकाश के समान स्पष्ट है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 50), पृष्ठ 142

अपने दोषों को प्रकट करने से मैं उन्हें फिर न करना सीख सका हूँ। दोष करके मनुष्य छिपकर निर्दोष दिखने के लिए चाहे जैसा प्रयत्न करे, उसमें वह सफल नहीं हो सकता। ईश्वर जिन दोषों को देखता है, उन्हें उसकी सृष्टि क्यों न देखे! जो अपने दोष से सचमुच शरमाता है, वह तो उसे प्रकट करके सुरक्षित रहेगा और अपने साथियों को इस तरह अपना रक्षक बनाएगा।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 64), पृष्ठ 148

मनुष्य अपनी पीठ की भाँति ही अपने दोष भी स्वयं नहीं देख सकता। इसीलिए बुद्धिमानों ने यह सलाह दी है कि अन्य लोगों को हममें जो दोष दिखाई दें और वे हमारा ध्यान उनकी ओर आकर्षित कराएँ तो हम सदा उन्हें समझने के लिए तैयार रहें। अधीरतावश या गुस्से में आकर अपने दोष बतानेवाले का अनादर न करें।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 42), पृष्ठ 137

मैं थोड़े मनुष्यों के हाथों में धन का केंद्रीयकरण नहीं पसंद करता, बल्कि वह सारे लोगों के पास हो। आज के कल-पुरजे थोड़े से लोगों को लखपति होने में सहायता करते हैं। इसकी पृष्ठ-प्रेरणा परिश्रम बचाने या परोपकार नहीं, बल्कि एक लोभ है। वह वस्तुओं के इस विधान से विपरीत है, जिसके लिए मैं अपनी पूर्ण शक्ति से लड़ रहा हूँ।

—विद्यार्थियों से, पृष्ठ 15

परमेश्वर और पैसे की सेवा एक साथ नहीं हो सकती। यह सर्वाधिक महत्त्व का आर्थिक सत्य है। दोनों में से किसी एक का चुनाव हमें करना पड़ेगा।

—महात्मा गांधी : जीवन और चिंतन, पृष्ठ 396

अपनी पूँजी और धरोहर अंततोगत्वा पैसा नहीं है, बल्कि अपना धैर्य, आस्था, सत्य और कुशलता है।

—संपूर्ण गांधी वाङ्मय (खंड 6), पृष्ठ 321

❑

महात्मा गांधी के जीवन से संबंधित कार्यक्रम

1869

पोरबंदर, काठियावाड़ में महात्मा गांधी का जन्म।

1882

कस्तूरबाई के साथ मोहनदास का विवाह।

1885

पिता का स्वर्गवास।

1887

मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करके भावनगर के साँमलदास कॉलेज में प्रवेश।

1888

4 सितंबर को उच्च शिक्षा के लिए विदेश रवाना।

1889

इंग्लैंड में शाकाहारियों की सभा में प्रथम सार्वजनिक भाषण।

1891

10 जून को बैरिस्टर बने, 7 जुलाई को बंबई लौटे, माताजी की मृत्यु का समाचार मिला।

1892

राजकोट और बंबई में वकालत शुरू की।

1893

अप्रैल में एक मुकदमे की पैरवी के लिए दक्षिण अफ्रीका गए।

1894

जिस मुकदमे के लिए दक्षिण अफ्रीका गए थे, उसका पंच-फैसला हुआ।

1895

नाटाल में सर्वोच्च न्यायालय के बैरिस्टर बने, वहीं पर 'नाटाल भारतीय कांग्रेस' का गठन।

1896

छह महीने के लिए भारत वापस लौटे। तिलक, गोखले आदि राष्ट्रीय नेताओं से भेंट। 30 नवंबर को पुनः दक्षिण अफ्रीका लौट गए।

1897

डरबन लौटने पर विरोध-प्रदर्शन, जीवन में महान् परिवर्तन आया।

1899

बोअर युद्ध में अंग्रेजों की मदद करने का निश्चय।

1901

भारत लौटे, राजकोट में महामारी कमेटी द्वारा सेवा, कलकत्ता कांग्रेस के सहायक बने।

1902

बर्मा की यात्रा पर गए, रेल के तीसरे दर्जे में भारत-भ्रमण। तीन महीने बाद दक्षिण अफ्रीका के लिए पुनः रवाना हुए।

1903

दक्षिण अफ्रीका में 'ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन' की स्थापना की। 'इंडियन ओपिनियन' का गठन।

1904

गीताध्ययन, रस्किन के 'अन टू दिस लास्ट' को पढ़कर जीवन में महान् बदलाव आया, वहीं फीनिक्स आश्रम की स्थापना की।

1906

जुलू विद्रोह में घायलों की सेवा, ब्रह्मचर्य से रहने की प्रतिज्ञा, 'सत्याग्रह' शब्द का आविष्कार, शिष्टमंडल के प्रतिनिधि के रूप में इंग्लैंड रवाना।

1907

खूनी कानून के विरुद्ध सत्याग्रह का प्रयोग।

1908

अंतरिम समझौता, पठान द्वारा आक्रमण, पुनः सत्याग्रह प्रारंभ और फिर गिरफ्तार हुए।

1909

टॉल्सटॉय को प्रथम पत्र लिखा, दूसरी बार शिष्टमंडल के साथ इंग्लैंड रवाना, स्वदेश वापसी में जहाज पर 'हिंद स्वराज' पुस्तक लिखी।

1910

जोहान्सबर्ग में टॉल्सटॉय फार्म की स्थापना की।

1912

गोखले की दक्षिण अफ्रीका यात्रा, 'नीति धर्म' पुस्तक प्रकाशित, इसी वर्ष 'आरोग्य विषयक सामान्य ज्ञान' पुस्तक लिखी।

1913

पुनः सत्याग्रह प्रारंभ, गिरफ्तारी के बाद रिहाई, सप्ताह भर का उपवास तथा साढ़े चार महीने तक एक समय भोजन।

1914

चौदह दिन का उपवास रखा, सत्याग्रह सफल रहा, 18 जुलाई को इंग्लैंड रवाना, 4 अगस्त से प्रथम विश्व युद्ध शुरू, सरोजिनी नायडू से परिचय हुआ, विश्व युद्ध में सेवा।

1915

भारत आगमन और 'कैसरे-हिंद' की उपाधि प्राप्त, संपूर्ण भारत का दौरा किया, काका कालेलकर व आचार्य कृपलानी से परिचय, 19 फरवरी को गोखले की मृत्यु, 25 मई को आश्रम की स्थापना।

1916

काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना के पुनीत अवसर पर प्रसिद्ध उद्बोधन, लखनऊ कांग्रेस में जवाहरलाल नेहरू से प्रथम मुलाकात।

1917

राजेंद्र बाबू से भेंट, 10 अप्रैल को चंपारण में सत्याग्रह शुरू, 31 मई को गिरमिटिया कानून रद्द, 30 जून को दादाभाई नौरोजी की मृत्यु, महादेव भाई देसाई से संपर्क।

1918

अहमदाबाद में मिल मजदूरों की हड़ताल हुई और तीन दिन का उपवास रखा, खेड़ा सत्याग्रह शुरू, चरखे का पुनरुद्धार।

1919

रोलेट एक्ट भारत आया, 6 अप्रैल को प्रार्थना और उपवास दिवस, 13 अप्रैल को जलियाँवाला बाग में हत्याकांड, 'यंग इंडिया' व 'नवजीवन' का संपादन शुरू, खिलाफत आंदोलन, अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन आयोजित।

1920

1 अगस्त को लोकमान्य तिलक की मृत्यु, 2 अक्तूबर को 'तिलक स्वराज फंड' की स्थापना, गांधीजी द्वारा तैयार किया गया कांग्रेस का संविधान स्वीकृत, असहयोग आंदोलन शुरू, गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की।

1921

अन्य राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना, प्रिंस ऑफ वेल्स के आगमन के बहिष्कार के कारण हिंसा, पाँच दिन का उपवास, अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन आयोजित।

1922

5 फरवरी को चौरी-चौरा कांड घटित और सत्याग्रह आंदोलन स्थगित, आत्म-शुद्धि के लिए पाँच दिन का उपवास, 10 मार्च को गिरफ्तारी और फिर छह वर्ष की सजा।

1924

अपेंडिसाइटिस का ऑपरेशन, 5 फरवरी को रिहाई, 24 सितंबर को हिंदू-मुसलिम एकता के लिए 21 दिन का उपवास, बेलगाँव कांग्रेस के अध्यक्ष बने।

1925

16 जून को देशबंधु चित्तरंजनदास की मृत्यु, एक सप्ताह का उपवास रखा, कानपुर कांग्रेस अधिवेशन आयोजित, चरखा संघ की स्थापना।

1926

स्वामी श्रद्धानंद का बलिदान।

1927

खादी-यात्रा निकाली, 16 सितंबर को हकीम अजमल खाँ की मृत्यु।

1928

साइमन कमीशन भारत आया, बारदोली सत्याग्रह शुरू, मगनलाल गांधी की 22 अप्रैल को पटना में मृत्यु, 17 नवंबर को लाला लाजपतराय की मृत्यु, नेहरू रिपोर्ट सार्वजनिक, कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में समझौता प्रस्ताव पेश।

1929

लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव रखा गया।

1930

26 जनवरी को पूर्ण स्वाधीनता की प्रतिज्ञा की गई, 12 मार्च को नमक कानून तोड़ने के लिए दांडी मार्च किया, 5 मई को गिरफ्तार किए गए।

1931

4 जनवरी को इंग्लैंड में मुहम्मद अली की मृत्यु, 25 जनवरी को गांधी जेल से बाहर आए, 6 फरवरी को मोतीलाल नेहरू की मृत्यु, 4 मार्च को गांधी-इरविन समझौता हुआ, 23 मार्च को भगत सिंह को फाँसी लगा दी गई, कराची कांग्रेस अधिवेशन, 25 मार्च को गणेश शंकर विद्यार्थी का बलिदान, दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भारत के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में शामिल, दिसंबर में गोलमेज सम्मेलन से बिना किसी नतीजे के लौटे।

1932

कांग्रेस गैर-कानूनी घोषित, सत्याग्रह पुनः शुरू हुआ, 4 जनवरी को गिरफ्तारी, 'नवजीवन', 'यंग इंडिया' समाचार-पत्र बंद, 20 सितंबर से सांप्रदायिक निर्णय के विरोध में आमरण अनशन किया, 24 सितंबर को यरवदा समझौता, 26 सितंबर को उपवास तोड़ा।

1933

8 मई से 21 दिन का उपवास शुरू, 'हरिजन' पत्र की शुरुआत, जेल से रिहाई और फिर गिरफ्तारी तथा एक वर्ष की सजा, 16 अगस्त से आमरण उपवास, जो एक सप्ताह चला, 23 अगस्त को रिहाई, 20 सितंबर को एनी बेसेंट की मृत्यु, 22 सितंबर को विट्ठलभाई पटेल की मृत्यु, साबरमती आश्रम का त्याग, वर्धा में रहने का निश्चय, 7 नवंबर से हरिजन यात्रा शुरू।

1934

बिहार भूकंप की घटना, 7 मई को सत्याग्रह आंदोलन वापस लिया, 7 दिन का उपवास, 26 अक्तूबर को ग्रामोद्योग संघ की स्थापना, बंबई कांग्रेस अधिवेशन आयोजित।

1935

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्वर्ण जयंती मनाई गई।

1936

10 मई को डॉ. अंसारी की मृत्यु, सेवाग्राम आश्रम की स्थापना।

1939

4 जनवरी को शौकत अली की मृत्यु, राजकोट में आमरण अनशन हुआ, वायसराय के हस्तक्षेप से चार दिन बाद अनशन समाप्त, त्रिपुरी कांग्रेस अधिवेशन आयोजित, सुभाष बाबू का कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्याग-पत्र, 3 सितंबर को द्वितीय विश्व युद्ध शुरू।

1940

11 अक्तूबर से व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारंभ, विनोबा भावे प्रथम सत्याग्रही बने, 'हरिजन' समाचार-पत्र पर पाबंदी।

1941

7 अगस्त को रवींद्रनाथ टैगोर की मृत्यु, 30 सितंबर को गो सेवा संघ की स्थापना की गई।

1942

पुन: कांग्रेस का नेतृत्व सँभाला, 11 फरवरी को सेठ जमनालाल बजाज की मृत्यु, क्रिप्स मिशन का आगमन, हिंदुस्तानी प्रचार सभा की स्थापना, 8 अगस्त को 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित।

1943

आगा खाँ महल (कारागृह) में 21 दिन का उपवास।

1944

22 फरवरी को कस्तूरबा गांधी का निधन, 6 मई को गांधीजी जेल से रिहा हुए, गांधी-जिन्ना वार्त्ता संपन्न।

1945

सभी नेता जेल से रिहा, पहली शिमला कांग्रेस आयोजित।

1946

कैबिनेट मिशन का आगमन, मुसलिम लीग द्वारा 16 अगस्त को 'सीधी काररवाई' का दिन, सांप्रदायिक दंगे भड़के, नोआखाली की पैदल यात्रा।

1947

15 अगस्त को भारत स्वतंत्र हुआ, कलकत्ता में 73 घंटे का उपवास।

1948

दिल्ली में शांति बहाली के लिए आमरण अनशन, जो पाँच दिनों तक चला।
30 जनवरी को प्रार्थना सभा में एक सिरफिरे ने हत्या की।
गांधीजी के अंतिम शब्द—'हे राम!'

❑❑❑